MAPA - 03

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

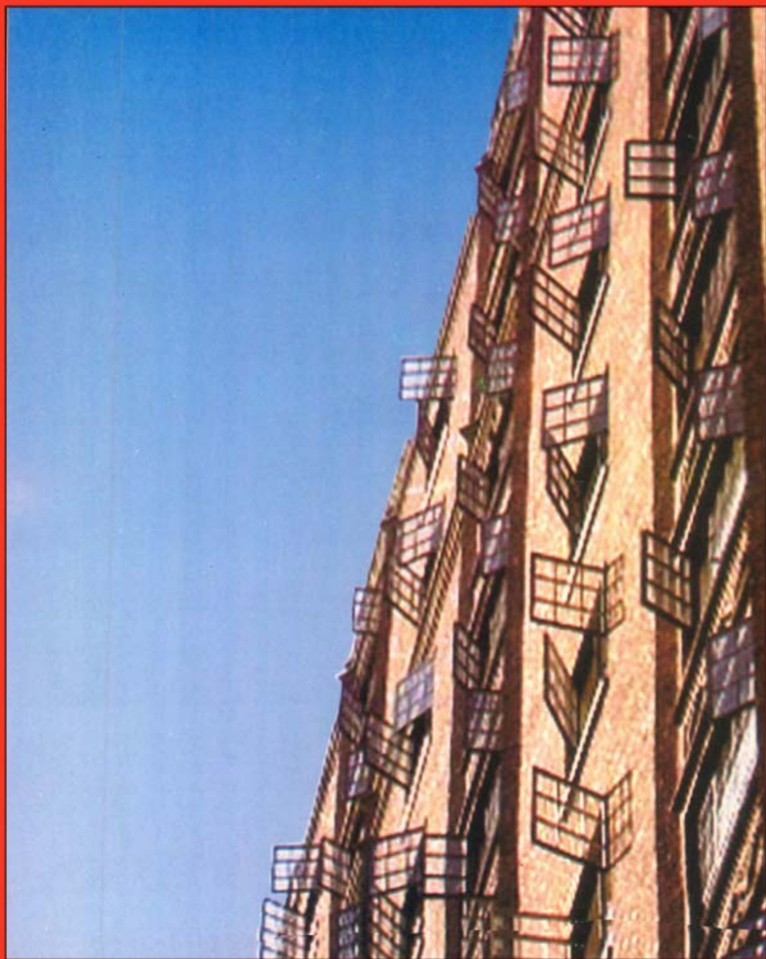

भारतीय प्रशासन

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

भारतीय प्रशासन

इकाई सं.	इकाई का नाम	पेज नं.
इकाई - 1	संघ स्तरीय प्रशासनिक संगठन : मंत्रालय; केन्द्रीय सचिवालय; मंत्रिमण्डल सचिवालय तथा प्रधानमंत्री कार्यालय(पी.एम.ओ.)	6
इकाई - 2	राजनीति और प्रशासन में अन्तःक्रिया : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि	24
इकाई - 3	भारतीय प्रशासन में भ्रष्टाचार : केन्द्रीय सतर्कता आयोग तथा भ्रष्टाचार निरोधक ब्यूरो के संदर्भ में जिला प्रशासन	33
इकाई - 4	जिला दण्डअधिकारी तथा जिला विकास पदाधिकारी के रूप में कलेक्टर की बदलती भूमिका के विशेष संदर्भ में जिला प्रशासन	45
इकाई - 5	विकास की अभिकर्ता (पंचायती राज संस्थाएँ) और स्थानीय स्वायत्त सरकार (पंचायतों)के रूप में भारत में स्थानीय सरकार	53
इकाई - 6	केन्द्रीय स्तर पर सामाजिक कल्याण प्रशासन	70
इकाई - 7	महिला एवं बाल विकास - राज्यस्तरीय प्रशासनिक तंत्र	94
इकाई - 8	अनुसूचित जाति एवं जनजाति कल्याण : नीति-नियोजन तथा प्रशासनिक तंत्र	108
इकाई - 9	सामाजिक न्याय व आर्थिक विकास के लिये नियोजन	125

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच

कुलपति

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

संयोजक / सदस्य

संयोजक एवं समन्वयक

प्रो. पी.सी. माथुर

परामर्शदाता (लोकप्रशासन)

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

1. **प्रो. अरविन्द शर्मा**
   आचार्य, प्रबंध विकास संस्थान
   गुड़गांव
2. **प्रो. खालिद मिर्जा**
   निदेशक, लोक प्रशासन विभाग
   पटना विश्वविद्यालय, पटना
3. **प्रो. संगीता शर्मा**
   आचार्य, लोक प्रशासन विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
4. **डॉ. बजरंग सिंह राठौड़**
   वरिष्ठ व्याख्याता, लोक प्रशासन विभाग
   डूंगर कॉलेज, बीकानेर
5. **प्रो. आर.पी. शर्मा**
   से.नि. आचार्य, लोक प्रशासन विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
6. **प्रो. पी.सी. माथुर**
   परामर्शदाता (लोक प्रशासन)
   व.म.खु.वि., कोटा
7. **आर.पी. जोशी**
   आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग
   महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर

सम्पादन एवं पाठ लेखन

सम्पादक

प्रो.(डॉ.) अनाम जैतली

आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

लेखक (इकाई सं.)

1. **डॉ. स्वाति गोयल** **(1)**
   व्याख्याता, लोक प्रशासन विभाग
   स्टेनी मेमोरियल पी.जी. कॉलेज, मानसरोवर, जयपुर
2. **डॉ. रीटा माथुर** **(2)**
   व्याख्याता, लोक प्रशासन विभाग
   कनोडिया कन्या पी.जी. महाविद्यालय, जयपुर
3. **डॉ. निर्मल गुप्ता** **(3)**
   व्याख्याता, लोक प्रशासन
   जे.डी.बी. कन्या महाविद्यालय, कोटा

लेखक (इकाई सं.)

4. **डॉ. अनिल कुमार ओझा** **(4)**
   व्याख्याता, राजनीति विज्ञान विभाग
   बाबा. सा. भीमराव अम्बेडकर यूनिवर्सिटी, मुजफ्फरपुर, बिहार
5. **डॉ. अनिता गुप्ता** **(5,6,7)**
   वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
6. **डॉ. हर्षवर्धन आचार्य** **(8)**
   सह-आचार्य, लोक प्रशासन विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. .(डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो.(डॉ.) अनाम जेटली
निदेशक(शैक्षणिक)
संकाय विभाग

योगेन्द्र गोयल
प्रभारी
पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल

सहायक उत्पादन अधिकारी,

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

उत्पादन- सितम्बर 2010 ISBN - 13/978-81-8496-120-1

सर्वाधिकार सुरक्षित : इस सामग्री के किसी भी अंश की वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

निदेशक (अकादमिक) द्वारा वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

इकाई– 1

संघ स्तरीय प्रशासनिक संगठन: मंत्रालय: केन्द्रीय सचिवालय: मंत्रिमण्डल सचिवालय तथा प्रधानमंत्री कार्यालय (पी.एम.ओ.)

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 संघ स्तरीय मंत्रालय

1.2.1 संघ स्तरीय मंत्रालयों की संरचना

1.2.2 भारत सरकार के मंत्रालय एवं विभाग

1.3 केन्द्रीय सचिवालय

1.3.1 केन्द्रीय सचिवालय का संगठन

1.3.2 केन्द्रीय सचिवालय के कार्य

1.4 मंत्रिमण्डल सचिवालय

1.4.1 मंत्रिमण्डल सचिवालय का संगठन

1.4.2 मंत्रिमण्डल सचिवालय के कार्य

1.4.3 मंत्रिमण्डल सचिव एवं अधीनस्थ अधिकारी

1.5 प्रधानमंत्री कार्यालय

1.5.1 प्रधानमंत्री कार्यालय का गठन

1.5.2 प्रधानमंत्री कार्यालय के कार्य

1.5.3 प्रधानमंत्री कार्यालय की परिवर्तित भूमिका

1.6 सारांश

1.7 शब्दावली

1.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- संघ स्तरीय प्रशासनिक मंत्रालयों के बारे में जान सकेंगे,
- केन्द्रीय सचिवालय का वर्णन कर सकेंगे,
- मंत्रीमण्डलीय सचिवालय के संगठन के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- मंत्रीमण्डलीय सचिवालय के कार्यों की विवेचना कर सकेंगे,
- प्रधानमंत्री कार्यालय के गठन एवं कार्यो को समझ सकेंगे ।

1.1 प्रस्तावना

संघ स्तरीय प्रशासनिक संगठन में मंत्रालय, केन्द्रीय सचिवालय, मंत्रीमण्डलीय सचिवालय तथा प्रधानमंत्री कार्यालय (पी.एम.ओ.) महत्वपूर्ण स्थिति रखते हैं। केन्द्रीय सचिवालय में केन्द्र सरकार के सभी मंत्रालय और विभाग हैं। जिसकी संरचना में राजनीतिक स्तर और प्रशासनिक स्तर पर कई स्तर होते हैं। केन्द्रीय सचिवालय में सभी विभागों के कार्य किये जाते हैं जो अलग–अलग मन्त्रालय अथवा विभागों में विभक्त होते हैं। मंत्रीमण्डलीय सचिवालय मंत्रीमण्डल के सभी प्रकार के प्रशासनिक कार्यों को करता है यह मंत्रीमण्डल की समिति एवं मंत्रीमण्डल के लिए आवश्यक दस्तावेज इत्यादि उपलब्ध कराता है। प्रधानमंत्री कार्यालय जिसे पहले प्रधानमंत्री सचिवालय भी कहते थे, प्रधानमंत्री के सभी प्रकार के कार्यों को सम्पन्न करता है लेकिन इसका मन्त्रिमण्डल से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता है इसी प्रकार मन्त्रिमण्डल सचिवालय का भी प्रधानमंत्री के कार्यों से कोई विशेष लेना–देना नहीं होता है।

1.2 संघ स्तरीय मंत्रालय

भारतीय संविधान भारत में संसदीय शासन प्रणाली की स्थापना करता है। जिसमें दो प्रकार की कार्यपालिकाएँ हैं– (1) संवैधानिक कार्यपालिका और (2) वास्तविक कार्यपालिका ।

सिद्धान्ततः प्रधानमंत्री सहित मन्त्रिपीरषद राष्ट्रपति को सहायता और परामर्श देने के लिए होती है, परन्तु वास्तविकता यह है कि सम्पूर्ण प्रशासन राष्ट्रपति के नाम पर प्रधानमंत्री तथा उनके अन्य साथियों (मंत्रियों) द्वारा प्रशासित होता है। इसलिए भारत सरकार की सम्पूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था को, सरकारी कार्यों का कुशलतापूर्वक सम्पादन करने हेतु मन्त्रालयों तथा विभागों में विभाजित किया गया है । राष्ट्रपति संविधान के अनुच्छेद 77 के खण्ड (3) के अन्तर्गत प्रधानमंत्री की सलाह पर मन्त्रालयों की स्थापना करता है और प्रत्येक मंत्री को तत्सम्बधी कार्य सौंपता है। भारत सरकार के मन्त्रालयों में या तो केवल एक ही विभागीय मन्त्रालय है अथवा कुछ मन्त्रालयों में दो या दो से अधिक विभाग भी सम्मिलित है ।

3.2.1 संघस्तरीय मंत्रालयों की संरचना

एक सरकारी विभाग अथवा मंत्रालय अपनी प्रशासनिक संरचना का सबसे बड़ा उप–सम्भाग होता है। जहाँ तक भारत के विभागीय संगठन का प्रश्न है, यहां की विभागीय पद्धति को एक तीन मंजिली इमारत स्वरूप है जिसके ऊपर की मंजिल 'राजनीतिक स्तर'', मध्य में 'सचिवालय' और निम्न स्तर पर 'निदेशालय' होते हैं ।

राजनीतिक स्तरः– मन्त्री विभाग का राजनीतिक अध्यक्ष होता है। उसकी सहायता के लिए राज्य मन्त्री तथा उपमन्त्री आदि होते है । ये सब संसद के सदस्य होते हैं और शासन के प्रत्येक परिवर्तन के साथ इन पदाधिकारियों का भी परिवर्तन होता रहता है। मन्त्री के कार्यों में' नीतियों का निर्माण करना, अधीक्षण करना, अपने विभाग की नीति और प्रशासन के लिए संसद के समक्ष स्पष्टीकरण देना है तथा दायित्व वहन करना है।

राज्यमंत्री तथा उपमंत्री आदि उसके द्वारा सौंपे गए कार्य पूरे करते हैं तथा जब वह संसद में स्वयं उपस्थित नहीं होता तो वहां उसका प्रतिनिधित्व करते हैं। लोकतन्त्रीय देश होने से भारत में लोकप्रशासन का संचालन मूलत: राजनीतिक अध्यक्षों द्वारा ही किया जाता है ।

सचिवालय :– राजनीतिक अध्यक्ष के एकदम नीचे विभाग का सचिवालय संगठन होता है जो नीतियों के निर्धारण के सम्बन्ध में आवश्यक सामग्री तथा विशेष ज्ञान के आधार पर राजनीतिक अध्यक्ष की सहायता करता है। नीतियों की क्रियान्विति तथा नीति का निरीक्षण करना भी उसका मूल कार्य है।

सम्बन्धित कार्यालय :– भारत सरकार के प्रशासनिक संगठन में सचिवालय के अतिरिक्त अनेक सम्बन्धित कार्यालय भी है। इनकी संख्या आमतौर पर 30 के लगभग रहती है। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं– संघ लोक सेवा आयोग, मुख्य श्रम आयुक्त, आयात एवं निर्यात का मुख्य नियन्त्रक, मुद्रण नियन्त्रक आदि। ये कार्यालय मिश्रित प्रकार के होते हैं। इनमें कुछ तो आत्म–निर्भर रहते हैं और कुछ विभागाध्यक्षों के अधीन रहते हैं।

विभाग का कार्यकारी संगठन :– मन्त्रालय का सचिवालय विभाग का नीति निर्धारण सम्बन्धी अंग है। नीति के निष्पादन का कार्य विभिन्न संगठन के हाथ में होता है, जिसको विभाग या मन्त्रालय का कार्यकारी संगठन कहा जाता है। विभिन्न मन्त्रालयों में विभागाध्यक्ष को अलग–अलग नामों से पुकारा जाता है। सामान्यत: उसे निदेशक, महानिदेशक, महानिरीक्षक, आयुक्त आदि नामों से पुकारा जाता है। विभागाध्यक्ष नीति क्रियान्विति के अधीक्षक और प्रशासन के अतिरिक्त अपने विभाग से सम्बन्धित विषयों में मन्त्रालय अथवा विभागीय सचिवालय को प्राविधिक परामर्श भी देता है। सचिवगण मन्त्रियों के आंख–कान हैं तथा विभागाध्यक्ष उनके हाथ हैं

1.2.2 भारत सरकार के मन्त्रालय एवं विभाग

1948 में हमारे यहां सचिवों के 8 पद, 18 विभाग और कुल 14.40 लाख कर्मचारी थे। आज भारत में 92 सचिव, 81 विभाग और 41.76 लाख से अधिक कर्मचारी हैं। हाल ही में सरकारी क्षेत्र में विनिवेश प्रक्रिया में तेजी लाने के लिए एक नया विनिवेश मन्त्रालय तथा सूचना प्रोद्योगिकी के सम्बन्ध में सभी पहल कदमियों को सुगम बनाने के लिए नोडल एजेन्सी के रूप में एक नया सूचना प्रौद्योगिकी विभाग स्थापित किया गया है। यह विभाग एक व्यापक कार्य योजना कार्यान्वित करेगा ।

2007 में केन्द्रीय सरकार के मन्त्रालय/विभाग भारत सरकार नियमावली 1961 से शासित हैं। जून 2007 में भारत सरकार में कार्यरत मन्त्रालय/विभाग निम्नलिखित हैं:–

(1) कृषि मन्त्रालय :– (1) कृषि और सहकारिता विभाग, (2) कृषि अनुसंधान और शिक्षा विभाग, (3) पशुपालन और दुग्ध विभाग।

(2) वाणिज्य और उद्योग मन्त्रालय :– 1. वाणिज्य विभाग, 2. औद्योगिक नीति संवर्द्धन विभाग।

(3) संचार और सूचना प्रौद्योगिकी मन्त्रालय :– 1. डाक विभाग, 2. दूर संचार विभाग, 3. सूचना प्रौद्योगिकी विभाग ।

(4) रक्षा मन्त्रालय :– 1. रक्षा विभाग, 2. रक्षा उत्पादन तथा पूर्ति विभाग, 3. रक्षा अनुसंधान तथा विकास विभाग, 4. पूर्व सैनिक कल्याण विभाग।

(5) वित्त मन्त्रालय :– 1. आर्थिक कार्य–विभाग, 2. व्यय विभाग, 3 राजस्व विभाग, 4. विनिवेश विभाग ।

(6) गृह मन्त्रालय :– 1. आन्तरिक सुरक्षा विभाग, 2. राज्य विभाग, 3. राजभाषा विभाग, 4. गृह विभाग, 5. जम्मू कश्मीर विभाग, 6. सीमा प्रबन्धन विभाग।

(7) मानव संसाधन विकास मन्त्रालय :– 1.प्रारम्भिक शिक्षा और साक्षरता विभाग, 2. माध्यमिक शिक्षा और उच्चतर शिक्षा विभाग।

(8) कार्मिक लोक शिकायत तथा पेंशन मन्त्रालय :– 1, कार्मिक तथा प्रशिक्षण विभाग, 2. प्रशासनिक सुधार तथा लोक शिकायत विभाग, 3.पेंशन तथा पेंशनभोगी कल्याण विभाग।

(9) विज्ञापन और प्रौद्योगिकी मन्त्रालय :– 1. विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग, 2. वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसन्धान विभाग, 3. जैव–प्रौद्योगिकी विभाग ।

(10) उपभोक्ता मामले, खाद्य तथा सार्वजनिक वितरण मन्त्रालय :– 1. उपभोक्ता मामले विभाग, 2. खाद्य एवं सार्वजनिक वितरण विभाग।

(11) स्वास्थ्य तथा परिवार कल्याण मन्त्रालय :– 1. स्वास्थ्य विभाग, 2. परिवार कल्याण विभाग, 3. भारतीय चिकित्सा व होम्योपैथी विभाग ।

(12) विधि और न्याय मन्त्रालय :– 1. विधि कार्य विभाग, 2. विधायी विभाग, 3. न्याय विभाग।

(13) विद्युत मन्त्रालय

(14) पर्यावरण तथा वन मन्त्रालय

(15) विदेश मन्त्रालय

(16) महिला एवं बाल विकास मन्त्रालय

(17) युवक कार्यक्रम तथा खेल मन्त्रालय

(18) लघु उद्योग मन्त्रालय

(19) सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन मन्त्रालय

(20) जनजाति कार्य मन्त्रालय

(21) सूचना और प्रसारण मन्त्रालय

(22) श्रम और रोजगार मन्त्रालय

(23) संसदीय कार्य मन्त्रालय

(24) पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस मन्त्रालय

(25) इस्पात मन्त्रालय

(26) नव एवं पुनर्नवीकरण ऊर्जा मन्त्रालय

(27) नागर विमानन मन्त्रालय

(28) भारी उद्योग और लोक उद्यम मन्त्रालय' :– 1. भारी उद्योग विभाग, 2. लोक उद्यम विभाग।

(29) संस्कृति मन्त्रालय

(30) पर्यटन मन्त्रालय

(31) कोयला मन्त्रालय

(32) ग्रामीण विकास मन्त्रालय :– 1. ग्रामीण विकास विभाग, 2. भूमि–संसाधन विभाग, 3. पेयजल पूर्ति विभाग।

(33) रसायन और उर्वरक मन्त्रालय :– 1. रसायन और पेट्रो–रसायन विभाग, 2. उर्वरक विभाग।

(34) शहरी विकास मन्त्रालय

(35) आवासन और गरीबी उपशमन मन्त्रालय

(36) रेल मन्त्रालय

(37) जहाजरानी, सड़क परिवहन और राजमार्ग मन्त्रालय

(38) कपड़ा मन्त्रालय

(39) कृषि एवं ग्रामीण उद्योग मन्त्रालय

(40) खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मन्त्रालय

(41) जल संसाधन मन्त्रालय

(42) सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मन्त्रालय

(43) पूर्वोतर विकास मन्त्रालय

(44) पंचायतीराज मन्त्रालय

(45) खनन मन्त्रालय

(46) पृथ्वी विज्ञान मन्त्रालय

(47) अल्पसंख्यक मामले मन्त्रालय

(48) निगम मामलों का मन्त्रालय

(49) अप्रवासी भारतीयों के मामलों का मन्त्रालय

(50) परमाणु ऊर्जा विभाग

(51) अन्तरिक्ष विभाग

(52) मन्त्रिमण्डल सचिवालय

(53) राष्ट्रपति सचिवालय

(54) प्रधानमंत्री कार्यालय

(55) योजना आयोग

1.3 केन्द्रीय सचिवालय

संघ स्तरीय मंत्रालयों का सामूहिक नाम ही केन्द्रीय सचिवालय है। जिसकी शुरूआत ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन के दौरान हुई। ब्रिटिशकाल में इसे 'ईम्पीरियल सेक्रेटेरियट' कहा जाता था। केन्द्रीय सचिवालय की आवश्यकता अनेक कारणों से रही जिनमें प्रमुख ये हैं– मंत्रिगण प्राय: व्यस्त रहते हैं अत: उनके प्रशासनिक कार्य सचिवालय करता है। मंत्रियों को विधि, नीति तथा कार्यक्रम निर्माण में सचिवालय द्वारा तकनीकी सहायता प्रदान की जा सकती है। राजनीतिक कार्यपालिका अर्थात् मंत्रिपरिषद अस्थायी तथा अकुशल होती है। अत: उसे स्थायी कार्यपालिका (सचिवालय) एवं कुशल कर्मिकों की आवश्कयकता है। सचिवालय द्वारा मंत्रियों को तटस्थ एवं व्यावहारिक सुझाव दिया जा सकता है। वस्तुत: सचिवालय व्यवस्था आधुनिक कल्याणकारी– प्रशासकीय राज्यों का अभिन्न अंग है। जिसका कोई अन्य विकल्प उपलब्ध नहीं है।

1.3.1 केन्द्रीय सचिवालय का संगठन

नीचे चार्ट में एक मंत्रालय के सचिवालय संगठन के अधिकारियों के पदक्रम और संरचना का उल्लेख किया गया हैं:–

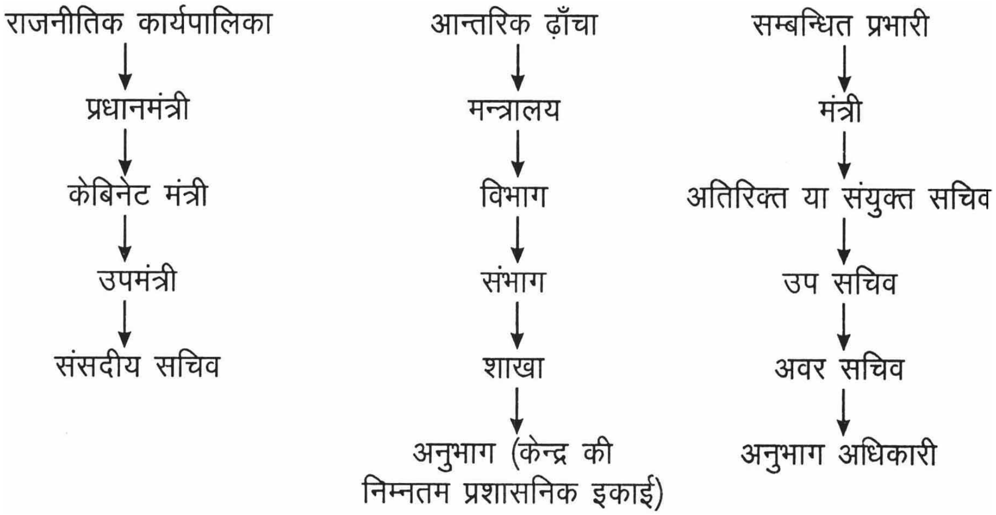

बहुधा उप सचिव से ऊपर एवं संयुक्त सचिव से नीचे निदेशक पद भी सृजित किया जाता है। यह पद सन् 1960 में सृजित किया गया था।

प्रत्येक मंत्रालय मुख्यतया विभागों में बंटा होता है। प्रत्येक विभाग स्कन्धों में, प्रत्येक स्कंध प्रभागों में तथा प्रभाग शाखाओं में बँटे होते है। प्रत्येक शाखा अनुभागों में बंटी होती है। अनुभाग (जिसे कार्यालय कहते हैं) किसी मन्त्रालय/विभाग की सबसे छोटी और सबसे निचले स्तर की इकाई है।

अनुच्छेद–77 के अन्तर्गत राष्ट्रपति द्वारा भारत सरकार (कार्य निर्धारण) नियम, 1961 तथा भारत सरकार (कार्य संचालन) नियम,1961 निर्मित किए गये है। जिसके तहत प्रधानमंत्री एवं मंत्रिपरिषद की सलाह पर राष्ट्रपति दारा भारत सरकार (केन्द्रीय सचिवालय) के

मंत्रालयों तथा विभागों का निर्माण किया गया है। जिनका कार्य संचालन इन नियमों के अन्तर्गत होता है।

प्रत्येक मंत्रालय का शीर्ष नियंत्रणकर्ता एक मंत्री होता। जो केबिनेट स्तर का अथवा स्वतंत्र प्रभारी के रूप में राज्य मंत्री होता है। राज्य मंत्री की सहायतार्थ उप मंत्री तथा संसदीय सचिव होता है जो सम्बन्धित विभाग के कार्यों तथा आकार को देखते हुए नियुक्त किया जाता है। राजनीतिक मंत्रियों की प्रशासनिक सहायता के लिए प्रत्येक विभाग में एक सचिव है जो प्राय: भारतीय प्रशासनिक सेवा का वरिष्ठ अधिकारी होता है। सचिव के अधीन विशिष्ट सचिव, अतिरिक्त या अपर सचिव, संयुक्त सचिव, उप सचिव, अवर सचिव तथा अन्य अधिकारी कार्यरत होते है। लिपिकीय या मंत्रालयिक कार्य सम्पादित करने हेतु केन्द्रीय सचिवालय सेवाओं के कार्मिक पदस्थापित होते है। सचिव, अतिरिक्त सचिव तथा संयुक्त सचिव स्तर तक को प्राय: उच्च प्रबन्ध, निदेशक, उप सचिव एवं अवर सचिव को मध्यस्तरीय प्रबन्ध, तथा इससे नीचे के कार्मिक वर्ग को निम्न प्रबन्ध में वर्गीकृत किया जाता है।

सचिव, अतिरिक्त सचिव, संयुक्त सचिव नीति संबंधी मामलों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उप सचिव के अधीन प्राय: दो शाखाएँ हैं जो अवर सचिव या ब्रांच ऑफीसर के नियंत्रण में होती हैं। प्रत्येक शाखा के अधीन 2–4 अनुभाग होते हैं जो अनुभाग अधिकारी के अधीन स्टाफ के मध्य कड़ी का कार्य करता है। अनुभाग केन्द्रीय सचिवालय के किसी भी विभाग की निम्नतम प्रशासनिक इकाई होती है। प्रत्येक अनुभाग में सहायक, वरिष्ठ लिपिक, कनिष्ठ लिपिक, टंकक तथा आशुलिपिक कार्यरत होते हैं।

अधिकांश मंत्रालयों में अनुभाग की भाँति 'डेस्क सिस्टम' भी बनाया गया है। डेस्क ऑफिसर सिस्टम की शुरूआत ब्रिटिश व्हाइट हॉल परम्परा पर सन् 1950 से कुछ मंत्रालयों में चालू की गई थी, जो जनवरी, 1973 से व्यापक रूप से प्रचलित है। डेस्क अधिकारी पद, अनुभाग अधिकारी या अवर सचिव द्वारा वहन किया जाता है। इस प्रणाली में कम महत्व के मामलें स्वयं डेस्क ऑफिसर ही निपटाता है जबकि नीतिगत मामले ही उप सचिव या उससे उच्च अधिकारियों तक भेजे जाते हैं। सहायक तथा वरिष्ठ लिपिक सम्बन्धित पत्रावली की प्रथम नोटिंग–ड्राफ्टिंग करके प्रस्तुत करते हैं। कुछ विभागों में 'ऑफिसर ऑन स्पेशल ड्यूटी' का पद भी सृजित किया जाता है। वस्तुत: विशेषाधिकारी का पद स्तर तथा कार्य निश्चित नहीं होता है। यह पद प्रशिक्षण प्राप्ति या फिर राजनीतिक लाभ देने, दोनों ही दृष्टि से उपयुक्त रहता है। इसकी पदावधि भी निश्चित नहीं है। विभाग के स्टेण्डिंग ऑर्डर में कर्मिकों के कार्यों का बंटवारा किया जाता है।

लोक सेवाएं :– केन्द्रीय सचिवालय (भारत सरकार) के मंत्रालयों तथा विभागों में नियुक्त होने वाले अधिकारी एवं कर्मचारी विभिन्न प्रकार की लोक सेवाओं से सम्बन्धित होते हैं, जैसे:–

1. अखिल भारतीय सेवाएँ
2. केन्द्रीय सेवाएँ
3. केन्द्रीय सचिवालय सेवाएँ

4. केन्द्रीय सचिवालय स्टेनोग्राफर सेवाएँ
5. केन्द्रीय सचिवालय लिपिक सेवाएँ

अवधि प्रणाली :– केन्द्रीय सचिवालय के विभिन्न मंत्रालयों या विभागों में अधिकारियों के पद राज्य संवर्गों के अखिल भारतीय–सेवाओं के अधिकारियों, केन्द्रीय सेवाओं के प्रथम श्रेणी अधिकारियों तथा चयनित सूची के राज्य सेवाओं के अधिकारियों इत्यादि से भरे जाते है। एक निश्चित अवधि तक ये अधिकारी किसी मंत्रालय में पदस्थापित रहते है तथा पुन: अपने मूल स्थल लौट जाते हैं। यही अवधि प्रणाली कहलाती है जो सन् 1905 से लॉर्ड कर्जन के शासनकाल में शुरू हुई थी। लॉर्ड कर्जन ने यह प्रणाली जिला एवं क्षेत्रीय कार्यालयों में नियुक्त प्रशासनिक अधिकारियों के ज्ञान एवं अनुभव को केन्द्रीय स्तर पर उपयोग में लाने तथा इन अधिकारियों का केन्द्रीय सत्ता के साथ सामंजस्य बैठाने के लिए शुरू की थी। अवधि प्रणाली के पक्ष एवं विपक्ष में बहुत बार बहस हो चुकी है। निसंदेह इस प्रणाली में गुण–दोष दोनों विद्‌यमान है। फिर भी यह वर्तमान में संचालित है।

केन्द्रीय सचिवालय सेवाओं की स्थापना (1951) के कारण अवर सचिव तथा उप सचिव इत्यादि के कुछ पद इन्हीं सेवाओं से भरे जाने लगे हैं अत: अवधि प्रणाली का क्षेत्र सीमित हुआ है। रेलवे, विदेश तथा विधि एवं न्याय मंत्रालय ने अपनी विशिष्ट सेवाएँ स्थापित कर रखी हैं। इसी प्रकार सन् 1957 में केन्द्रीय प्रशासनिक पूल के निर्माण के पश्चात् वित्त एवं वाणिज्य जैसे विशेषज्ञ पद पूल के अधिकारियों से भरे जाते हैं। साथ ही प्रशासन में बढ़ती विशिष्टीकरण की प्रवृति एवं माँग के कारण अवधि प्रणाली की ओर झुकाव स्वाभाविक रूप से कम हुआ है। वर्तमान में सचिव तथा संयुक्त सचिव पदों पर 5 वर्ष, उप सचिव के पद पर 4 वर्ष तथा अवर सचिव के पद पर 3 वर्ष की अवधि निर्धारित की हुई है।

व्हीलर समिति (1930–36) तथा मैक्सवेल समिति (1937) ने अवधि प्रणाली के पक्ष में यह तर्क दिए थे कि इस प्रणाली से जिला स्तरीय अनुभव केन्द्र सरकार तक पहुँचते हैं तथा फील्ड के अधिकारी केन्द्र में आकर अभिप्रेरित होते हैं। व्हीलर समिति तथा मैक्सवेल समिति की तरह स्मिथ समिति (1919) साइमन आयोग (1930) तथा रॉलैण्ड समिति (1944–45) और स्वतन्त्रता के बाद गणित प्रशासनिक सुधार आयोग (1968–70) ने भी अवधि प्रणाली के पक्ष में मत प्रकट किये हैं। केन्द्रीय सचिवालय सेवा के अधिकारी भी उप सचिव तथा निदेशक स्तर तक पदोन्नति पा रहे हैं। अत: अवधि प्रणाली का कमजोर होना स्वाभाविक है।

केन्द्रीय सचिवालय की संरचना में उपर्युक्त लिखित संघ स्तरीय मंत्रालय तथा विभाग आते हैं। प्रत्येक मंत्रालय के अधीन अनेक कार्यकारी संगठन जैसे– निदेशालय, बोर्ड, आयोग, संस्था तथा लोक उपक्रम कार्यरत हैं। इन कार्यकारी संगठनों का मुख्य कार्य सम्बन्धित मंत्रालय या विभाग की नीतियों एवं कार्यक्रमों को वास्तविक स्तर पर क्रियान्वित करना है। कार्यकारी संगठनों की शाखाएँ देशभर में कार्यरत होती हैं।

भारत में सचिवालय तथा कार्यकारी संगठन (निदेशालय) पृथक होते हैं। पृथक्कता की यह व्यवस्था स्वीडन में भी पायी जाती है। ब्रिटेन में सचिवालय एवं निदेशालय एकीकृत होते हैं। कार्यकारी संस्थाओं (संगठनों) की प्रकृति दो प्रकार की होती है :–

(1) संलग्न कार्यालय

(2) अधीनस्थ कार्यालय

संलग्न कार्यालय वह होता है जो किसी मंत्रालय को तकनीकी सहायता एवं परामर्श प्रदान करता है। तकनीकी परामर्श देने के अतिरिक्त ऐसा कार्यालय नीति–निर्माण में सहयोग भी करता है तथा आवश्यकता पड़ने पर नीतियों एवं कार्यक्रमों का क्रियान्वयन भी कराता है जबकि अधीनस्थ कार्यालय प्रत्यक्षतः किसी मंत्रालय के अधीन रहते हुए, मंत्रालय की नीतियों एवं कार्यक्रमों को व्यावहारिक स्तर पर क्रियान्वित करता हैं। अधीनस्थ कार्यालयों की शाखाएँ आवश्यकतानुसार राज्यों एवं जिलों में फैली हुई होती है। उदाहरणस्वरूप रेल मंत्रालय से सम्बद्ध 'रेलवे बोर्ड' एक संलग्न कार्यालय है जबकि वित्त मंत्रालय से सम्बद्ध इण्डिया सिक्योरिटी प्रेस तथा भारत सरकार की टक्सालें अधीनस्थ कार्यालयों की श्रेणी में आती है। इन कार्यकारी संगठनों को किस विधि के अधीन गठित किया जाए तथा क्या नामकरण किया जाए इसका निर्धारण मंत्रालय द्वारा किया जाता है।

1.3.2 केन्द्रीय सचिवालय के कार्य

सचिवालय कार्मिक एजेंसी है। इसका कार्य भारत सरकार को उसकी जिम्मेदारियों और कर्तव्यों के निर्वहन में सहयोग और सहायता करना है। यह सरकार के लिए सूचना के भण्डार स्वरूप है जो विगत की कार्यवाहियों और कार्यों के प्रकाश में भावी नीतियों, उभरती समस्याओं और वर्तमान कार्यकलापों के जाँच कार्य में सरकार की सहायता करता है। किसी विषय पर सरकारी स्तर पर लिए जाने वाले निर्णय से पहले विषय की विस्तृत जाँच परख का काम सचिवालय द्वारा किया जाता है।

शासकीय पुस्तिका के अनुसार सचिवालय द्वारा मंत्रालयों, विभागों से जुड़े निम्नलिखित कार्य किए जाते हैं :–

(1) मंत्री को नीति निर्धारण करने तथा समय–समय पर आवश्यकतानुसार उसमें संशोधन करने में मदद करना।

(2) विधान तथा नियम और विनियम बनाना

(3) क्षेत्रीय नियोजन और कार्यक्रम निरूपण।

(4) (क) मंत्रालय/विभाग के कार्यों से संबंधित व्यय का बजटीय प्रावधान और नियंत्रण, और

(ख) संचलनात्मक कार्यक्रमों और योजनाओं और उनमें संशोधन से संबंधित प्रशासनिक और वित्तीय अनुमोदन देना या लेना।

(5) कार्यपालक विभागों या अर्ध–स्वायत्त कार्यक्षेत्रीय एजेंसियों द्वारा नीतियों और कार्यक्रमों के संचालन का पर्यवेक्षण और परिणामों का मूल्यांकन।

(6) नीतियों की व्याख्या और उनके बीच समन्वयन स्थापित करना, सरकार की अन्य शाखाओं की सहायता करना तथा राज्य प्रशासन से संपर्क बनाए रखना।

(7) मंत्रालय/विभाग और इसकी कार्यपालक एजेंसियों दोनों में कार्मिक और संगठनिक सक्षमता विकसित करने के उपाय करना।

(8) मंत्री को संसदीय जिम्मेदारियों के निर्वहन में सहायता करना।

प्रशासनिक सुधार आयोग ने भारत सरकार की मशीनरी और इसकी कार्य पद्धति विषय से संबंधित अपनी रिर्पोट 1968 में सचिवालय की महत्ता के बारे में ठीक ही कहा है सचिवालय कार्यप्रणाली से प्रशासन को संतुलन और स्थायित्व प्राप्त हुआ है तथा इसने मंत्रालय के पूरे तंत्र के लिए केन्द्रक का कार्य किया है। इसके फलस्वरूप मंत्री स्तर पर संसद के प्रति जवाबदेही और मंत्रालयों के मध्य तालमेल बनाए रखा जा सका है क्योंकि एक सांस्थानिक प्रणाली के रूप में सरकार द्वारा कार्य को ठीक ढ़ंग से निष्पादित किया जाना अनिवार्य है।

1.4 मन्त्रिमण्डल सचिवालय

अर्थ:– भारत के संविधान में संसदीय प्रणाली की सरकार का प्रावधान है जिसमें मंत्रिमण्डल को वास्तविक कार्यपालक का दर्जा प्राप्त है। प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में मन्त्रिमण्डल पर भारत सरकार के पूरे प्रशासन की जिम्मेदारी है। इस कार्य में मंत्रिमण्डल के सहायतार्थ मंत्रिमण्डल सचिव होता है। अत: मंत्रिमण्डल सचिवालय केन्द्रीय मंत्रिमण्डल की स्टाफ एजेंसी है। यह भारत के प्रधानमंत्री के दिशा–निर्देशन और नेतृत्व में कार्य करता है। केन्द्र सरकार में उब स्तरीय नीति–निर्धारण प्रक्रिया में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है।

मंत्रिमण्डल सचिवालय की कार्य विभाजन नियमावली, 1961 के तहत इसे भारत सरकार में एक विभाग का दर्जा प्राप्त है। इसका राजनीतिक प्रमुख प्रधानमंत्री और प्रशासनिक प्रमुख मंत्रिमण्डल–सचिव होता है। मंत्रिमण्डल सचिवालय वर्ष 1947 में गवर्नर–जनरल की कार्यकारी परिषद् के स्थान पर अस्तित्व में आया।

1.4.1 मंत्रिमण्डल सचिवालय का संगठन

मंत्रिमण्डल सचिवालय में तीन शाखाऐं है, सिविल शाखा, सैन्य शाखा और आसूचना स्कंध। सिविल स्कंध मुख्य स्कंध है जो केन्द्रीय मंत्रिमण्डल को परामर्श और सहायता उपलब्ध कराता है। इस विभाग का सैन्य स्कंध सैन्य मामलों की रक्षा मंत्री की समिति, सैन्य मामलों की समिति, रक्षा सेवा प्रमुखों की समिति, राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद और अन्य समितियों को सचिवीय सहायता उपलब्ध कराता है। आसूचना स्कंध, केन्द्रीय मंत्रिमण्डल की संयुक्त आसूचना समिति से जुड़े मामलों का कार्य देखता है।

वर्ष 1988 में केन्द्रीय सचिवालय के एक अंग के रूप में जन परिवेदना निदेशालय का गठन हुआ था। इस निदेशालय का प्रमुख भारत सरकार में सचिव के स्तर के निदेशक को बनाया गया। इस निदेशालय द्वारा केन्द्र सरकार के निम्नलिखित संगठनों से संबंधित जन परिवेदना का कार्य देखा जाता है:–

(1) रेलवे, दूरसंचार और डाक विभाग।

(2) भूतल परिवहन मंत्रालय, नगर विमानन मंत्रालय और शहरी विकास मंत्रालय।

(3) वित्त मंत्रालय, आर्थिक कार्य विभाग के बीमा और बैकिंग प्रभाग।

(4) जहाजरानी और पोर्ट ट्रस्ट महानिदेशालय, दिल्ली नगर निगम, इंडियन एयरलाइंस और एयर इण्डिया।

उसके कार्यों और जिम्मेदारियों को निपटाने में सहायता प्रदान करने के लिए कैबिनेट सचिव (मंत्रिमण्डल सचिव) के अधीन कई सचिव हैं। ये सचिव से लेकर अवर सचिव स्तर के अधिकारी है। इसके अतिरिक्त कैबिनेट सचिवालय में प्रधानमंत्री को परामर्श देने के लिए अलग–अलग विषयों से संबद्ध सलाहकार भी है।

मंत्रिमण्डलीय सचिवालय : संगठनात्मक ढ़ाँचा

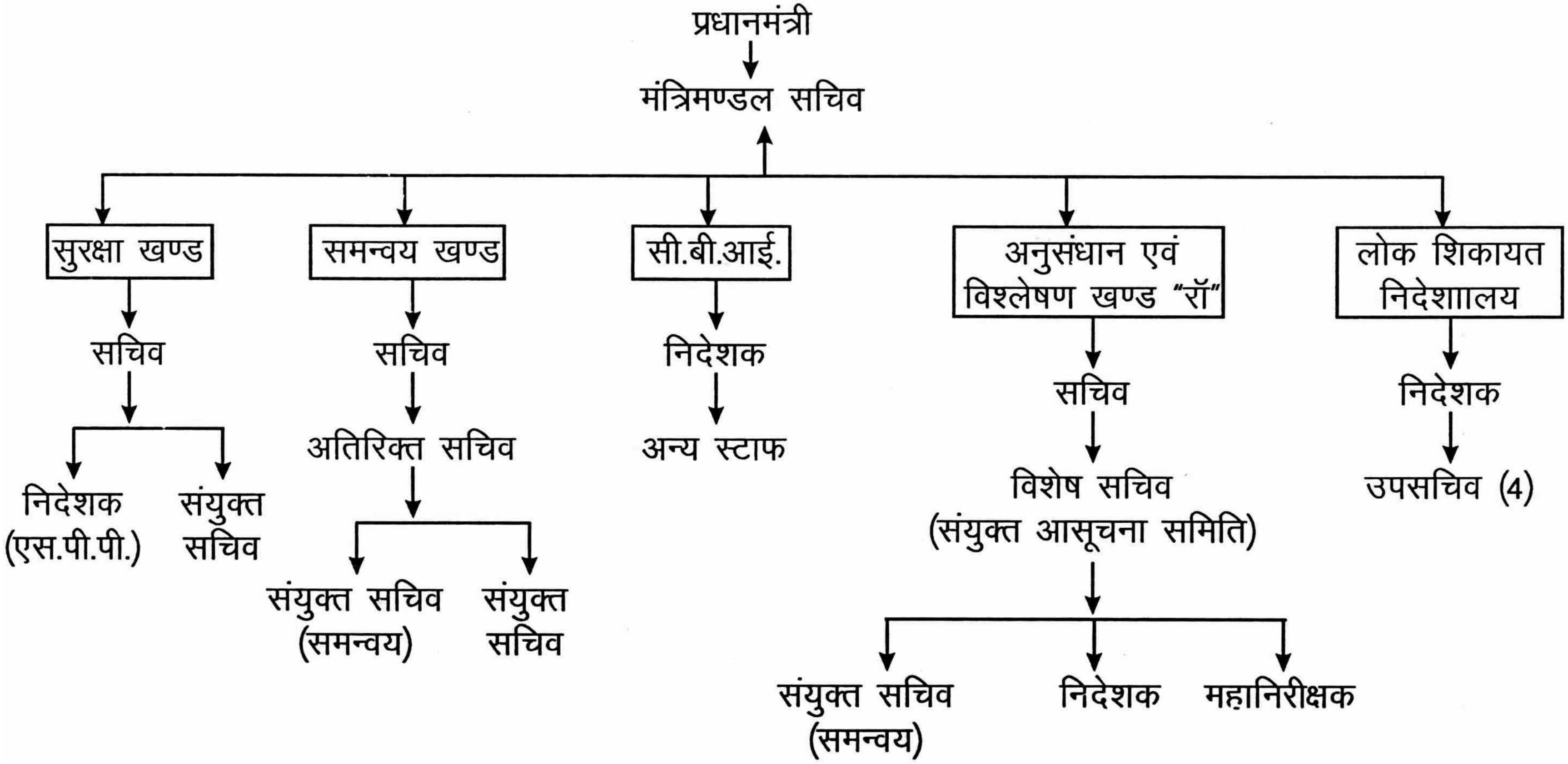

सम्बद्ध निकाय : राष्ट्रीय प्राधिकरण, रासायनिक हथियार संध।

1.4.2 मन्त्रिमण्डल सचिवालय की भूमिका और कार्य

मंत्रिमण्डल सचिवालय (कैबिनेट सचिवालय) द्वारा निम्नलिखित कार्य किए जाते हैं:–

(1) मंत्रिमण्डल की बैठक की कार्यसूची, तैयार करना तथा इसके लिए आवश्यक सूचना और सामग्री उपलब्ध कराना।

(2) मन्त्रिमण्डल और मन्त्रिमण्डल समितियों द्वारा लिए गए निर्णयों का रिकॉर्ड रखना तथा उन्हें सभी संबद्ध मंत्रालयों में परिचालित करना।

(3) कैबिनेट समितियों यथा: राजनीतिक मामलों की समिति (जिसे सुपर कैबिनेट भी कहते हैं), आर्थिक मामलों से जुड़ी समिति, नियुक्ति के मामलों से जुड़ी समिति (तीनों समितियों के अध्यक्ष प्रधानमंत्री) और गृहमंत्री की अध्यक्षता वाली संसदीय मामलों की समिति को सचिवालय सहायता प्रदान करना।

(4) केन्द्र सरकार की मुख्य गतिविधियों से राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति और सभी केन्द्रीय मंत्रियों को अवगत कराते रहना।

(5) सरकारी कार्य से संबंधित नियम तैयार करना, उन्हें अन्तिम रूप देना तथा राष्ट्रपति के अनुमोदन से केन्द्र सरकार मंत्रालयों / विभागों में कार्यों का बँटवारा करना।

(6) कैबिनेट सचिवालय केन्द्र सरकार में मुख्य समन्वयक एजेंसी के रूप में कार्य करता है और मंत्रालयों के मध्य के विवादों का निपटान करता है।

(7) कैबिनेट सचिवालय संबद्ध मंत्रालयों/ विभागों और अन्य कार्यकारी एजेंसियों द्वारा कैबिनेट के निर्णयों के कार्यान्वयन पर नजर रखता है।

(8) कैबिनेट सचिवालय मंत्रियों की नियुक्ति और त्यागपत्र से जुड़े मामलों, मंत्रियों को विभाग के बँटवारे से संबन्धित मामले और मंत्रालयों के गठन और पुनर्गठन से संबंधित कार्यों का भी निपटाने का कार्य करता है।

1.4.3 कैबिनेट सचिव एवं अधीनस्थ अधिकारी

कैबिनेट सचिव का पद भारत में सन् 1936 में सृजित हुआ था जिसे सन् 1950 में विधिवत रूप दिया गया। मंत्रिमण्डल–सचिवालय में नियुक्त होने वाला कैबिनेट सचिव सर्वाधिक महत्व तथा गुरूतर दायित्वों का पद है। इस पद पर वरिष्ठ तथा योग्य आई.ए.एस. की नियुक्ति प्रधानमंत्री की अनुशंसा पर सामान्यत: 2–3 वर्षो के लिए होती है जिसे आवश्यकता होने पर बढ़ाया भी जा सकता है। यद्यपि प्रधानमंत्री का अपना निजी सचिव तथा प्रधानमंत्री कार्यालय का पृथक से सचिव होता है तथापि कैबिनेट सचिव की भूमिका प्रधानमंत्री के आँख तथा कान के समान होती है जो न केवल प्रधानमंत्री को परामर्श एवं सूचना उपलब्ध करवाता है बल्कि मंत्रिमण्डल की बैठकों में उपस्थित होकर मिनिट्स भी तैयार करता है। जिन्हें वह मंत्रियों तथा मंत्रालयों तक पहुँचाने के अतिरिक्त मंत्रिमण्डल के निर्णयों की क्रियान्विति भी सुनिश्चित करवाता है। केन्द्रीय सचिवालय की सचिवों की समिति तथा राज्यों के मुख्य सचिवों को समिति का अध्यक्ष होने के साथ–साथ वह कैबिनेट की विभिन्न समितियों में भी सम्मिलित होता है। भारत सरकार की नीतियों तथा कार्यक्रमों में कैबिनेट सचिव की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका होती

है। आपातकाल, कामचलाऊ सरकार तथा समाचार–पत्रों पर मान हानि के दावों के मामलें में अनुमति प्रदान करने की स्थिति में कैबिनेट सचिव की पदस्थिति अत्यन्त प्रभावी हो जाती है।

इसके अतिरिक्त वह सिविल सर्विसेज बोर्ड तथा वरिष्ठ चयन मण्डल का अध्यक्ष भी होता है। वर्तमान परिस्थितियों में कैबिनेट सचिव प्रधानमंत्री कार्यालय, प्रधानमंत्री हाउस तथा अन्य मंत्रालयों के मध्य समन्वयक की भूमिका भी निभाता है। भारत की प्रशासनिक सेवाओं का यह सर्वोच्च पद लोक सेवकों के लिए प्रेरणा एवं मनोबल का कार्य भी करता है।

मंत्रिमण्डल सचिवालय में मंत्रिमण्डल सचिव के अधीन तीन सचिव क्रमश: सुरक्षा, समन्वय तथा अनुसंधान एवं विश्लेषण खण्ड अर्थात् 'रॉ' तथा एक निदेशक, लोक शिकायत निवारण के कार्य सम्पादित करते हैं। प्रथम खण्ड का प्रभारी सचिव (सुरक्षा) मुख्यत: प्रधानमंत्री की सुरक्षा, विशेष सुरक्षा कमाण्डों की व्यवस्था पूर्व प्रधानमंत्रियों तथा अतिविशिष्ट सुरक्षा श्रेणी प्राप्त व्यक्तियों की रक्षा से सम्बन्धित कार्य निर्वाहित करता है। यह पद आई.पी.एस. अधिकारी द्वारा धारण किया जाता है। जिसके अधीन निदेशक तथा एक संयुक्त सचिव भी कार्यरत होता है। एस.पी.जी. की स्थापना सन् 1985 में की गई थी। इस खण्ड में रक्षा सेवाओं के अधिकारी भी कार्यरत रहते है। सचिवालय का दूसरा खण्ड समन्वय का होता है जिसका प्रमुख एक सचिव तथा उसके अधीन एक अतिरिक्त सचिव तथा दो संयुक्त सचिव क्रमश: समन्वय तथा संयुक्त वार्ता समिति होते है। इसके कार्य मंत्रिमण्डल की बैठकों की कार्यसूची बनाने, मंत्रियों को सूचना देने, बैठक की आवश्यक व्यवस्थाएँ करने तथा महत्वपूर्ण फाइलों के रख–रखाव से सम्बन्धित हैं।

तीसरा खण्ड अनुसंधान एवं विश्लेषण खण्ड (रॉ) से सम्बन्धित है। जिसका प्रमुख एक सचिव होता है जिसके अधीन विशेष सचिव, संयुक्त सचिव, निदेशक, महानिरीक्षक तथा अन्य अधिकारी कार्यरत हैं। कैबिनेट सचिवालय का चौथा खण्ड लोक शिकायत निदेशालय में है। एक निदेशक तथा अन्य उप सचिव, अवर सचिवों से युक्त निदेशालय सन् 1988 में राजीव गाँधी सरकार द्वारा स्थापित किया गया था। समस्त केन्द्रीय मंत्रालयों के कामकाज पर निगरानी रखने के वास्ते पाँचवें वेतन आयोग की सिफारिश पर मंत्रिमण्डल सचिवालय के एक भाग रूप में कार्यकुशलता इकाई भी बनाई गई है। कैबिनेट सचिवालय द्वारा 5 मई 1997 को पारित एक प्रस्ताव के द्वारा राष्ट्रीय प्राधिकरण, रासायनिक हथियार संधि की स्थापना की गई है। इसके अतिरिक्त जनवरी, 2003 में केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो को इस सचिवालय से संलग्न कर दिया गया है।

मंत्रिमण्डल सचिवालय के पदाधिकारियों की नियुक्ति प्रधानमंत्री की इच्छा पर निर्भर करती है।

प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग ने कैबिनेट सचिव की भूमिका केन्द्रीय प्रशासन में सामान्य समन्वयकर्ता के रूप में रेखांकित की थी। साथ ही उसे प्रधानमंत्री, मंत्रिमण्डल तथा इसकी समितियों का प्रमुख स्टाफ सलाहकार भी माना था। आयोग का यह भी मत था कि कैबिनेट सचिव का कार्यकाल 3–4 वर्ष अवश्य होना चाहिए तथा कैबिनेट सचिव नीतिगत

मामलों पर जो भी परामर्श सरकार को दे उसे वह स्वयं के स्तर पर निर्धारित करे न कि मंत्रिमण्डल सचिवालय में कार्यरत अधीनस्थों (सचिवों) के लिए छोड़ दे।

सारांशत: भारत में मंत्रिमण्डल सचिवालय की भूमिका समन्वयकारी, नियंत्रणकारी तथा परामर्शदात्री निकाय के रूप में है। जहाँ लोक सेवाओं का शीर्षतम अधिकारी केबिनेट सचिव के रूप में न केवल भारत सरकार का परामर्शदाता है बल्कि समूचे प्रशासन तंत्र का दिग्दर्शक भी होता है। राजनीतिक विश्लेषकों का मत है कि प्रधानमंत्री कार्यालय तथा कई बार प्रधानमंत्री हाउस की बढ़ती भूमिका से मंत्रिमण्डल सचिवालय का प्रभाव घटा है।

1.5 प्रधानमंत्री कार्यालय

प्रधानमंत्री सरकार के प्रमुख और वास्तविक कार्यकारी प्राधिकारी के रूप में देश की राजनीतिक प्रशासनिक प्रणाली के अंतर्गत अति महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्रधानमंत्री कार्यालय का काम है प्रधानमंत्री की भारी जिम्मेदारियों को पूरा करने के कार्य में उसकी सहायता करना। अत: प्रधानमंत्री कार्यालय एक स्टाफ एजेंसी है जो प्रधानमंत्री को सचिवीय सहायता और महत्त्वपूर्ण मुद्दों से संबंधित सलाह देती है। भारत सरकार में उच्च स्तर पर नीति निर्धारण की प्रक्रिया में इस कार्यालय की महत्वपूर्ण भूमिका है। फिर भी, यह संस्था संविधान की परिधि से बाहर है।

सरकारी कार्य विभाजन नियमावली 1961 के अंतर्गत प्रधानमंत्री कार्यालय को भारत सरकार के विभाग का दर्जा प्राप्त है। इसका कोई संबद्ध अथवा अधीनस्थ कार्यालय नहीं है।

प्रधानमंत्री कार्यालय वर्ष 1947 में गवर्नर जनरल के सचिव की जगह अस्तित्व में आया। जून, 1977 तक इस कार्यालय को प्रधानमंत्री सचिवालय कहा जाता था।

1.5.1 प्रधानमंत्री कार्यालय का गठन

प्रधानमंत्री कार्यालय का राजनीतिक प्रमुख प्रधानमंत्री और प्रशासनिक प्रमुख प्रधान सचिव होता है। इसके अतिरिक्त, इस कार्यालय में एक या दो अपर सचिव होते हैं, चार से पाँच संयुक्त सचिव तथा कई निदेशक/ उपसचिव और अपर सचिव होते हैं। इस कार्यालय में अन्य अधिकारी भी होते हैं जैसे निजी सचिव, विशेष कार्य अधिकारी, सामाजिक सचिव, अनुसंधान अधिकारी और हिंदी अधिकारी आदि। इन अधिकारियों की सहायतार्थ अनुभाग अधिकारी, उच्च श्रेणी लिपिक, अपर श्रेणी लिपिक, आशुलिपिक आदि होते हैं।

इन कार्मिकों को सामान्यत: लोकसेवा से लिया जाता है और निश्चित समयावधि के लिए तैनात किया जाता है। इन कार्मिकों का दर्जा केन्द्र सरकार के विभिन्न मंत्रालयो / विभागों के अधिकारियों के समकक्ष होता है।

प्रधानमंत्री कार्यालय में प्रधानमंत्री के प्रधान सचिव की भूमिका महत्वपूर्ण होती है जो निम्नलिखित कार्य करता है–

1. कार्यालय की सभी सरकारी फाइलों का निपटारा करना।
2. प्रधानमंत्री के समक्ष सभी महत्वपूर्ण विषय सामग्री को आदेशार्थ और निर्देशार्थ रखना।

3. प्रधानमंत्री द्वारा महत्त्वपूर्ण शिष्टमंडलों के साथ किए जाने वाले विचार–विमर्श से जुड़े विषयों से संबंधित नोट (टिप्पणी) तैयार करना।
4. प्रधानमंत्री दारा सौंपे गए विभिन्न मंत्रालयों और विभागों से संबंधित कार्य की देखभाल करना।
5. कार्यालय के विभिन्न कर्मचारियों के कार्यों में समन्वय बनाए रखना।
6. प्रधानमंत्री को विदेश और देश से जुड़े विभिन्न मामलों पर सलाह देना।

प्रधानमंत्री कार्यालय का संगठन

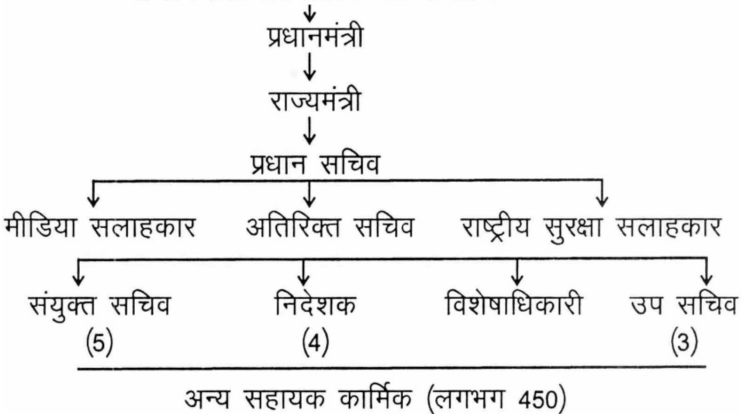

1.5.2 प्रधानमंत्री कार्यालय के कार्य

प्रधानमंत्री कार्यालय के कई कार्य हैं जो इस प्रकार हैं–

1. सरकार के प्रमुख के रूप में प्रधानमंत्री को उसकी समग्र जिम्मेदारियों के मद्देनजर सहायता प्रदान करना। जैसे– केन्द्रीय मंत्रालयों/ विभागों और राज्य सरकारों से संपर्क बनाए रखना आदि।
2. योजना आयोग के अध्यक्ष और राष्ट्रीय विकास परिषद् की जिम्मेदारियों के जनसंपर्क से जुड़े कार्यों जैसे– सर्वसाधारण और प्रेस से संपर्क आदि को संभालना।
3. उन सभी संदंर्भो का निपटारा करना जो सरकारी कार्य विभाजन से संबंधित नियमावली के तहत प्रधानमंत्री के समक्ष लाए गए हों।
4. निर्धारित नियमों के तहत प्रधानमंत्री के समक्ष आदेशार्थ प्रस्तुत मामलों की जाँच में प्रधानमंत्री की सहायता करना।
5. राष्ट्रपति, राज्यपालों तथा देश में विदेशी प्रतिनिधियों के साथ संपर्क बनाए रखना।
6. प्रधानमंत्री के लिए 'विचार केन्द्र' के रूप में कार्य करना।

प्रधानमंत्री कार्यालय में दो बातों का विशेष ध्यान रखा जाता हैं– प्रथमत: यह कार्यालय उन सब विषयों का निपटारा करता है जो किसी मंत्रालय/ विभाग को नहीं सौंपे गए हैं। दूसरा इस कार्यालय का केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल के अध्यक्ष के रूप में प्रधानमंत्री की जिम्मेदारियों से कोई संबंध नहीं हैं मंत्रिमण्डल से जुड़े मामले सीधे मंत्रिमण्डल सचिवालय द्वारा निपटाए जाते हैं जो प्रधानमंत्री के निर्देशन में कार्य करता है।

1.5.3 प्रधानमंत्री कार्यालय की बदलती भूमिका

प्रधानमंत्रियों के बदलते रहने के साथ ही प्रधानमंत्री कार्यालय की भूमिका में बदलाव आता रहता है। समय गुजरने के साथ–साथ प्रधानमंत्री कार्यालय के आकार में काफी वृद्धि हुई है, इतनी की वर्ष 1947 में इसके गठन के समय, यह सोचा भी नहीं जा सकता था।

पंडित जवाहरलाल नेहरू के प्रधानमंत्रित्व में प्रधानमंत्री कार्यालय का आकार छोटा था और भूमिकाएँ सीमित थीं किंतु इसके बाद लाल बहादुर शास्त्री ने प्रधानमंत्री कार्यालय को सुदृढ़ किया और इसे शक्तिशाली बनाया। इंदिरा गांधी ने भी ऐसा ही किया। वर्ष 1977 में जनता पार्टी की सरकार ने प्रधानमंत्री कार्यालय की भूमिका को कम करने की कोशिश की और नाम परिवर्तित कर प्रधानमंत्री सचिवालय से प्रधानमंत्री कार्यालय कर दिया गया। जनता पार्टी के संक्षिप्त शासनकाल के बाद जब इंदिरा गांधी दुबारा सत्ता में आयी तो प्रधानमंत्री कार्यालय को पुन: सुदृढ़ता प्रदान की। यह प्रवृत्ति राजीव गांधी के समय तक जारी रही और आज भी है।

वर्तमान में, प्रधानमंत्री कार्यालय में 450 से अधिक अधिकारी / कर्मचारी हैं। यह विशाल प्रतिष्ठान एक सामानान्तर प्रशासन चलाता है अर्थात् इस कार्यालय में केन्द्र सरकार के प्रत्येक मंत्रालय / विभाग की प्रतिलिपि विद्यमान है। इस प्रवृत्ति के कारण मंत्रियों की प्रतिष्ठा धूमिल तो हुई ही है, विभागीय नौकरशाही के अधिकार को भी क्षति पहुँची है।

इस प्रकार, प्रधानमंत्री कार्यालय आधिकारिक स्तर पर शक्ति के प्रतिद्वंदी केन्द्र के रूप में उभरा है जिस कारण भारतीय कैबिनेट प्रणाली की सरकार में कैबिनेट सचिवालय और कैबिनेट सचिव की वैध भूमिका, महत्ता प्राधिकार और पदस्थिति का ह्रास (गिरावट) हुआ है। इस संदर्भ में यह ठीक ही कहा गया है कि संवैधानिक अनुभव शीर्ष कार्यकारी निकाय के लिए सहायक संस्थान के रूप में कैबिनेट सचिवालय को मान्यता प्रदान करता है, न कि प्रधानमंत्री कार्यालय को। इस प्रकार, प्रधानमंत्री कार्यालय से संबंधित विवाद इस कार्यालय के राजनीतिक स्थान अथवा स्थिति के अनुपात में अधिक शक्तिशाली होने मात्र पर नहीं है, अपितु इस बात पर है कि इस कार्यालय ने कैबिनेट सचिवालय पर पूर्ण ग्रहण लगा दिया है। इसलिए आलोचकों ने प्रधानमंत्री कार्यालय को भिन्न–भिन्न संज्ञाओं से नवाजा है। जैसे– 'सुपर कैबिनेट', 'माइक्रो कैबिनेट', 'सुपर मिनिस्ट्री', 'सुपर सेक्रेटेरिएट', 'सुपर अथॉरिटी', 'दी गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया', 'दी गवर्नमेंट ऑफ दी गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया' आदि।

1.6 सारांश

सामान्यत: संघ स्तरीय प्रशासनिक संगठन में प्रशासनिक मंत्रालय, केन्द्रीय सचिवालय, मंत्रिमण्डल सचिवालय एवं प्रधानमंत्री कार्यालय का महत्वपूर्ण स्थान होता है। प्रशासनिक मंत्रालय अलग–अलग कार्यों के लिए अलग–अलग होते हैं जो बिना विभाग अथवा एक या एक से अधिक विभागों से युक्त हैं। ये प्रशासनिक मन्त्रालय सामूहिक रूप से केन्द्रीय सचिवालय के नाम से जाने जाते हैं। केन्द्रीय सचिवालय के संगठन में राजनीतिक स्तर, प्रशासनिक स्तर एवं तकनीकी स्तर होते हैं जो सभी मिलकर अपने मंत्रालय के कार्य संचालित करते हैं। मन्त्रिमण्डल के आवश्यक कार्यों को पूरा करने के लिए मंत्रिमण्डल सचिवालय की व्यवस्था है जो मन्त्रिमण्डल

व इसकी विभिन्न समितियों के लिए आवश्यक आंकड़े, सूचना, तथ्य इत्यादि उपलब्ध कराता हैं प्रधानमंत्री कार्यालय जिसे 1977 से पूर्व तक प्रधानमंत्री सचिवालय के नाम से जाना जाता था यह प्रधानमंत्री के दायित्व निर्वाह करता हैं। प्रधानमंत्री के मंत्रिमण्डल के अतिरिक्त अनेक कार्य होते हैं जिनका संचालन यही करता है। लेकिन यह मंत्रिमण्डल के लिए कोई कार्य नहीं करता है।

3.7 शब्दावली

- **कार्यकारी संगठन :–** नीति के निष्पादन या क्रियान्वयन करने वाले संगठन को विभाग या मंत्रालय का कार्यकारी संगठन कहा जाता है।
- **केन्द्रीय सचिवालय :–** संघ स्तरीय मंत्रालयों का सामूहिक नाम ही केन्द्रीय सचिवालय है।
- **सचिव :–** मंत्रालय या विभाग का मुख्य प्रशासनिक अधिकारी।
- **अनुभाग अधिकारी :–** अवर सचिव एवं अधीनस्थ स्टाफ के मध्य कड़ी का कार्य करने वाला।
- **अवधि प्रणाली :–** किसी मंत्रालय में निश्चित अवधि के लिए अधिकारियों का पदस्थापन होना एवं पुन: अपने मूल स्थान को लौट जाना।
- **डेस्क अधिकारी प्रणाली :–** डेस्क अधिकारी अनुभाग अधिकारी या अवर सचिव ही होता है, कम महत्व के मामले स्वयं डेस्क अधिकारी निपटाता है जबकि नीतिगत मामले उच्चस्तर पर भेजे जाते हैं।
- **संलग्न कार्यालय :–** यह किसी मंत्रालय को तकनीकी सहायता एवं परामर्श देता है।
- **अधीनस्थ कार्यालय :–** यह मंत्रालय के कार्यक्रमों को क्रियान्वित करता है।
- **मन्त्रिमण्डल सचिवालय :–** मन्त्रिमण्डल की सहायतार्थ बनाया गया सचिवालय
- **मन्त्रिमण्डल सचिव :–** मन्त्रिमण्डल सचिवालय का प्रशासनिक प्रधान।
- **प्रधानमंत्री कार्यालय :–** यह प्रधानमंत्री की जिम्मेदारियों को पूरा करने में सहायता प्रदान करता है।

1.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

बाबू लाल फड़िया, : भारत में लोक प्रशासन, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2007

एम. लक्ष्मीकान्त, : लोक प्रशासन, टाटा मैकग्राहिल कम्पनी, नई दिल्ली, 2006

अवस्थी एवं अवस्थी, : भारतीय प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2007

सुरेन्द्र कटारिया, : भारत में लोक प्रशासन, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर, 2007

इकाई– 2

राजनीति और प्रशासन में अन्तःक्रिया: ऐतिहासिक पृष्ठ–भूमि

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 लोक प्रशासन व राजनीति में अन्तःक्रिया

2.2.1 रिग्स के विचार

2.2.2 एप्पलबी के विचार

2.2.3 जनप्रतिनिधि को वापिस बुलाने का अधिकार

2.4 अभ्यास प्रश्न

2.5 संदर्भ ग्रन्थ सूची

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप समझ सकेंगे कि :

- राजनीति तथा प्रशासन का अर्थ क्या है तथा
- यह एक दूसरे को कैसे प्रभावित करते हैं

2.1 प्रस्तावना

राजनीति और प्रशासन एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं। अनेक प्रकार से यह एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। लोक प्रशासन के विषय में यह कहा जा सकता है कि किसी में देश या राजनीति व्यवस्था के द्वारा निर्धारित लक्ष्यों को प्रभावी ढंग से प्राप्त करने के लिए राजनीति तथा प्रशासन में अच्छा तालमेल अपरिहार्य है क्योंकि इन दोनों का अस्तित्व न केवल एक दूसरे को प्रभावित करते हैं अपितु राज्य व्यवस्था के अन्य उपव्यवस्थाओं से भी इनका सरोकार है।

राज्य के कार्यकलापों से शैक्षिक तथा बुद्धिजीवी वर्ग ने अपने आपको अलग रखा। परिणाम यह हुआ कि राजनीति की बागडोर कुछ अपरिपक्व राजनीतिज्ञों के हाथों में सौंप दी गई, जो इस ओर भागने की होड़ में थे। इस दौड़ को कोई रोक नहीं पाया और बुद्धिजीवियों को आलोचना का भागी होना पड़ा । जहाँ कुछ बुद्धिजीवियों को आलोचना का भागी होना पड़ा वही कुछ बुद्धिजीवियों ने अपने राजनैतिक कार्य–काल में इसका लाभ उठाने के प्रयास किये। राष्ट्र के हित को अनदेखा करते हुए इन्होंने राजनीति में अपराधीकरण के द्वारा अनुपयुक्त साधनों से चुनाव जीतने का प्रयास किया क्योंकि ये जानते हैं कि अगले चुनाव तक इन्हें सत्ता से कोई नहीं हटा सकता है, अत: देश के सामने यह चुनौती है कि इनको अपराधीकरण से कैसे पृथक किया जाए।

हमारा लोकतन्त्र बहु–जातीय, बहु–धर्मी तथा बहु–भाषी है। यहाँ एक विशाल जनसंख्या तथा अनियमित अर्थ–व्यवस्था है। बहु–धर्मी तथा बहुजातीय व्यवस्था ने ही हमें धर्मनिर्पेक्ष बने

रहने का मार्ग दिखाया है। हमारे प्रजातन्त्र की नींव ही धर्मनिर्पेक्षता है। इसी आधार पर आधुनिक वैज्ञानिक समाज की संरचना की जा सकती है। हमारे विद्वान जनों का यह कर्त्तव्य है कि वे जनता को इस ओर जागृत करें तथा उनको अधिकारों व कर्त्तव्यों की याद दिलायें तथा चुनावों को अमर्यादित हस्तक्षेपों से दूर रक्खें।

यदि कोई निर्वाचित प्रतिनिधि इन नियमों का उल्लंघन और उसके उपरान्त भी चुन लिया जाता है तो उसका विरोध करना जनता का कर्त्तव्य है। इस पर्यावरण को बनाये रखने के लिए हमारे मतदाता का जागरूक होना अत्यन्त आवश्यक है।

चुनावी प्रक्रिया में प्रचुर मात्रा में धन की आवश्यकता होती है। कुछ नेता जो उच्च पदों पर आसीन हैं वे धन इक्कठा करने में अपने प्रभाव का दुरूपयोग करते हैं तथा उस धन को व्यक्तिगत संपदा मान लेते हैं। इतना ही नहीं पार्टी के नाम पर चंदा उगाने को राजनैतिक पण्डित आवश्यक मानते हैं और उसकी आलोचना को निरर्थक समझते हैं। यह व्यक्तिगत आय का एक बहुत ही सरल स्त्रोत है। अजब विडम्बना है कि एक ओर वोटर से कहा जाता है कि वे निष्पक्ष होकर मतदान करें और दूसरी ओर मतदाता को लुभाकर उसको असंवैधानिक साधनों के प्रयोग के लिए बाध्य किया जाता है।

नेहरू के समय यही प्रश्न था कि उनके बाद क्या होगा? कौन देश का शासन सम्भालेगा? यह प्रश्न निरर्थक है क्योंकि देश के लिए कोई भी नेता अपरिहार्य नहीं होता! जब तक राष्ट्र की आर्थिक संस्थायें, नौकरशाही (दफ्तरशाही) कार्यव्यवस्था तथा जन–साधारण सशक्त है, राष्ट्र का नेतृत्व कुछ समय तक सुचारू रूप से चलता ही रहता है। उदाहरण के तौर पर हम कह सकते हैं कि फ्रांस, इंग्लैण्ड, अमेरिका बहुत प्रभावशाली राजनेताओं के बिना भी बिना संकट तथा परिवर्तन के चलते रहे हैं।

स्वतंत्रता के प्रारम्भिक वर्षो में राज्य का नेतृत्व बुद्धिजीवियों के हाथों में रहा और उन्होंने कांग्रेस को संगठित किया। वे अपने सिद्धान्तों के प्रति समर्पित थे। परन्तु आज हर पार्टी में में से इस प्रकार के तत्वों को बहार निकाल कर फेंका जा रहा है जैसे कि ग्रीशम का कानून है कि खोटे सिक्के असली सिक्कों को बहार फेंक देते हैं। जन–जीवन से शिष्टता तथा आदर्शो को बाहर निकालने का प्रयत्न जारी है।

ग्रीशम के अनुसार बुद्धिजीवी किसी विश्वविद्यालय से शिक्षित न होकर समाज के किसी भी वर्ग से चुने जा सकते हैं। मेक्याविल्ली तथा चाणक्य ने यह दावा कभी नहीं किया कि राजनीति में अनैतिकता है परन्तु उनके अनुसार यह नैतिक तथा अनैतिक भेदभाव से भी परे नहीं है। राजनीति भी सामाजिक अनैतिकताओं से अछूती नहीं है। आर्थिक दृष्टि से देखा जाये तो गरीबी के बावजूद हम धीरे–धीरे अभावों, अकाल तथा बिमारियों से उबर कर बाहर आ रहे हैं। यह भारत के प्राचीन सुदृढ़ नेतृत्व का ही प्रभाव है जिसने भारत की अर्थव्यवस्था को एक मजबूत आधार दिया। प्राचीन नेतृत्व ने हमें एक आधार दिया है जिसके कारण आज वृहत भारत की यातायात व्यवस्था अनेकों कार्य योजनओं, विन्यासों को सफलतापूर्वक संचारित करने का आधार मिला है।

आधुनिक भारत में रेल व्यवस्था, यातायात व्यवस्था सड़कों का फैलाव, नहरी व्यवस्था तथा वायु–मार्ग सब प्राचीन नेतृत्व के साहसिक प्रयत्नों की देन हैं। नेहरू ने विश्व की महान

शक्तियों को अनदेखा कर अपने देश को अपने ही आदर्शो तथा सिद्धान्तों के आधार पर नेतृत्व दिया तथा तीसरी दुनिया के देशों को महान् शक्तियों के आतंक और भय से निकाल कर स्वावलंबी बनाने का काम नेहरू के साहस और धैर्य का फल है।

महान् शक्तियों का उपग्रह बने बिना ही भारत ने अपने आपको आत्मनिर्भर बनाया है— कृषि तथा औद्योगिक प्रगति के आधार पर तकनीकी तथा वैज्ञानिक उन्नति के आधार पर, महिलाओं, बच्चों, वृद्धों तथा हरिजनों के प्रति प्रहार को रोका गया। असक्षम सरकार की आलोचना की जाने लगी। स्थानीय संस्थाओं में आज भी सत्ता, अर्थ, जाति, लिंग तथा बाहुबलियों का अभिशाप देखा जाता है। यह समस्या राष्ट्रीय है ना कि किसी पार्टी की और नेतृत्व इन समस्याओं का समाधान खोजने में असमर्थ है।

भारत निर्धनों का समृद्ध राष्ट्र है पिछड़ेपन का प्रगतिशील भारत है। वर्तमान में ज्ञान ही शक्ति है। नेतृत्व को मिली–जुली सरकार की सम्भावनाओं को स्वीकार करते हुए आपसी मतभेदों को दूर करना होगा।

चूंकि मिली–जुली सरकार बहुमत की सरकार नहीं होती। अत: समस्त दलों का यह कर्त्तव्य बनता है कि वे अपने राजनैतिक सहयोगियों तथा प्रशासकों को एक जनमत स्थापित करने का वातावरण बनाऐं और आपसी मतभेदों को मिटाकर, अपने सकारात्मक रवैये से जनता का विश्वास जीतें।

मानवीय कार्यप्रणाली के सन्दर्भ में लोक प्रशासन का सामाजिक तथा राजनैतिक आधार महत्वपूर्ण है। कानून का गठन तथा क्रियान्वयन का सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक ढांचे से हटकर कोई महत्वपूर्ण अस्तित्व नहीं है। दोनों एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं और एक–दूसरे पर निर्भर रहते हैं। समूचा सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक वातावरण कानूनों के गठन तथा क्रियान्वयन को प्रभावित करता है।

प्रत्येक देश की लोक प्रशासनिक व्यवस्था उस विशिष्ठ सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक पर्यावरण से जुड़ी रहती है जिसकी कि वह देन हैं और एक अभिन्न अंग हैं। अत: लोक प्रशासन के गहन अध्ययन के लिए हमें उसके सामाजिक पर्यावरण का अध्ययन भी करना आवश्यक है जिसका वह अभिन्न अंग है। इस सन्दर्भ में प्रो.जोन गोस तथा रिग्स ने कुछ मुद्दों को महत्वपूर्ण माना जैसे–

1. यह एक प्रचलित प्रणाली तथा प्रवृत्ति रही है विशेषतया विकासशील देशों में पश्चिमी कार्यप्रणाली यदि सफलतापूर्वक कार्य कर रही है तो उसकी ज्यों की त्यों नकल की जा सकती है या उन संस्थाओं का प्रतिरोपण कर लिया जाए। ऐसा करने के लिए सर्वप्रथम बुद्धिमत्तापूर्ण यह देखना होगा कि वे संस्थायें तथा संगठन या व्यवस्थायें किस पर्यावरण में सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं और क्या वैसा ही पर्यावरण संरचना तथा सुविधायें हम अपने देश में सुलभ करवा पायेंगे? संस्थायें तो आयतित की जा सकती हैं परन्तु जनमानस नहीं।
2. किसी भी देश की प्रशासनिक प्रणाली की संरचना तथा क्रियान्वयन का विवेचन तथा परिप्रेक्ष्य का अध्ययन करना आवश्यक है। इस सन्दर्भ में हीडे का मत है कि मुख्य बात यह है कि राजशाही तथा दूसरे प्रशासनिक तथा राजनैतिक संस्थाओं का अध्ययन करने के

लिए वहाँ के वातावरण, परिवेश, प्रभावी शक्तियों तथा परिवर्तनकारी शक्तियों का अध्ययन करना अतिआवश्यक है जिनकी वे देन हैं।

3. तुलनात्मक समाजशास्त्र के अध्ययन के लिए पर्यावरण, वातावरण का विशेष महत्व है। प्रत्येक प्रशासनिक व्यवस्था की अपनी विशिष्ठतायें होती हैं तथा भिन्न–भिन्न पर्यावरण के अध्ययन यह निर्धारित करने में सहायक होते हैं कि अमुक वातावरण में किस प्रकार की संस्थायें सफलतापूर्वक कार्य कर पायेंगी। यह ज्ञान नवोदित राज्यों के लिए अधिक प्रभावी होगा जो पुराने राज्यों के अनुभवों का लाभ लेना चाहते हैं। कोई भी संस्था विजातीय या विदेशी धरती पर लहरा नहीं सकती और समृद्धि भी हासिल नहीं कर सकती।

   अत: नऐ राज्यों के लिए यही सुझाव है कि वे अपने ही वातावरण/ पर्यावरण में संस्थाओं का निर्माण करें।

2.2 लोक प्रशासन व राजनीति में अन्तःक्रिया

लोक प्रशासन व राजनीति की अन्तःक्रिया जानने से पूर्व इनको परिभाषित करना आवश्यक है। लोक प्रशासन का संबंध लोकनीतियों के क्रियान्बध से है। राजनीति की परिभाषा का जहाँ तक प्रश्न है इसको शक्ति (सत्ता) से जोड़ा जाता है ईस्टन के अनुसार मूल्यों का अधिकाधिक आवंटन राजनीति है। डाहल के अनुसार राजनीति है।

आज राजनीति का अर्थ है किसको मिलता है, क्या मिलता है, कब मिलता है और कैसे मिलता है, जनसुविधायें शासन में राजनैतिक तथा प्रशासनिक धरोहर की अन्तरक्रिया स्पष्ट रूप से प्रदर्शित होती है। स्वतंत्रता के समय हमने संवैधानिक तौर पर प्रजातान्त्रिक, सामाजिक लोककल्याणकारी राज्य की अवधारणा को स्वीकार कर लिया था। अत: इस संरचना के अन्तर्गत नौकरशाही को परिवर्तन तथा आधुनिकीकरण के अभिकर्ता (Agent) का महत्वपूर्ण भूमिका अदा करना था। सरकार ने एक आदर्श तथा महत्वाकांक्षी प्रतिमान को लेकर लोकतांत्रिक साधनों द्‌वारा एक सुनियोजित लोकतंत्र का प्रारम्भ किया और उसके लिये परम्परागत नौकरशाही को विश्वास का पात्र बनाया। इस संरचना ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद से लेकर नयी योजनाओं तथा कार्यक्रमों को लागू करने का प्रयास किया। यद्‌यपि स्वतंत्रता ऐसे पूर्व शासकों ने पुराने नौकरशाही तंत्र को सदैव भ्रमात्मक माना परन्तु फिर भी उन्होंने पुराने प्राशासनिक ढाँचे को पकड़े रखा ओर आवश्यकतानुसार उसमें परिवर्तन किया।

इस परिवर्तन में प्रतिबद्ध नौकरशाही की चर्चा करना आवश्यक है। इंदिरा गाँधी ने प्रशासकों की तटस्थता को गैर–निष्पादन एवं अयोग्यता के लिए उत्तरदायी माना एवं तटस्थता को विकास के मार्ग में बाधा माना। इंदिरा गांधी का मानना था कि अधिकारी तन्त्र को शासन करने वाली पार्टी की नीतियों के प्रतिबद्ध होना चाहिए और नीतियों का क्रियान्वयन उसी रूप में निष्ठापूर्ण करना चाहिए। संविधान के प्रति आस्था व प्रतिबद्धता का होना आवश्यक है।

ब्रिटिशकाल की नौकरशाही एक संगठित अखिल भारतीय सेवा है जिसमें एक सीमित प्रशासनिक अभिजात वर्ग है जो कि उच्च शिक्षा प्राप्त और योग्यता के आधार पर चयनित किया जाता है। यह सामान्य ज्ञान, गैर तकनीकी तथा परम्परागत सत्य, निष्ठा, कार्यकुशलता, निष्पक्ष, तटस्थता के आधार पर चयनित किए जाते हैं। भारत का क्षेत्रीय प्रशासन सत्तावादी,

पितृसत्तात्मक, सुरक्षात्मक सह–अस्तित्व पर आधारित था और मूल रूप से अविकासवादी था। प्रशासक का मुख्य काम कानून–व्यवस्था बनाये रखना था और कर वसूली करना था। नौकरशाही एक विशिष्ट वर्ग बन गया और सामान्यजन से दूर हो गया। इतना ही नहीं पद और प्रशिक्षण द्वारा रूढ़िवाद, कठोर तथा ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रबल समर्थक के रूप में उभरा।

स्वतंत्रता के उपरान्त राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में परिवर्तन आया: संविधान में प्रजातंत्रीय समाजवादी माहौल की परिकल्पना का समावेश किया गया। प्रजातंत्र ने संसद मंत्रीमण्डल, चुनाव तथा राजनैतिक दलों को संगठित किया और लोक प्रशासन को जनता के प्रति उत्तरदायी बनाने पर बल दिया। नौकरीशाही की कार्यप्रणाली में अन्तर लाया गया और बहुआयामी कार्यप्रणाली पर बल दिया गया।

स्वतंत्रता पूर्व कार्य प्रणाली और स्वतंत्रता के बाद की कार्यप्रणाली का परिवर्तन न केवल 'संकीर्ण सरकार' तथा व्यापक सरकार का परिवर्तन था, अपितु वह एक सत्तावादी से प्रजातांत्रिक सत्ता में परिवर्तन था।

आज नौकरशाही को राजनैतिक नेता के निर्देशों पर कार्य करना होता है जो अपने अधीन संसदीय विभागों में परिवर्तन के प्रति उत्तरदायी होता है। नौकरशाही को राजनेता की अनेक सीमाओं के बन्धन में तथा संवैधानिक निर्देशों के अन्तर्गत कार्य करना पड़ता है। उनके ऊपर अन्य राजनैतिक दलों तथा दबाव समूहों का दबाव रहता है।

आज नौकरशाही मर्यादित तथा क्रियाशील रहती है। जनता के प्रतिनिधियों दारा उनको राजनेताओं को पूर्ण सहयोग देना पड़ता है। स्वतंत्र भारत में नौकरशाही की सदैव यह शिकायत रही कि उनके कार्य में राजनैतिक हस्तक्षेप रहता है। चयनित प्रतिनिधि यह मानते हैं कि जनता के हित में क्या सर्वश्रेष्ठ है वे जानते हैं, जबकि नौकरशाही का कहना है कि उनको इतना ज्ञान है कि संवैधानिक नियमों की व्याख्या करने का अधिकार उनको है।

नौकरशाह लोकसेवा नियुक्तियों, तबादलों, पदोन्नतियों में राजनेताओं के दखल के प्रति व्यथित हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि लोक–प्रशासकों में कार्य के प्रति शिथिलता बढ़ गई, और वे केवल अपने उच्च पदाधिकारियों की प्रसन्नता का ध्यान रखने लगे।

क्या राजसी – अलगाववादी, तथा निष्क्रिय लोक प्रशासन अपनी कार्य कुशलता में अनिवार्य रूप से वांछित भावनात्मकता द्वारा प्रगतिशील कार्यों से जुड़ सकते हैं?

आधुनिक प्रशासक के लिए दूरदर्शिता, लचीलापन, गतिशीलता तथा परिणामवादी होना आवश्यक है। पुरानी पद्धति केवल (गतिहीन) अपरिवर्तनशील समाज (ढांचे) में ही सफल हो सकती थी। यदि लोक सेवा को प्रगतिशील समाज में प्रभावी बनना है तो उसे अपने ढांचे, अभिव्यक्ति तथा कार्यप्रणाली में आधारभूत तथा आमूलचूल परिवर्तन करना होगा। लोक प्रशासक को समाज के प्रति जागरूक होना पड़ेगा तथा प्रचलित आवश्यकताओं तथा महत्वाकांक्षाओं के प्रति जवाबदेह होना पड़ेगा। स्वतंत्रता के बाद प्रशासनिक संस्कृति तथा पर्यावरण सामान्य प्रचलित उम्मीदों से कदम नहीं मिला पाया है।

प्रजातांत्रिक राजनैतिक व्यवस्था का एक अन्य प्रभाव यह भी है कि वह गैरमिलनसारी, संकुचित, सत्तावादी और अधिकारवादी कार्यप्रणाली को त्याग कर जनता के नजदीक आने का

प्रयास करें। यदि जनता को प्रजातांत्रिक तथा प्रशासनिक सरकार का पूरा लाभ उठाना है तो उसे भी अपने स्तर पर नौकरशाही के विरोध को त्यागना पड़ेगा। प्रशासक तथा जनता का सम्बन्ध आपसी विश्वास, मैत्री–भाव व सद्भावना पर आधारित होना चाहिए।

प्रजातान्त्रिक प्रबन्धन में नौकरशाही जनता के प्रति उत्तरदायी रहती है। अत: उसका व्यवहार, ईमानदारी, सत्यनिष्ठा तथा आदर्श कार्यकुशलता तथा विशिष्टता से जुड़ी होनी चाहिए। अत: विश्वास, विश्वसनियता जब तक नहीं बढ़ेगी तब तक समस्यायें यथावत ही रहेंगी।

जांच पड़ताल से लोक सेवाओं में व्यापक भ्रष्टाचार उजागर हुआ है। नौकरशाही का मानना है कि इन सेवाओं में राजनैतिक दखल और इनका राजनीतिकरण ही एक मात्र इसके लिए जिम्मेदार है। यह भ्रष्टाचार ब्रिटिश साम्राज्य में भी था परन्तु अब प्रजातांत्रिक व्यवस्था ने इसको और उजागर कर दिया है।

2.2.1. रिग्स के अनुसार

अन्य प्रगतिशील देशों के समान ही भारत भी परिवर्तन के दौर में है जहाँ वह आंशिक सामंती,आंशिक पूंजीवाद से निकलकर एक औद्योगिक और आधुनिक समाज में कदम रख रहा है।

रिग्स के अनुसार हम 'Agraria' भूसंपदा से हट कर 'Industria' औद्योगीकरण में जा रहे हैं। लोक प्रशासन भी अन्य सामाजिक तथा राजनैतिक ढांचे से निकल कर ऐसे दौर से गुजर रहा है जहाँ नौकरशाही के पुराने मापदण्ड परिवर्तन के दौर से गुजर रहे हैं । जहाँ नये सामाजिक आर्थिक समाज की परिवर्तित स्थिति में उसको भी नवीनीकरण, अनुकूलन तथा नई व्याख्या तथा परिभाषाओं को अपनी कार्यप्रणाली में सम्मिलित करना होगा।

2.2.2 पॉल एच. एप्पलबी के अनुसार

यदि प्रशासकों के लिए राजनैतिक वातावरण उपयुक्त है तो लोक प्रशासन के राजनैतिक महत्व तथा विशिष्टता के बारे में आशंका का कोई स्थान नहीं रह जाता है। यदि राजनीति तथा प्रशासन को अलग कर दें तो नीति निर्देशों के गठन में गहरी अव्यवस्था तथा भ्रांति पैदा हो जायेगी।

नीति तथा प्रशासन के मुद्दे अलग नहीं है नीति तथा प्रशासन एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं और अन्तर्व्यवहार करते हैं। आदर्श या सुदृढ़ प्रशासन, राजनीति तथा प्रशासनिक पारस्परिकता, आपसी संपर्क पर निर्भर करता है। राजनीति और प्रशासन एक–दूसरे के पूरक हैं। राजनैतिक व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए प्रशासनिक व्यवस्था का महत्वपूर्ण योगदान है। राजनीति व प्रशासन के कार्यो में स्पष्ट विभाजन रेखा खींचना अत्यन्त कठिन है क्योंकि यह कहना कठिन है कि प्रशासन की कार्य सीमा कहाँ से कहाँ तक है उसी प्रकार राजनीति के कार्यो की सीमा कहाँ समाप्त होती है। उच्चस्तरीय प्रशासन राजनीतिज्ञों को नीति निर्माण में सलाह देता है।

लोक प्रशासन एवं राजनीति की परस्पर निर्भरता अन्तक्रिया है। प्रशासन राजनीति में एक अन्योन्य क्रिया है। विकास की प्रक्रिया में दोनों का योगदान है।

एप्पलबी द्वारा प्रस्तुत प्रशासनिक आयाम की एक महत्वपूर्ण विवेचना है। इस संदर्भ में प्रशासन को व्यक्तिगत आदर्शो तथा अधिकारी या शासकीय संगठनों के आदर्शो के सहअस्तित्व पर संतोष करना होगा। । एप्पलबी ने इस प्रकार की सहभागिता और समायोजन को अनुशासन का अंग माना है। उन्होंने अनुशासन तथा वफादारी को समतुल्य माना है।

उपर्युक्त संदर्भ में निष्ठा का अर्थ है— अलगाव और स्वाभाविक या जन्मजात संघर्ष या टकराव जिस प्रकार अप्रकट वचनबद्धता सृजनात्मक प्रकृति; को नियंत्रित करते हैं। इस प्रकार अनेक स्वामिभक्तियों में संघर्ष पैदा हो रहा है और यह संभावित है कि कोई एक निष्ठा दूसरी निष्ठा से अधिक प्रासंगिक लगने लगे। कई बार इस निर्णय में कठिनाई आती है। एप्पलबी ने अपने आपको निष्ठा के पदानुक्रम तक सीमित नहीं रखा क्योंकि उनका आग्रह वचनबद्धता पर रहा। अत: नियोजनत्मक्ता की प्रगति के साथ यह भी संभव होना चाहिये कि हम आदर्शो के साथ व्यवस्थागत समझ में मूल्यों का भी समायोजन करें। इस प्रकार वे व्यक्तिगत जिम्मेदारी तथा दूसरों के प्रति जवाबदेही में जुड़ाव व समझौते की बाद करते हैं। एप्पलबी का मानना है कि भिन्न दृष्टिकोण के बावजूद निष्ठा के नैतिक मूल्यों में कहीं न कहीं पदानुक्रमता रहती ही है। उदाहरण के लिये परिवार के प्रति निष्ठा या ईमानदारी राज्य के प्रति ईमानदारी से भिन्न नहीं हो सकती। निष्ठा का मूलभूत पहलू जो प्रकट रूप से दिखाई देता है एक ऐसी प्रक्रिया है जो एक दूसरे की पूरक निष्ठाओं को संलग्न करती है, जोड़ती है। एप्पलबी एक वचनबद्ध और समर्पित राष्ट्रवादी तथा प्रजातंत्रिक थे। वे सरकार के प्रति भी गहरी निष्ठा रखते थे। फिर भी नकारात्मक समस्याएँ, तो उत्पन्न होती ही हैं। एक लोकतांत्रिक प्रणाली में जनसाधारण के मूल्यों पर प्रश्न नहीं उठता क्योंकि असहमति तथा नकारात्मकता तो लोकतंत्र में निहित है। इसी प्रकार असहमति कितनी भी व्यापक हो निष्ठा तथा ईमानदारी के विपरीत नहीं जाती।

एप्पलबी पाश्चात्य प्रजातंत्र के सिद्धान्तों तथा अन्य प्रजातांत्रिक आदर्शो से उत्पन्न होने वाले भिन्न सिद्धान्तों से अनभिज्ञ नहीं थे। उनका मानना है कि इस प्रकार के संगठन में असहमति खुले रूप से स्वीकार्य ना भी फिर भी इसको मिटाया नहीं जा सकता। वे सतर्कतापूर्वक कहते थे कि दबाव की प्रक्रिया हमेशा रहने वाली नहीं हो सकती। इसी प्रकार आदर्शो तथा ईमानदारी स्वत: ही महत्वपूर्ण हो जाती है किसी भी प्रजातांत्रिक संरचना के बावजूद!

इस संदर्भ में समासद जे.आर. मेकार्थी ने अमेरिका में जो जिहाद छेड़ा उससे एप्पलबी काफी चिंतित थे। एप्पलबी का मानना था कि सभासत के पास या तो उपयुक्त सूचना का अभाव था और वे एकदम गलत थे जो उन्होंने ऐसे तथाकथित साम्यवादी संकट को एक विवाद का रूप दे दिया। उनका समाजवाद तथा उसके समर्थकों के विरोध में संघर्ष केवल विपरीत परिस्थिति पैदा कर सकती थी क्योंकि अमेरिका साम्यवाद के समर्थक के रूप में कभी भी जाना नहीं जा सकता था। साम्यवाद के पहलू को बढ़ावा देकर M.C. Carthy ने इस मुद्दे पर संघर्ष का कदम उठाया जहाँ उसने निष्ठा तथा ईमानदारी के नियमों पर प्रहार किया। उनकी समझ में यह नहीं आया कि इस मुद्दे पर अमेरिका में साम्यवादी विरोधी पहले से ही सक्रिय थे। परिणामस्वरूप प्रशासनिक कर्तव्यों तथा राजनैतिक प्रक्रिया एकदम गड़बड़ा गई तथा नियमों का उल्लंघन होने लगा। हम कह सकते हैं कि सभासद मेकार्थी केवल राजनैतिक प्रक्रिया से ही सम्बन्ध रखना चाहते थे। जनता की निष्ठा और ईमानदारी पर प्रश्नचिह्न लगने लगा और जो

नेक इरादों वाले प्रयास थे वे भी जनता, राजनेता तथा प्रशासकों द्वारा नकार दिये गये जो कि मूलरूप से प्रजातांत्रिक मूल्यों के प्रति वफादार थे।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद लोकसेवाओं को लोकतंत्र, विकास एवं विकेन्द्रकरण के सन्दर्भ में कार्य करना था। राजनीतिज्ञों एवं प्रशासकों के मध्य विभिन्न स्तरों पर अन्तक्रिया होना स्वाभाविक था यह लोकसेवाओं के लिए नई बात थी।

विकेन्द्रीकरण के फलस्वरूप पंचायतीराज संस्थाओं का जन्म हुआ। प्रशासन को नीचे के स्तर तक पहुँचाने के लिए यह एक प्रयोग किया गया। स्थानीय स्तर पर विभिन्न प्रकार की योजनाओं का क्रियान्वयन किया गया परिणामस्वरूप विकास की दिशा निर्धारित की गई और यह सफलता प्रशासक व राजनीतिज्ञों के योगदान से सम्भव हुई।

आज किसी भी बदलाव के लिए Value System मूल्यों में परिवर्तन आवश्यक है। यह बदलाव दृष्टिगत है। परन्तु यह कभी–कभी विकृत हो जाता है और विकास की गति को अवरुद्ध कर देता है।

आज राजस्थान में 50 प्रतिशत आरक्षण दृष्टिकोणीय परिवर्तन (Attidudinal change) के कारण हुआ है। बजट में भी रियायत है इसके अलावा घरेलू हिंसा से संबंधित कानून, पारदर्शिता के लिए सूचना का अधिकार आदि दृष्टिकोणीय परिवर्तन (Attidudinal change) के ही परिणाम हैं ।

2.2.3 जनप्रतिनिधि को वापस बुलाने का अधिकार:

यह राजनीतिक पर्यावरण का प्रतिमान स्वीट्जरलैण्ड में पाया जाता है। चुने हुए प्रतिनिधि यदि अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह सही ढंग से नहीं करते हैं तो उनको हटाया जा सकता है।

यदि यह अधिकार भारत में भी लागू हो जाए तो व्यवस्था में बदलाव स्थिरता एवं विकास को नई दिशा मिल सकती है। आज भाषण की स्वतंत्रता भेदभाव और एक–दूसरे के दृष्टिकोण का सम्मान और उसको सहन करना लोकतंत्र की आत्मा है। लोकतान्त्रित व्यवस्था में बातचीत विचार विमर्श सहमति, असहमति होती है और जब यह सब होता है तो प्रशासन तंत्र भी अपना कार्य स्वतंत्रता पूर्वक करता है।

सुशासन तथा गुड गर्वनेंस की बात तभी सार्थक हो सकती है जब प्रशासक व राजनैतिज्ञ दोनों का आपस में समायोजन होगा तभी सुशासन सम्भव है।

सुशासन के कुछ मुख्य तत्व हैं। जैसे –

1. पारदर्शिता
2. सहभागिता
3. उदार अनुदान

परन्तु भारत में कानून के शासन का वो स्वरूप नहीं दिख रहा है जो अन्य लोकतान्त्रिक देशों में देखा जा रहा है। कारण स्पष्ट है कि भारत में मूलभूत समस्या कानून के शासन के अभाव की है।

कानून के शासन के तत्व हैं।

1. नागरिक जिससे अपेक्षा की जाती है कि वो कानून की पालना करें।
2. कानून को लागू करने वाला तन्त्र।

यह विदित है कि भारतीय राज्य व्यवस्था में कानून की प्रभावी पालना नहीं हो पाई है। यह केवल भारत वर्ष में ही नहीं वरन् विकासशील अन्य राज्यों में भी देखा जा सकता है।

2.3 सारांश

इस तरह हम देख सकते हैं आदिकाल में प्रत्येक देश में राजनीति और प्रशासन में गहरा सम्बन्ध विद्यमान रहा है जिसके सकारात्मक और नकारात्मक पहलू देखने को मिलते हैं। नकारात्मक पहलुओं को जितना प्रभावी ढंग से दूर किया जा सकेगा, लोक प्रशासन के उद्देश्यों को उतने ही प्रभावी तरीके से प्राप्त किया जा सकता है।

2.4 अभ्यास प्रश्न

1. प्रशासन तथा राजनीति की अन्तःक्रिया की समीक्षा कीजिए।
2. क्या आप इस बात से सहमत हैं कि प्रशासन व राजनीति के बीच एक अन्योन्य क्रिया होती है?
3. प्रशासन तथा राजनीति एक दूसरे के पूरक हैं समझाइये।

2.5 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भट्टाचार्य, मोहित, ब्यूरोक्रेसी एण्ड डेवलपमेन्ट ऐडमिनिस्ट्रेशन उप्पल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1971
2. बी.एल फडिया, लोक प्रशासन, साहित्य भवन, आग्रा, 2000
3. लक्ष्मीकान्त एम. लोक प्रशासन, टाटा मैकग्राहिल कम्पनी, नई दिल्ली, 2006

इकाई– 3

भारतीय प्रशासन में भ्रष्टाचार : केन्द्रीय सतर्कता आयोग तथा भ्रष्टाचार निरोधक ब्यूरो के विशेष संदर्भ में

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 अर्थ एवं परिभाषा

3.3 भारतीय प्रशासन में भ्रष्टाचार की व्यापकता

3.4 प्रशासन में भ्रष्टाचार के कारण

3.5 समाधान

3.6 भारत में भ्रष्टाचार निवारण के साधनों का विकास

3.7 के. संथानम समिति प्रतिवेदन

3.8 केन्द्रीय सतर्कता आयोग

3.9 केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो

3.10 राज्य सतर्कता आयोग तथा भ्रष्टाचार निरोधक विभाग

3.11 भारत में लोकपाल और लोकायुक्त पद की आवश्यकता

3.12 लोकायुक्त या लोकपाल

3.13 राज्यों में लोकायुक्त

3.14 सारांश

3.15 अभ्यास प्रश्न

3.16 संदर्भ ग्रन्थ सूची

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का पढ़ने के बाद आप समझ पायेंगे कि :

- भारतीय प्रशासन की प्रकृति क्या है,
- इसके पीछे क्या कारण है तथा
- इसका उन्मूलन कैसे संभव है।

3.1 प्रस्तावना

आज हम लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के साथ आगे बढ़ रहे हैं, जिसके कारण प्रशासन की प्रकृति जटिल एवं तकनीकीपूर्ण हो जाती है। साथ ही सरकार के दायित्व बढ़ जाते हैं, जो प्रशासन के सक्रिय सहयोग के बिना असंभव होते है। समाज की आवश्यकताऐं और आकांक्षायें समय और परिस्थितियों के अनुसार घटती–बढ़ती रहती हैं, जिन्हें पूरा करना राज्य की महती जिम्मेदारी है। ऐसे समय में सरकार को परामर्श एवं सहायता प्रदान करने में

अधिकारीतंत्र की सक्रिय भूमिका रहती है। वास्तव में प्रशासन प्रत्येक देश के समाज तथा राजनीति का एक अविभाज्य अंग होता है। अधिकारी तंत्र किसी भी प्रशासन की रीति–नीतियों एवं पद्धतियों के चयन में निर्णायक भूमिका निभाता है। आज हम एक ऐसे समाज में रह रहे हैं, जिसकी अपनी कुछ मान्यताऐं एवं आदर्श हैं। इन्हें व्यवहार रूप देने का प्रमुख दायित्व अधिकारी तंत्र का होता है। यह दायित्व अच्छे और बुरे रूप में, यश–अपयश के साथ लोक सेवक वहन करते है। समाज अविकसित हो, विकासशील हो अथवा विकसित हो अपितु उसको प्रगति और विकास की ओर व्यवस्थित रूप से ले चलने का दायित्व मूलतः अधिकारी तंत्र पर है।

राज्य के कार्य अधिक होने के कारण लोक प्रशासन के पास असीमित शक्तियाँ केन्द्रित हो जाती हैं। असीमित प्रशासनिक शक्तियों का प्रयोग अनाचार, परेशानी और भ्रष्टाचार को जन्म देता है।

3.2 अर्थ एवं परिभाषा

आज विकास के साथ–साथ राजनीति और प्रशासन दोनों क्षेत्रों में सच्चरित्रता अर्थात् ईमानदारी, सच्चाई, निर्दोष चरित्र और निष्कपटता का लोप होता जा रहा है और भ्रष्टाचार का प्रभाव बढ़ता जा रहा है।

के.संथानम के अनुसार – एक सरकारी कर्मचारी द्वारा अपने दायित्व का निर्वाह करते समय किसी लाभ की दृष्टि से कोई कृत्य करन' या न करना भ्रष्टाचार है।

भारतीय दण्ड संहिता की धारा 161 के अनुसार– जो व्यक्ति शासकीय कर्मचारी होते हुए या होने की आशा में अपने या अन्य किसी व्यक्ति के लिए विधिक परिश्रम से अधिक कोई घूस लेता है या स्वीकार करता है अथवा लेने के लिए तैयार हो जाता है या लेने का प्रयत्न करता है या किसी कार्य को करने के लिए उपहारस्वरूप या अपने शासकीय कार्य को करने में किसी व्यक्ति के प्रति पक्षपात या उपेक्षा या किसी व्यक्ति की कोई सेवा या कुसेवा का प्रयास, केन्द्रीय या अन्य राज्य सरकार या संसद या विधानमंडल या किसी लोक सेवक के संदर्भ में करता है, तो उसे तीन वर्ष तक के कारावास का दण्ड या अर्थदण्ड या दोनों दिये जा सकेंगे।

भ्रष्टाचार का अर्थ दो रूपों में किया जाता है। एक संकीर्ण और दूसरा व्यापक। संकीर्ण रूप में भ्रष्टाचार से अभिप्राय किसी कार्य करने या न करने के लिए घूस के रूप में नकद धनराशि प्राप्त करना है। व्यापक रूप में भ्रष्टाचार से अभिप्राय सार्वजनिक पद या सत्ता का दुरूपयोग करते हुए नकद धनराशि लेना या उपहार के रूप में भेंट स्वीकार करना या अपने बच्चों को नौकरी दिलवाना या किसी अन्य रूप में लाभ उठाना है। लोक प्रशासन में भ्रष्टाचार शब्द का प्रयोग इस व्यापक रूप में ही किया जाता है।

3.3 भारतीय प्रशासन में भ्रष्टाचार की व्यापकता

भारतीय प्रशासन में भ्रष्टाचार किसी न किसी रूप में विद्‌यमान रहा है। कौटिल्य ने अपने पुस्तक अर्थशास्त्र में भ्रष्टाचार के 40 प्रकारों का उल्लेख किया है। उसके शब्दों में– जिस प्रकार जीभ पर रखे हुए शहद का स्वाद न लेना असंभव है, उसी प्रकार किसी शासकीय अधिकारी के लिए राज्य के राजस्व के एक अंश का भक्षण न करना असंभव है। भारत में ईस्ट

इण्डिया कम्पनी के शासन काल से ही भ्रष्टाचार देश में सर्वत्र फैल गया। द्‍वितीय विश्व युद्ध के प्रारंभ होने तक भ्रष्टाचार अधिकांशत: प्रशासन के निम्न स्तर तक ही सीमित था। इस समय नियम तथा कानूनों की अवहेलना की गयी। अफसरों को अपनी सत्ता स्वार्थपूर्ति में प्रयोग करने का अवसर मिला।

स्वतन्त्रता के बाद देश में कानून का शासन खत्म होने लगा और लोक–सेवकों में भ्रष्टाचार के नये मार्ग खुले। स्वाधीन भारत में कल्याणकारी एवं समाजवादी राज्य का आदर्श अपनाया गया, जिससे राज्य के कार्यों में असाधारण वृद्धि हुई। खासतौर से आर्थिक क्षेत्र में राज्य के कार्यों में वृद्धि होने से नियम, नियंत्रण, लाइसेंस और परमिट का युग प्रारम्भ हुआ और भ्रष्टाचार के नये आयाम प्रकट हुए। स्वतन्त्रता के बाद भारत में सरकारी कर्मचारियों के अतिरिक्त राजनीतिक नेताओं और मंत्रियों के अनेक घोटालें प्रकाश में आये हैं, जिसमें कृष्णा मेनन का जीप कांड, उड़ीसा के मुख्यमंत्री बीजू पटनायक, जम्मू कश्मीर के मुख्यमंत्री बख्शी गुलाम मुहम्मद, बिहार के कृष्ण बल्लभ सहाय, पंजाब के मुख्यमंत्री प्रताप सिंह कैरो, तमिलनाडू के मुख्यमंत्री करूणानिधि तथा महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री ए.आर.अंतुले के मामले उल्लेखनीय है।

जुलाई 1982 में भारत सरकार ने नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक फाइनेंस एण्ड पॉलिसी को देश के काले धन की समस्या का अध्ययन करने का काम सौंपा था। सन् 1983–84 के वर्ष में ही करीब 35000 करोड़ रुपये यानि 3 खरब पचास अरब रुपये जितना नया कालाधन बना, जो कुल वार्षिक राष्ट्रीय उत्पादन का 21 प्रतिशत था। बोफोर्स काण्ड ने रक्षा सौदों में व्याप्त भ्रष्टाचार की पोल खोली थी। स्वीडिश रेडियो ने आरोप लगाया कि बोफोर्स कम्पनी और भारत के बीच तोपों की खरीद के अरबों डॉलर के समझौतों में भारतीय अधिकारियों को रिश्वत दिलाई गयी।

इण्डिया टुडे के अनुसार–भ्रष्टाचार विरोधी अभियान की सबसे बड़ी उपलब्धि राजस्थान में जयपुर जिला ग्रामीण विकास अभिकरण के निदेशक रहे वी.के. मीणा के कार्यकाल में 1 करोड़, 5 लाख रूपये की सरकारी राशि का घोटाला हुआ।

भारतीय प्रशासन में भ्रष्टाचार ने कैंसर का रूप धारण कर लिया है। इसका प्रसार द्रुतगति से हो रहा है। इसने पिछली समस्त सीमायें और मर्यादायें लांघ दी है।

3.4 प्रशासन में भ्रष्टाचार के कारण

भ्रष्टाचार समस्त प्रकार की शासन व्यवस्थाओं में पाया जाता है। इसके लिए आर्थिक, सामाजिक, प्रशासनिक और न्यायिक कारण उत्तरदायी माने जाते है। भारतीय लोक प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार के लिए निम्न कारण उत्तरदायी माने जाते है।

राजनीतिक प्रश्रय :–

स्वतन्त्रता से पहले राजनीति एक मिशन के रूप में थी, किन्तु स्वतंत्रता के पश्चात् इसने कमीशन का रूप ले लिया है। भ्रष्टाचार का जन्म सत्ता के उच्च शिखरों में होता है, जो शनै: शनै: सम्पूर्ण तंत्र में रिस जाता है। राजनेताओं के साथ अपराधियों, तस्करों, आतंकवादियों, जासूसों, भ्रष्ट व्यापारियों तथा देशद्रोहियों के संबंध अब सबके सामने आ चुके है। हमारी

प्रशासनिक व्यवस्था में भी राजनीति की नीति–निर्माण तथा कार्यक्रम क्रियान्वयन में निर्णायक भूमिका है। अत: प्रशासन तंत्र राजनेताओं के भ्रष्टाचार का सर्वसुलभ क्षेत्र बन गया है।

युद्धकालीन अभाव तथा नियंत्रण :–

युद्धजनित परिस्थितियों के कारण अनाज आदि का राशन और नियंत्रण शुरू किया गया। इसके लिए सरकारी दुकानों के लाइसेंस और परमिट दिये जाने लगे। इससे भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन मिला। स्वाधीनता के पश्चात देश के त्वरित आर्थिक विकास हेतु योजनायें बनाई गयी और यह आवश्यक भी था कि देश के समस्त सुलभ साधनों पर नियंत्रण स्थापित किया जाये और उपभोक्ताओं को सब सामग्री राशन के आधार पर सीमित मात्रा में दी जाये। इसके लिए परमिट, लाइसेंस और कोटा पद्धति शुरू की गई। इसके परिणामस्वरूप देश में व्यापक रूप से चोर बाजारी शुरू हो गयी।

विज्ञान तथा भौतिकवाद का प्रसार :–

विज्ञान तथा तकनीकी विकास के साथ रहन–सहन, खान–पान, आवास, संचार तथा यातायात की अत्याधुनिक मशीनें और सुविधायें जीवन को भौतिकवाद की ओर अग्रसर करती है तथा ये वस्तुयें प्रतिष्ठा की परिचायक भी बनती जा रही है। चूँकि वेतनभोगियों की आय की सीमा निश्चित होती है अत: वे भ्रष्ट साधनों से अतिरिक्त आय जुटाते है।

औद्योगीकरण तथा नगरीकरण :–

सरकार की नीतियों, कार्यक्रमों तथा नौकरशाही की कार्यशैली में कोटा,परमिट तथा लाइसेंस प्रणालियों ने भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया है। धीरे– धीरे उद्योगपतियों एवं पूंजीपतियों ने राजनेताओं को चुनाव लड़ने के लिए चन्दा देना शुरू किया और इस प्रकार सम्पूर्ण राजनीतिक प्रशासनिक तंत्र भ्रष्टाचार के कुचक्र में फँस गया।

नैतिक मूल्यों का पतन :–

व्यक्ति के नैतिक मूल्य समाप्त हो रहे है। स्वयं की सुख सुविधा जुटाने के लिए अनैतिक तरीकों को काम में लेना आम बात हो गयी है। आज भ्रष्टाचार को सामाजिक मान्यता प्राप्त हो चुकी है तथा इसे किसी व्यक्ति की चारित्रिक कमजोरी के रूप में नहीं देखा जाता है। प्रशासन में छोटी–छोटी अनियमिततायें अब स्वाभाविक प्रक्रियायें मान ली गयी है। यह हमारे नैतिक मूल्यों के पतन का ही परिचायक है।

वेतनों में विसंगति :–

भारत में कर्मचारियों के वेतन में काफी अंतर है। प्रत्येक अधीनस्थ अपने वरिष्ठ अधिकारी का अनुसरण करना चाहता है। यदि उसका वेतन कम होता है तो वह अनुचित साधनों से आमदनी करता है।

नियंत्रण प्रणाली में दोष :–

प्रशासनिक कार्यों में जवाबदेयता निश्चित करने के लिए अनेक कानून तथा प्रशासनिक संरचनाऐं कार्यरत हैं, किन्तु नियंत्रक का तंत्र अकार्यकुशल है। यहाँ तक कि नियंत्रण प्रणाली में भी भ्रष्ट एवं अनैतिक चरित्र के कार्मिकों का बोलबाला है।

लालफीताशाही :–

भारत में सरकारी दफ्तरों में काम करने की प्रक्रिया बड़ी जटिल एवं विलम्बकारी होती है। इतने अधिक नियमों, उपनियमों का जाल फैला हुआ है कि कोई भी कार्य शीघ्रता से नहीं हो सकता है। लोग अपना कार्य जल्दी कराने के लिए सरकारी कर्मचारियों को विभिन्न प्रकार से रिश्वत देने में संकोच नहीं करते हैं।

राजस्थान प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्यक्ष शिवचरण माथुर की नजर में अफसरों की स्वविवेकी शक्तियाँ तथा विशेषाधिकार प्रशासनिक भ्रष्टाचार की जड़ है।

3.5 समाधान

प्रशासन में भ्रष्टाचार को नियंत्रित करने के लिए कुछ सुझाव विचारणीय है:—

- रसेल महोदय के अनुसार — क्रांतिकारी अर्थात् व्यवस्था में आमूल—चूल परिवर्तन करना तथा सुधारवादी— व्यवस्था में समग्र परिवर्तन के स्थान पर अच्छाईयों का समावेश करना।
- प्रत्येक नागरिक को अनिवार्य रूप से सैनिक सेवाओं में कुछ समय के लिए शामिल किया जाये।
- स्कूली एवं कॉलेज शिक्षा में नैतिक शिक्षा के पाठ्यक्रमों का समावेश किया जाये।
- सरकारी धन के दुरूपयोग को दण्डनीय घोषित कर देना चाहिए।
- सरकारी कार्मिकों की कार्यशैली का मूल्यांकन खुली अदालत में होना चाहिए।

  श्री के.संथानम की अध्यक्षता में बनी भ्रष्टाचार निरोधक समिति ने 137 सिफारिशें प्रस्तुत की थी, जिनमें प्रमुख है:—

- सरकारी कार्यप्रणाली, नौकरशाही की कठोरता तथा प्रक्रियायें सरल बनाई जायें।
- परमिट, लाइसेंस तथा ठेके स्वच्छ छवि वाले पंजीकृत संस्थाओं को ही दिया जाये।
- कोई भी सरकारी कार्मिक सेवानिवृत्ति के दो वर्ष पश्चात् तक निजी व्यवसायिक, औद्योगिक या वाणिज्यिक संगठन में नियुक्त ना हो।
- प्रत्येक मंत्री विधायक, सांसद तथा लोकसेवक अपनी सम्पत्ति का ब्यौरा प्रस्तुत करें।
- केन्द्रीय सतर्कता आयोग की स्थापना की जाये।
- निजी संस्थाओं द्वारा राजनीतिक दलों को दिये जाने वाले चन्दे की सूचना एवं लेखे सार्वजनिक किये जायें।
- सरकारी कार्मिकों को वेतन, भत्ते तथा आवास सुविधा की पर्याप्त व्यवस्था की जाये ताकि वे भ्रष्टाचार ना करें।
- सरकारी कार्यों, फाइलों तथा पत्र निस्तारण की एक निश्चित अवधि निर्धारित की जाये।
- भर्ती तथा पदोन्नति में निष्पक्षता हो।

डॉ.कलाम ने कहा है कि — —भ्रष्टाचार को कोई भी कानून पूरी तरह समाप्त नहीं कर सकता है। केवल तीन सदस्य इसे समाप्त कर सकते हैं— माता, पिता और प्राथमिक स्कूल।

3.6 भारत में भ्रष्टाचार निवारण के साधनों का विकास

प्रशासनिक कुशलता के लिए केवल संगठन और उसकी कार्यप्रणाली में सुधार करना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि संगठन में कार्य करने वाले व्यक्ति प्रशिक्षित एवं योग्य हो और वे

ईमानदारी से कार्य करते रहें, इसकी बहुत अधिक आवश्यकता है। यदि सिविल सेवा ईमानदार नहीं होगी तो अच्छा संगठन भी व्यर्थ हो जायेगा।

सन् 1941 में भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने के लिए भारत सरकार ने विशेष पुलिस की स्थापना की । यह संगठन युद्ध के उपयोग के सामान के क्रय–विक्रय में रिश्वत एवं भ्रष्टाचार को रोकने के लिए बनाया गया।

सन् 1942 में इसे रेलवे विभाग के भ्रष्टाचार के मामलों की जाँच का काम सौंपा गया। सन् 1946 में इसे गृह विभाग का अंग बनाया गया तथा अधिकारों में वृद्धि की गयी। सन् 1953 में इसमें भ्रष्टाचार निरोध शाखा को बढ़ाया गया।

सन् 1963 में इसे केन्द्रीय जाँच ब्यूरों के एक खण्ड के रूप में स्थानान्तरित किया गया।

3.7 के. संथानम समिति प्रतिवेदन

सन् 1962 में भारत सरकार द्वारा भ्रष्टाचार का अध्ययन एवं निवारण हेतु के.संथानम की अध्यक्षता में समिति नियुक्त की गयी। इसे भारत के सतर्कता विभाग के कार्यों की जाँच करने और इसमें आवश्यक सुधार बताने तथा सरकारी विभागों में भ्रष्टाचार बन्द करने के उपाय बताने का कार्य किया गया था। इस समिति ने 31 मार्च 1964 को अपनी रिपोर्ट सरकार को प्रस्तुत की। इस समिति की प्रमुख सिफारिशें निम्नलिखित थी :–

- संविधान के अनुच्छेद 113 का संशोधन इस प्रकार किया जाये कि भ्रष्टाचार के मामलों में कानूनी कार्यवाही शीघ्रता एवं आसानी से हो सके।
- सरकारी विधियों, नियमों और प्रशासनिक कार्य प्रणालियों को सरल और स्पष्ट बनाया जाना चाहिए, जिससे सरकारी कर्मचारी को अनैतिक कार्य करने का अवसर नहीं मिले।
- परमिट, लाइसेंस और ठेके केवल उन्हीं व्यक्तियों और कम्पनियों को दिया जाना चाहिए जो सरकार में पंजीकृत हो तथा मान्यता प्राप्त हो।
- मामलों का निपटारा शीघ्र करना चाहिए।
- योग्यता के आधार पर ही जिम्मेदारी सौंपी जानी चाहिए।
- सभी लोक सेवकों, विधायकों और मंत्रियों को अपनी निजी सम्पत्ति की घोषणा करनी चाहिए।
- केन्द्रीय सरकार में एक सतर्कता आयोग बनाना चाहिए।
- कोई भी सरकारी कर्मचारी सेवानिवृति के दो साल बाद तक किसी भी व्यक्तिगत, व्यापारिक तथा औद्योगिक फर्म में काम ना कर सकें।

3.8 केन्द्रीय सतर्कता आयोग

फरवरी 1964 में संथानम समिति के सुझावों को ध्यान में रखते हुए लोक सेवकों के विरूद्ध लगाये गये आरोपों की जाँच करने के लिए, सरकार को दोषी अधिकारियों के विरूद्ध मुकदमा चलाने के संबंध में परामर्श देने हेतु भारत सरकार ने केन्द्रीय सतर्कता आयोग की स्थापना की। यह आयोग राजपत्रित अधिकारियों और उसके समान स्तर वाले कार्मिकों के

भ्रष्टाचार से संबंधित मामलों की जाँच करता है। संसद सदस्य और मंत्री इसके क्षेत्राधिकार से बाहर है।

संगठन :– 25 अगस्त 1998 को एक अध्यादेश द्वारा भारत सरकार ने केन्द्रीय सतर्कता आयोग को वैधानिक दर्जा प्रदान कर दिया है। यह बहुसदस्यीय आयोग है, जिसमें केन्द्रीय सतर्कता आयुक्त के अलावा तीन सतर्कता आयुक्त नियुक्त करने का प्रावधान है। इन सभी अधिकारियों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा एक उच्चाधिकार प्राप्त समिति की सिफारिश पर की जाती है।

केन्द्रीय सतर्कता आयुक्त का कार्यकाल 4 वर्ष तथा सतर्कता आयुक्तों का कार्यकाल 3 वर्ष होगा, किन्तु इन पदों पर कार्य करने की अधिकतम आयु सीमा 65 वर्ष हो।

कार्य–

सतर्कता आयोग के निम्न कार्य है:–

- सरकारी अधिकारी पर लगाये गये अनुचित, भ्रष्ट, बुरे व्यवहार एवं अत्याचार के आरोपों की जाँच करना।
- सतर्कता एवं भ्रष्टाचार विरोधी कार्यों के संबंध में विभिन्न अभिकरणों से प्रतिवेदन प्राप्त करना।
- केन्द्रीय जाँच के लिए सौंपे नये मामलों को अपने प्रत्यक्ष नियन्त्रण में लेना।

कार्य पद्धति– सतर्कता आयोग शिकायतें स्वीकार करता है। भ्रष्टाचार की सूचनायें प्राप्त करने के लिए पहल करता है। संसद में हुई आलोचना, पत्र–पत्रिकाओं के समाचार, लेखा परीक्षण के प्रतिवेदन, आदि से भी सूचनायें एकत्र करता है। सूचना प्राप्ति के बाद संबंधित मामले के अनुसार आयोग संबंधित विभाग के सतर्कता एकक को प्राथमिक जाँच के लिए दे सकता है और उसे अपना प्रतिवेदन देता है। ब्यूरों जाँच का प्रतिवेदन आयोग को देता है। दोनों ही दशाओं में आयोग संबंधित विभाग को कार्यवाही की सलाह देता है। गंभीर मामलों में केन्द्रीय जाँच ब्यूरों जाँच प्रतिवेदन आयोग के माध्यम से गृह मंत्रालय. को तथा गृह मंत्रालय अपने तर्क आयोग को दे सकता है। आयोग गृह मंत्रालय को सलाह देता है। यद्यपि केन्द्रीय सतर्कता आयोग को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है, किन्तु इसकी भूमिका परामर्शदात्री निकाय की है। आयोग अपने कार्यों का प्रतिवेदन गृह मंत्रालय को प्रस्तुत करता है, जो उसको संसद के दोनों सदनों के समक्ष प्रस्तुत करता है। केन्द्रीय सतर्कता आयोग ने सार्वजनिक सेवाओं में सत्यनिष्ठा बनाये रखने के लिए सरकारी भुजा का महत्वपूर्ण कार्य किया है।

3.9 केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरों

केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरों की स्थापना अप्रैल 1963 में हुयी थी। पहले इसे विशेष पुलिस प्रतिष्ठान के रूप में जाना जाता था, जिसे दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना अधिनियम 1946 के अन्तर्गत बनाया गया था और जो इसी अधिनियम के अनुसार परिचालित होता था 1963 में इस संगठन के कार्यकलापों को विस्तृत कर दिया गया। केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरों को सी.बी.आई. के नाम से जाना जाता है। सन् 1985 तक केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरों गृह मंत्रालय के अधीन रहा।

सन् 1985 से 2003 तक कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय के अधीन कार्यरत रहा तथा 30 जनवरी 2003 से यह संस्था कैबिनेट सचिवालय के अधीन कार्यरत है।

सी.बी.आई. का मुख्यालय नई दिल्ली में स्थित है। इसका प्रमुख निदेशक कहलाता है, जिसके अधीन कई अतिरिक्त निदेशक, संयुक्त निदेशक तथा विधि सलाहकार कार्य करते हैं। 18 जनवरी 2002 से ब्यूरों में एक अभियोजन निदेशालय स्थापित कर दिया गया है, जिसका एक पृथक से पूर्णकालिक निदेशक भी है।

सी.बी.आई. का प्रशासनिक संगठन अब तीन संभागों यथा भ्रष्टाचार निरोधी संभाग, विशेष अपराध संभाग तथा आख्रथक अपराध संभाग में विभक्त है। सी.बी.आई. के क्षेत्रीय कार्यालय राज्यों में भी स्थित है। सी.बी.आई. को विशेष पुलिस संगठन कानून के अन्तर्गत अनेक विशेषाधिकार प्राप्त है तथा इसकी जाँच प्रणाली बहुत गंभीर, व्यापक, गहन तथा विश्वसनीय मानी जाती है।

इस संगठन दारा अन्वेषण किये जाने वाले मामले इस प्रकार है– ऐसे मामले, जिनमें केन्द्रीय सरकार या उन निगमों या प्रतिठानों के, जिन्हें केन्द्रीय सरकार ने बताया है या जिनके निर्माण और परिचालन में केन्द्र वित्तीय सहायता देता है, के हितों को हानि पहुँचती हो, जिनमें केन्द्रीय कानून, जिन्हें केन्द्रीय सरकार लागू करना चाहती है, भंग होते हों, धोखाधड़ी, फरेब और पैसे के दुरूपयोग के बड़े मामले और संगठित गिरोहों तथा पेशेवर अपराधियों, जिनके अन्तर्राज्यीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अड्डे हैं, के मामले तथा इसे राज्य की सुरक्षा संबंधी मामलों के साथ–साथ राष्ट्रीय महत्व के मामलों की जाँच का भी कार्य सौंपा गया है।

सी.बी.आई. का कार्यक्षेत्र केन्द्र एवं राज्य सरकार सहित समस्त भारत है। इसका मुख्य कार्य सतर्कता तथा भ्रष्टाचार निरोधी कार्यक्रमों का संचालन करना है। पुलिस की तरह विशेष तथा गंभीर प्रकरणों की जाँच कर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करती है।

सी.बी.आई. के प्रमुख कार्य :–

- राष्ट्रीय स्तर पर अपराधों के आँकड़े एकत्र करना, अपराध और अपराधियों की सूचना एकत्र कर अन्य एजेन्सीज को देना।
- राज्य सरकार द्वारा नहीं सुलझाये जा सकने वाले अपराधों की जाँच करना।
- भारत सरकार के कर्मचारियों के विरूद्ध चल रहे भ्रष्टाचार के मामलों की जाँच करना।
- इन्टरपोल के सहयोग से राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय अपराधों से संबंधित सूचनाओं का आदान–प्रदान करना।
- सरकार को परामर्श देना।
- राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता संबंधी मामलों की जाँच करना।
- केन्द्रीय सरकार के अनुरोध पर कर्मचारियों के विरूद्ध कार्यवाही करना।
- सी.बी.आई. से यह अपेक्षा की जाती है कि वह सभी अपराधों की जाँच गंभीरता से करें।

सी.बी.आई. तथा केन्द्रीय सतर्कता आयोग में अन्तर –

- सी.बी.आई. एक पुलिस संगठन है, जबकि केन्द्रीय सतर्कता आयोग परामर्शकारी संस्था है।

- सी.बी.आई. की स्थापना एक विशेष पुलिस अधिनियम के अन्तर्गत हुई है एवं केन्द्रीय सतर्कता आयोग की स्थापना कार्यपालिका के कार्यकारी आदेश द्वारा हुई है।
- सी.बी.आई को अधिकार है कि वह किसी भी व्यक्ति को हिरासत में लेकर, माल जब्त करने एवं छापे मार सकता है, जबकि आयोग को ऐसा कोई अधिकार प्राप्त नहीं है।
- सी.बी.आई. भारत के भ्रष्टाचार प्रकरण तथा आर्थिक एवं राजनीतिक अपराधों के मामलें देखती हैं, जबकि केन्द्रीय सतर्कता आयोग द्वारा केवल केन्द्र सरकार के कार्यक्रमों के भ्रष्टाचार के मामले देखे जाते है।
- भ्रष्टाचार के मामलों में यह भ्रष्टाचार निरोधक कानून के तहत आपराधिक मुकद्मा चलाती है एवं विभागीय कार्यवाही की तरह जाँच करवाता है।

  सी.बी.आई. को अधिक कार्यकुशल बनाने के लिए अधिक अधिकार संपन्न बनाने की आवश्यकता है।

3.10 राज्य सतर्कता आयोग तथा भ्रष्टाचार निरोधक विभाग

सन् 1964 में संथानम समिति ने राज्यों में राज्य सतर्कता आयोग की स्थापना की सिफारिश की थी, जिसके फलस्वरूप कुछ राज्यों में राज्य सतर्कता आयोग स्थापित किये गये तथा बहुत से राज्यों में भ्रष्टाचार निरोधक विभाग बनाये गये।

राज्य सतर्कता आयोग के आयुक्त्त को राज्यपाल द्वारा पाँच वर्ष के लिए नियुक्त किया जाता है। आयुक्त को उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के समान ही सुविधायें प्रदान की जाती है। राज्य सतर्कता आयोग राज्य कर्मचारियों के विरूद्ध भ्रष्टाचार संबंधी मामलों की जाँच करवाता है।

राजस्थान में भ्रष्टाचार निरोधक विभाग बनाया गया था, जिसे राजस्थान राज्य अन्वेषण ब्यूरों के नाम से जाना जाता है। 12 मार्च 2001 से राजस्थान में मुख्य सतर्कता आयुक्त प्रणाली भी लागू की गई। राज्य अन्वेषण ब्यूरों में एक पुलिस महानिरीक्षक, चार पुलिस अधीक्षक, छः अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक तथा तीन पुलिस उपाधीक्षक कार्यरत है। यह ब्यूरों अपने कार्यकरण में स्वतंत्र है। ब्यूरों अपनी रिपोर्ट सीधे मुख्यमंत्री को सौंपते है। जिला स्तर पर भ्रष्टाचार विरोधी कार्य करने हेतु कार्यालय स्थापित किये गये हैं।

3.11 भारत में लोकपाल और लोकायुक्त पद की आवश्यकता

भारतीय लोक प्रशासन में भ्रष्टाचार एक बहुचर्चित विषय बन गया है। हमारे देश में बढ़ता हुआ भ्रष्टाचार भारतीय लोक प्रशासन के उदर में नासूर है। पद प्राप्ति तथा राजनीतिक पहुँच के पीछे अन्धी दौड़ ने देश में भ्रष्टाचार को बहुत बढ़ावा दिया है। विदेशी विद्वान टॉब ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है कि भ्रष्टाचार द्वारा कार्य सिद्ध करना भारत में एक सामान्य और सर्वत्र फैली हुई बीमारी है।

भारतीय लोक प्रशासन में भ्रष्टाचार को विकसित होते देखकर एक ऐसी प्रभावकारी मशीनरी की अत्याधिक आवश्यकता है, जो इस तकलीफ से छुटकारा दिला सके। भारतीय संविधान में कोई ऐसा उपकरण नहीं है, जिससे प्रशासन में विलम्ब, भ्रष्टाचार, भाई–भतीजावाद,

स्वेच्छाचारिता, अनियमितता तथा जनता के साथ अन्याय व शिकायतें सुनी जा सकें। न्यायालयों का न्यायिक समीक्षा का क्षेत्राधिकार इतना सीमित है कि वे प्रशासनिक गतिविधियों पर नियंत्रण नहीं रख सकते हैं। सरकार को कई विशेषाधिकार तथा स्वविवेकी शक्तियाँ प्राप्त है, जिनके विरूद्ध न्यायालय में कोई प्रश्न नहीं उठाया जा सकता है। न्यायालय केवल उस स्वेच्छाचारिता पर ही रोक लगा सकता है, जो मूल अधिकारों का संविधान की धाराओं या कानून द्वारा स्थापित उचित प्रक्रिया के विरूद्ध है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि सरकारी तंत्र से व्यक्तियों का अहित होने पर ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है, जिनसे उसे न्यायिक मदद प्राप्त हो सके। अत: ऑम्बुड्समैन ही ऐसी संस्था हो सकती है, जो विभागों की फाइलों की जाँच कर सकें, व्यक्तियों की शिकायतों को सुन सकें और प्रशासन पर नियंत्रण लगा सकें।

3.12 लोकायुक्त या लोकपाल

भारत में लोकपाल या लोकायुक्त के नाम से जाने जानी वाली संस्था को स्वीडिश शब्द ऑम्बुड्समैन के समान माना जा सकता है, जिसका अर्थ है– किसी का प्रतिनिधित्व करने वाला। यह एक ऐसी संस्था है, जो कुप्रशासन से नागरिकों की रक्षा करती है। सर्वप्रथम इसकी स्थापना 1809 में स्वीडन में हुई थी। तत्पश्चात् विश्व के अन्य देशों में इस प्रणाली को अपनाया गया।

भारत में ऑम्बुड्समैन जैसी संस्था की स्थापना का सुझाव राजस्थान प्रशासनिक सुधार समिति ने दिया था। आयोग की सिफारिश पर सर्वप्रथम 9 मई 1968 को लोकपाल तथा लोकायुक्त विधेयक संसद में प्रस्तुत किया गया, जो लोकसभा में पारित हो चुका था, लेकिन दुर्भाग्य से राज्यसभा में पारित नहीं हो सका। उसके पश्चात् 1971, 1977, 1985, 1990, 1996 एवं 1998 में संसद के पटल पर लोकसभा विधेयक पेश किया गया, किन्तु किसी न किसी कारणवश पारित नहीं हो सका। 14 अगस्त 2001 में एक नया विधेयक प्रस्तुत किया गया, लेकिन इस पर भी विचार नहीं किया जा सका।

आँठवें अखिल भारतीय लोकायुक्त सम्मेलन में राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने कहा था कि लोकपाल संस्था की शीघ्र स्थापना हो तथा इसके दायरे में राष्ट्रपति एवं प्रधानमंत्री को भी शामिल किया जाना चाहिए।

लोकपाल विधेयक 2001 में यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया कि लोकपाल स्वतंत्र रूप से कार्य कर सके और अपने दायित्वों का निर्वाह बिना किसी भय और पक्षपात से करने में समर्थ हो सकें।

3.13 राज्यों में लोकायुक्त

शासन में भ्रष्टाचार और भाई–भतीजावाद से निपटने के लिए कई राज्यों में लोकायुक्त अधिनियम स्वीकार किये गये और महाराष्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान और उत्तरप्रदेश आदि 12 राज्यों में लोकायुक्त के पद सृजित किये गये। इनमें से कुछ राज्यों ने मुख्यमंत्री को लोकायुक्त की जाँच परिधि से बाहर रखा है। उड़ीसा पहला ऐसा राज्य था, जिसने मुख्यमंत्री को जाँच परिधि में

शामिल किया था, लेकिन बाद में एक अध्यादेश द्वारा मुख्यमंत्री को जाँच परिधि से बाहर कर दिया।

राज्यों में लोकायुक्त कथित पक्षों द्वारा की गई शिकायतों की जाँच करते हैं। लोकायुक्त्त के पद पर उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के सेवानिवृत न्यायाधीशों को ही नियुक्त किया जाता है तथा इन्हें अन्य कोई लाभ का पद धारण करने की अनुमति नहीं है। आंध्र प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, केरल, राजस्थान और उत्तर प्रदेश के अधिनियमों में झूठी शिकायत करने वालों के लिए दण्ड की व्यवस्था विशेष रूप से की गई है।

जिन 12 राज्यों में लोकायुक्त कार्यरत है, की कार्यप्रणाली का विश्लेषण करने से पता चलता है कि राज्य स्तरीय ऑम्बुड्समैन संस्था की कार्य प्रक्रिया अव्यवस्थित एवं असंतोषजनक है। अधिकांश लोकायुक्त अप्रभावी रहे है तथा विभिन्न राज्यों में लोकायुक्त संबंधी विधि में एकरूपता का अभाव पाया जाता है।

3.14 मूल्यांकन

भारतीय लोकपाल तथा लोकायुक्त पदों के खिलाफ काफी कुछ आलोचनाऐं की गई है और कहा जाता है कि लोकपाल की संस्था केवल छोटे तथा अपेक्षाकृत कम आबादी वाले देशों में सफल हुई है। भारत विषम आबादी वाला एक विशाल देश है और संकीर्णता से त्रस्त है। भारतीय प्रशासन भी भ्रष्टाचार, भाई–भतीजावाद, पक्षपात, उदासीनता एवं लापरवाही जैसे बुराईयों से ग्रस्त है। अत: नागरिकों के स्वाभाविक है कि भारतीय लोकपाल से ज्यादा उम्मीदें रखेंगे। लोक शिकायतों की भरमार लगा देंगे, जिनकी छानबीन करने में काफी समय लग सकता है और लोकपाल समयाभाव के चलते संतोषजनक सुनवाई करने में असफल हो सकता है। भारत में उच्च पदों पर भी भ्रष्टाचार देखा जाता है। इसलिए कभी यदि लोकपाल राजनीतिक हो या कम योग्य व्यक्ति इस पद पर नियुक्त हो जाता है तो इस पद की गरिमा को ठेस पहुँचेगी।

उपरोक्त खामियों के बावजूद भी इस संस्था की उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता। यह आशा की जाती है कि लोकायुक्त प्रशासन में सुधारात्मक कार्य करेगा। वे जनता के कष्टों को संसद के प्रतिनिधि के रूप में सुनेंगे तथा उन्हें मदद करेंगे तथा प्रशासन को नियंत्रण में रख सकेंगे।

आधुनिक समय में सभी राष्ट्र आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तन के परिवेश से गुजर रहे है। सामाजिक और आर्थिक लक्ष्य की प्राप्ति करना प्रत्येक देश का ध्येय है। भारत जैसे परम्परावादी समाज के लिए यह बात और अधिक महत्व रखती है। हमारे संविधान में वर्णित आवश्थक, सामाजिक एवं राजनीतिक स्वतन्त्रता एवं न्यायिक उद्देश्यों की प्राप्त तभी संभव है, जबकि लोक प्रशासन पारदर्शी, कुशल एवं उत्तरदायी हो।

भ्रष्टाचार की बेल को समाप्त करना अति आवश्यक है, जिसके संदर्भ में कुछ सख्त उपाय अपनाने आवश्यक है। यथा लोकपाल विधेयक को आवश्यक रूप से संसद के दोनों सदनों द्वारा पूर्ण बहुमत के साथ पारित किया जाना चाहिए।

उपरोक्त विधेयक के दायरे में सिविल सेवा, राजनेता के साथ–साथ प्रधानमंत्री को भी शामिल किया जाना चाहिए।

भ्रष्टाचार संबंधी कानूनों का समावेश संविधान में संशोधन के माध्यम से शामिल किया जाना चाहिए तथा यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि उपरोक्त कानूनों की पालन पूर्णतया सख्ती से की जाय।

राजनीति एवं प्रशासन का पृथक्करण होना चाहिए। जिससे राजनेता हर क्षेत्र में अपनी दखलंदाजी ना करें। स्थानान्तरण, नया पदस्थापन, पदोन्नति आदि में समानीकरण की नीति को अपनाना अति आवश्यक है क्योंकि ये क्षेत्र भ्रष्टाचार को बढ़ाने में सहायक सिद्व हो रहे है। भारतीय प्रशासन को आज ईमानदार एवं कर्मठ सत्यनिष्ठ अधिकारी एवं कर्मचारियों की आवश्यकता है। जिस तरह एक मछली सारे तालाब को गन्दा कर सकती है, इसी प्रकार ईमानदार अधिकारी भ्रष्टाचार को समाप्त करने की दिशा में कारगर पहल कर सकता है। सरकार को चाहिए कि जो भी अधिकारी ईमानदारी एवं सत्यनिष्ठ से कार्य करते हैं, उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए, जिससे अन्य व्यक्तियों को भी प्रेरणा मिल सके।

नियोजन के कार्य में विशेषज्ञों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए, जिससे उनमें व्याप्त कुंठा को कुछ हद तक कम किया जा सके।

भ्रष्टाचार के कारण भारत देश की वांछित प्रगति नहीं हो सकी है। अतः इसे समूल नष्ट किया जाना अति आवश्यक है।

3.15 अभ्यास प्रश्न

1. भारतीय प्रशासन में पाए जाने वाले भ्रष्टाचार की प्रकृति और कारणों की विवेचना कीजिए।
2. भारतीय प्रशासन से भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए क्या किया जा सकता है। संक्षेप में अब तक के प्रयासों का विवरण प्रस्तुत कीजिए।

3.16 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. फडिया बी.एल. भारत में लोक प्रशासन, साहित्य भवन, आग्रा, 2007
2. कटारिया, सुरेन्द्र, भारतीय लोक प्रशासन, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर 2007
3. अवस्थी एवं अवस्थी, भारतीय लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आग्रा, 2007

इकाई–4

जिला दण्डाधिकारी तथा जिला विकास पदाधिकारी के रूप में कलेक्टर की बदलती भूमिका के विशेष सन्दर्भ में जिला प्रशासन

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 जिला प्रशासन: ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं क्रमिक विकास

4.3 जिला प्रशासन: कलेक्टर की बदलती भूमिका के विशेष सन्दर्भ में

4.3.1 जिला दण्डाधिकारी के रूप में

4.3.2 जिला विकास पदाधिकारी के रूप में

4.4 सारांश

4.5 शब्दावली

4.6 अभ्यास प्रश्न

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जिला प्रशासन में कलेक्टर के पद का महत्व समझ सकेंगे, उसकी व्याख्या कर पायेंगे। इस पद के विकास का चित्रण कर सकेंगे। कलेक्टर के पद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं क्रमिक विकास तथा उस पद के महत्व की जानकारी के बाद इस इकाई में कलेक्टर की बदलती भूमिका के विशेष सन्दर्भ में जिला प्रशासन की विवेचना से परिचित होंगे। आप कलेक्टर के परंपरागत और विकासात्मक भूमिकाओं अर्थात् जिला दण्डाधिकारी और जिला विकास पदाधिकारी के रूप में उसकी भूमिकाओं का वर्णन कर सकेंगे। इस क्रम में आप उन सीमाओं/ अवरोधों की भी विवेचना कर सकेंगे जिनके अर्न्तगत कलेक्टर को कार्य करना होता है।

4.1 प्रस्तावना

दो सदी से भी अधिक पहले औपनिवेशिक शासकों ने कलेक्टर का पद स्थापित किया। स्वतंत्र भारत के लोक प्रशासन व्यवस्था की यह महत्वपूर्ण विरासत ईस्ट इंडिया कम्पनी की देन है, जिसकी उपयोगिता और प्रासंगिकता में लगातार वृद्धि हुई। 'जिला' क्षेत्र प्रशासन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण इकाई है और कलेक्टर जिला प्रशासन का प्रधान। विभिन्न आयोगों, अधिनियमों, सुधारों ने भी इस पद का विकल्प नहीं पाया और यह क्रमश: सुदृढ़ और विस्तारित होता गया। स्वाधीनता के बाद विशेषकर कल्याणकारी राज्य और योजनाबद्ध विकास ने कलेक्टर की भूमिका में अपरिमित वृद्धि कर दी। विकेन्द्रीकृत विकास, विशेषकर पंचायतीराज ने उसकी भूमिका को

नया आयाम दिया। एक ओर कलेक्टर और जिला पदाधिकारी के रूप में वह परम्परागत और नियामक भूमिका निभाता है, तो दूसरी ओर उसकी महत्वपूर्ण भूमिका जिला विकास पदाधिकारी के रूप में है। इस नवीन भूमिका में उसे जिला परिषद, जिला ग्रामीण विकास अभिकरण और ऐसे ही अनेकानेक लोकतांत्रिक, प्रतिनिध्यात्मक संस्थाओं के साथ कार्य करना होता है। सूचना प्रौद्‌यौगिकी के प्रयोग ने जहाँ पारदर्शिता, त्वरित निष्पादन और संलेख साधारण को सुगम बनाया है, वहीं सूचना के अधिकार अधिनियम ने उसके उत्तरदायित्व और अनुक्रियाशीलता में वृद्धि कर दी। नित नवीन विकास एवं कल्याण कार्यक्रमों की शुरूवात केन्द्र और राज्य सरकारों द्‌वारा की जाती है जिसके क्रियान्वयन की इकाई जिला प्रशासन ही है। राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कार्यक्रम इसका उदाहरण है। सिविल सोसाइटी की जागरुकता और गैर सरकारी संगठनों की क्रियाशीलता ने जिला कलेक्टर को जहाँ जन भागीदारी का अवसर उपलब्ध कराया है, वहीं उसके समक्ष चुनौतियाँ और दबाव भी उप स्थापित किया है।

इस इकाई में कलेक्टर की इसी बदलती भूमिका के विशेष सन्दर्भ में जिला प्रशासन की विवेचना की गयी

4.2 जिला प्रशासन: ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और क्रमिक विकास

'जिला' प्राचीन समय से भारतीय लोक प्रशासन की आधारभूत इकाई रही है। मनु के काल से लेकर मौर्य काल में विभिन्न नामों से एक भौगोलिक इकाई के रूप में इसका अस्तित्व रहा है। मुगलकालीन 'सरकार', फ्रांसीसी 'डिपार्टमेन्ट', ब्रिटिश और अमेरिकी 'काउंटी' इसके सदृश प्रशासनिक इकाई हैं। ब्रिटिश शासनकाल के प्रारंभिक दौर में राबर्ट क्लाइव ने दोहरी प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित की थी। इससे उत्पन्न समस्याओं के समाधान के लिए प्रत्येक जिले में सुपरवाइजर नियुक्त किया गया। सुपरवाइजर के पद को जिला कलेक्टर का पूर्ववर्ती माना जा सकता है। रेन्ट रौल तैयार करना, भू राजस्व का नियमन, कर संग्रह की जाँच, भूमि धारिता की जांच तथा न्याय प्रशासन का कार्य सुपरवाइजर के जिम्मे था। सुपरवाइजर की नियुक्ति से अपेक्षित लाभ नहीं हु आ।

मई 1772 में वॉरेन हैस्टिंग्स ने कलेक्टर का पद सृजित किया। भू राजस्व के संग्रह के अतिरिक्त टाइटिल सूट का निबटारा, दीवानी और फौजदारी न्यायालय भी उसके अधीन दिये गये। एक वर्ष बाद उन्हें वापस बुला लिया गया और 1781 में पुन: कलेक्टर की नियुक्ति की गयी। यद्‌यपि जिलों में कलेक्टर और पृथक सिविल न्यायाधीशों के कार्य को लेकर भ्रम की स्थिति रही। 1787 में राजस्व प्रशासन, सिविल न्याय और मजिस्ट्रेसी की शक्तियाँ कलेक्टर में समाहित कर दी गयी। लार्ड कार्नवालिस ने 1793 में न्यायिक और राजस्व मामले की सुनवाई का अधिकार उससे ले लिया। 1813 एवं 1814 के रेग्युलेशन्स के द्‌वारा जिला कलेक्टर को पुन: राजस्व संग्रह और असैनिक न्यायिक मजिस्ट्रेट की शक्ति प्रदान कर दी गयी। 1816 में थानेदार और दारोगा से गठित पुलिस बल पर नियन्त्रण का अधिकार भी कलेक्टर को प्रदान कर दिया गया।

1857 के विद्रोह तक कलेक्टर और न्यायाधीश के बीच कार्यपालिका–न्यायपालिका पृथक्करण / एकीकरण का प्रयोग चलता रहा। 1859 में दण्ड प्रक्रिया सहित (The Criminal

Procedure Code) तथा 1860 में भारतीय दण्ड विधि (Indian penal Code) बना। 1861 में पुलिस अधिनियम (Indian Police Act) बना। इनमें कलेक्टर को पर्याप्त शक्तियाँ दी गयी थी। अब जिला में पुलिस और मजिस्ट्रेसी कलेक्टर के पर्यवेक्षण और नियन्त्रण में कार्य करने लगा। इस प्रकार वह जिला में सरकार का मुख्य एजेन्ट था। मद्रास प्रेसिडेंसी के गर्वनर टॉमस मुनरो के अनुसार कलेक्टर रैयतों के लिए त्वरित न्याय का प्रतीक था। प्रधानमंत्री रैम्से मैक्डोनाल्ड के अनुसार, 'जिला कलेक्टर सरकार की आँख और वाणी है। जिले के नाड़ी स्पन्दन पर उसे अपनी उंगलियां रखनी है और उसकी जानकारी के बिना कोई महत्वपूर्ण घटना नहीं घटित होनी चाहिए। चिड़िया के पंख फड़फड़ाने की घटना भी उसकी कानों तक पहुँचनी चाहिए।' (रोमिला थापर, ए हिस्ट्री ऑफ इंडिया, खंड 1, पेंग्विन, नई दिल्ली, 1990,30)

कलेक्टर ही जिला के मामलों का फीडबैक सरकार को प्रदान करता था। उससे जिले में सघन दौरे की अपेक्षा की गयी। कई कलेक्टर ने वनस्पति और जीवों तथा जनजातियों का अध्ययन किया। अकाल (दुर्भिक्ष) जैसे संकटों के कारण भी कलेक्टर का कार्य बढ़ा। जिले में समन्वय एवं एकीकरण का दायित्व उसका रहा। राजस्व संबंधी कार्यों में संभागीय आयुक्त तथा राजस्व बोर्ड तथा न्यायिक कार्यों में जिला जज एवं उच्च न्यायालय उसके कार्यों का पर्यवेक्षण करने लगा।

जिला बोर्ड तथा नगरपालिकाओं के गठन के बाद कलेक्टर को निर्वाचित प्रतिनिधियों के साथ कार्य करने का अवसर मिला। उसके कार्यों की जटिलता में वृद्धि हुई। सड़क और रेल परिवहन के विकास से उसकी स्वायत्तता में कटौती हुई। द्वैध शासन (भारत सरकार अधिनियम 1919) एवं प्रान्तीय स्वायत्तता (भारत सरकार अधिनियम 1935) के काल में उत्तरदायी शासन के लिए जिले से सम्बन्धित विधायी प्रश्नों का उत्तर भी उसे ही देने पड़ते थे।

इस प्रकार भूमि राजस्व संग्राहक के रूप में शुरु हुआ। कलेक्टर का पद भूमि धारण के निर्धारण, रैयती विवादों का निबटारा, फौजदारी (आपराधिक) मुकदमों का प्रशासन एवं मजिस्ट्रेट के रूप में सार्वजनिक शांति बनाये रखने के दायित्वों से युक्त हुआ। इस प्रकार ब्रिटिश शासन के दो सदियों की लम्बी विकास प्रक्रिया के परिणामस्वरूप यह पद विकसित हुआ। मांटेग्यू–चेम्सफोर्ड रिपोर्ट (1917) कलेक्टर की दोहरी एवं महत्वपूर्ण स्थिति का वर्णन किया गया।

रजनी कोठारी ने पालिटिक्स इन इंडिया में लिखा कि भारत में कलेक्टर का पद अनूठा है। इसकी अपेक्षित स्थिति और सत्ता ने एक प्रकार की संस्थागत करिश्मा निर्मित किया है जो आधुनिक प्रशासनिक विकास में बेमिसाल है । (पृ. 130–131). चूकिं इस पद से सम्बद्ध आभा, गरिमा, दायित्व एवं समस्याएँ पूर्व की विरासत हैं अत: इसका ऐतिहासिक अवलोकन आवश्यक था।

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि स्वतंत्रतापूर्वक भारत के विभिन्न तत्कालीन प्रान्तों में कार्यपालिका और न्यायिक शक्तियाँ कलेक्टर के हाथों में केन्द्रित थी। जिला कलेक्टर और मजिस्ट्रेट के रूप में जिला पुलिस उसकी कार्यपालक भुजाएँ रही। अधीनस्थ मजिस्ट्रेटों पर नियंत्रण, जेलों एवं अन्य प्रस्थापनों का निरीक्षण उसके दायित्व का अंग रहे। अपराध रोकने के अतिरिक्त दण्डित करना उसका कार्य था। आज न्यायिक कार्यों को उससे पृथक कर दिया गया है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान अभावों से राशनिंग (अनुभाजन) की शुरुआत हुई, इसका दायित्व जिले में कलेक्टर को दिया गया। भूकम्प, दुर्भिक्ष, भूमि अधिग्रहण, प्रान्तीय सरकार को सांख्यिकी सूचना देना आदि कार्य स्वतन्त्रता के पूर्व से कलेक्टर के रहे।

4.3 जिला प्रशासन : कलेक्टर की बदलती भूमिका के विशेष सन्दर्भ में

स्वतन्त्रता के पश्चात भारत में लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना के उद्देश्य से जिला प्रशासन में आवश्यक फेर बदल किया गया। त्रि–स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था के शुभारम्भ के परिणामस्वरूप जिला प्रशासन में आमूल–चूल परिवर्तन हुआ। इसके बावजूद जिला प्रशासन में आज भी जिला कलेक्टर का प्रशासन तन्त्र में सर्वोच्च स्थान बना हुआ है। जिला प्रशासन वह स्थल है जहाँ सामान्य नागरिक प्रत्यक्ष रूप से प्रशासन के सम्पर्क में आता है।

जहाँ तक कलेक्टर की बदलती भूमिका का प्रश्न है तो पूर्व में अपराध रोकने के अतिरिक्त दंडित करना उसका कार्य था। आज न्यायिक कार्यों को उससे पृथक कर दिया गया है। राजस्व संग्रह, जिला कोषागार, जनवितरण प्रणाली, सामाजिक सुरक्षा, पिछड़े वर्गो का कल्याण, योजना और विकास से सम्बन्धित कार्य उसे सम्पादित करने होते हैं। शिक्षा, कृषि, पशुपालन, उद्योग, श्रम, लोक स्वास्थ्य और लोक निर्माण के जिला स्तरीय पदाधिकारियों के कार्यों का समन्वय कलेक्टर ही करता है। कानून व्यवस्था बनाए रखने के लिए जिला पुलिस अधीक्षक एवं उसके अधीनस्थ अधिकारियों की सहायता से कार्य करता है। आज कई राज्यों में कलेक्टर के कार्यों का पर्यवेक्षण राजस्व बोर्ड (बोर्ड ऑफ रेवेन्यू) द्वारा किया जाता है। एक विचार है कि राजस्व बोर्डो को समाप्त करने से प्रशासन को कोई नुकसान नहीं होगा।

जहाँ तक जिलों का प्रश्न है तो जनसंख्या और क्षेत्रफल की दृष्टि से इनमें काफी अन्तर है। यदि राजस्थान का ही उदाहरण लें; तो इसके 32 जिलों में काफी अन्तर है। एक ओर जैसलमेर (38, 401 वर्ग किलोमीटर), बाड़मेर (28,387 वर्ग किलोमीटर) और बीकानेर (27,244 वर्ग कि.मी.) जैसे विशाल भूभाग वाले जिले हैं, वहीं दूसरी ओर दौसा (2950 वर्ग कि.मी.), धोलपुर (3034 वर्ग कि.मी.) ऑर डूंगरपुर (3770 वर्ग कि.मी.) जैसे छोटे आकार के जिले हैं। इसी प्रकार जनसंख्या की दृष्टि से जहाँ जयपुर की आबादी 52 लाख से अधिक है वहीं जैसलमेर की पांच लाख।

3.3.1 कलेक्टर और जिला मजिस्ट्रेट के रूप में भूमिका

कलेक्टर की भूमिका में बदलाव आया है जिसकी विवेचना दो शीर्षकों–जिला मजिस्ट्रेट के रूप में तथा जिला विकास पदाधिकारी के रूप में की जा रही है।

जिला मजिस्ट्रेट और कलेक्टर के रूप में उसकी परम्परागत भूमिका के चार महत्वपूर्ण पहलू हैं:

- राजस्व प्रशासन के प्रमुख के रूप में
- कानून व्यवस्था साधारण के लिए पुलिस प्रशासन के प्रमुख के रूप में
- जिला प्रशासन के प्रधान के रूप में

- सरकार के प्रतिनिधि के रूप में

(i) राजस्व प्रशासन के क्षेत्र में कलेक्टर की भूमिका :

कलेक्टर के पद की शुरूवात जिले में प्रधान राजस्व अधिकारी के रूप में हुई। भू राजस्व संग्रह के अतिरिक्त अन्य बकायों जैसे तकाबी ऋण एवं अन्य विभागों के बकाये की वसूली के लिए वही उत्तरदायी है। भूमि अभिलेखों का साधारण और ग्रामस्तरीय सांख्यिकी संकलन का दायित्व कलेक्टर का है। राजस्व मामलों में उसे अपीलीय शक्तियाँ प्राप्त हैं। भूमि सुधार के कार्यक्रमों का क्रियान्वयन एवं भूमिहीनों को बासगीत एवं कृषि भूमि आवंटित करने का अधिकार उसे प्राप्त है। अब जिले में आपदा प्रबन्धन कार्य को नवीन स्थान प्रदान किया गया है। प्राकृतिक आपदा की स्थिति में साहाय्य एवं पुर्नवास का कार्य कलेक्टर के नेतृत्व में ही पूर्व से चलाया जाता रहा है। साहाय्य की मात्रा का निर्धारण राज्य सरकार प्राय: कलेक्टर के आकलन के आधार पर ही करती है। संक्षेप में, कलेक्टर की राजस्व भूमिका निम्नलिखित क्षेत्रों में है, (i) भू राजस्व संग्रह, (ii) भूमि अभिलेख, (iii) भूमि सर्व, (iv) भूमि हदबन्दी (Ceiling) (v) भूमि चकबन्दी (Consolidation) (vi) भूमि अधिग्रहण, (vii) कोर्ट ऑफ वार्ड्स, (viii) सिंचाई शुल्क, (ix) कोषागार, (x) परिवहन इत्यादि।

राजस्थान भू–राजस्व अधिनियम के अन्तर्गत कलेक्टर को भूमि आवंटन, अकृषि भूमि में परिवर्तन, रिहायशी व्यावसायिक प्रयोजनार्थ आवंटन की व्यापक शक्तियां दी गयी है।

(ii) जिला मजिस्ट्रेट के रूप में कलेक्टर की भूमिका :

वह जिले में कानून व्यवस्था के साधारण के लिए उत्तरदायी है। कार्यपालिका से न्यायपालिका के पृथक्करण के बाद अब उसका सम्बन्ध आपराधिक प्रक्रिया संहिता 1973 के कुछ निषेधात्मक धाराओं–107,144,145 इत्यादि से ही है। वह जिला में पुलिस प्रशासन का प्रधान है और पुलिस अधीक्षक उसकी सहायता करता है। सभी महत्वपूर्ण मामलों में पुलिस अधीक्षक उससे आदेश प्राप्त करता है। जिला मजिस्ट्रेट और पुलिस अधीक्षक के बीच तनावग्रस्त सम्बन्ध के कई उदाहरण सामने आते हैं। इनमें आपसी समझदारी की कमी का प्रभाव सम्पूर्ण जिला प्रशासन पर पड़ता है।

पुलिस अधीक्षक अब जिला पदाधिकारी को अपना आधिकारिक उच्चस्थ नहीं मानते। कलेक्टर द्वारा वार्षिक गोपनीय अभियुक्ति लिखे जाने को पुलिस सेवा के अधिकारी उचित नहीं मानते। कई राज्य में उप महानिरीक्षक (डी.आई.जी.) को यह दायित्व दिया गया है। पुलिस सेवा के अधिकारियों का तर्क होता है कि कलेक्टर के नियन्त्रण से देरी, अनिर्णय और अदक्षता आती है। अत: यह अनावश्यक है। कलेक्टर पुलिस मामले में पर्याप्त समय नहीं दे पाते। दोहरे नियन्त्रण से क्षोभ एवं भ्रम पैदा होता है। इससे लाभ की तुलना में हानि अधिक है। प्रशासनिक सुधार आयोग (1969) ने भी विधि व्यवस्था के मामले में दोहरे कमाण्ड को श्रेयस्कर नहीं माना था। पुलिस अधीक्षक के साथ समीकरण, उनके अन्तःसम्बन्ध की गति कई जटिलता उभर रही है। जयपुर जैसे बड़े शहरों के लिए पुलिस आयुक्त प्रणाली के पक्ष में मांगे भी की जा रही है। पुलिस पर दण्डाधिकारी के नियन्त्रण का मुद्दा और तत्सम्बन्धी मानवाधिकार का मुद्दा आज विचारणीय बन गया है।

जिला मजिस्ट्रेट के रूप में वह दर्जनों अन्य कार्य सम्पादित करता है। शस्त्र अधिनियम, विस्फोटक अधिनियम, छवि–गृह अधिनियम, के बुल अधिनियम इत्यादि के अधीन अनुज्ञापत्र प्रदान करने का अधिकार है। पासपोर्ट, वीसा इत्यादि प्रदान करने की अनुशंसा करना, चरित्र प्रमाण–पत्र प्रदान करना उसके अधिकार क्षेत्र में हैं। जुलूसों, सम्मेलनों, सभा के आयोजन की अनुमति कलेक्टर से प्राप्त करनी होती है। जेलों पर उसका नियंत्रण होता है। जिले में प्रावेशन, अभियोजन, बाल सुधार गृह, नारी उत्तर–रक्षा गृह या सुधार गृह से सम्बन्धित समस्त कार्यों पर उसका नियंत्रण रहता है।

(iii) जिला प्रशासन के प्रधान के रूप में कलेक्टर की भूमिका

जिला में कलेक्टर (समाहरणालय), सब–डिविजन, तहसीलों एवं विकास प्रखण्डों के अधीनस्थ कर्मियों की नियुक्ति, पदस्थापना, अनुशासनात्मक कार्रवाई, प्रशिक्षण, पदोन्नति सहित समस्त कार्मिक मामले कलेक्टर के द्वारा निपटाये जाते हैं ।

राज्य सरकार के समस्त विभागों के जिला में अवस्थित कार्यालयों से समन्वय स्थापित करना, उनके कार्यों की निगरानी करना कलेक्टर का दायित्व है।

खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति, जनवितरण प्रणाली, उपभोक्ता मामले, इत्यादि प्रत्यक्षत: उसके अधीन रखे गये हैं। जिला आपूर्ति पदाधिकारी के माध्यम से वह इसका संचालन करता है। आवष्यक उपभोक्ता वस्तु अधिनियम के तहत कार्रवाई की वह निगरानी करता है। जिला उपभोक्ता फोरम के अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति की वह अनुशंसा करता है। निगरानी समिति एवं जिला उपभोक्ता परिषद् का गठन करता है। कलेक्टर ही जिला में कल्याण के विभिन्न विभागों एवं कार्यक्रमों से सम्बन्धित अधिकारियों पर निगरानी एवं उनमें समन्वय स्थापित करता है। स्त्री एवं बाल विकास, अनुसूचित जाति कल्याण, अनुसूचित जनजाति कल्याण, पिछड़ा वर्ग कल्याण एवं अल्पसंख्यक कल्याण कार्यक्रमों के क्रियान्वयन की देखरेख करता है।

स्थानीय स्वशासी निकायों–पंचायती राज संस्थाओं एवं नगर परिषदों से सम्बन्धित अधिनियमों में कलेक्टर को पर्यवेक्षणीय शक्तियां दी गयी है। इनके तहत निर्वाचन, आरक्षण, रोस्टर, गठन का कार्य भी राज्य निर्वाचन आयोग के नियन्त्रण में कलेक्टर द्वारा सम्पादित किया जाता है। जिले में जनगणना एवं आमचुनावों के संचालन के लिए वह उत्तरदायी होता है तथा जनगणना आयोग एवं भारत के निर्वाचन आयोग के निर्देशानुसार कार्य करता है।

(iv) सरकार के प्रतिनिधि के रूप में कलेक्टर की भूमिका

जिला स्तर पर वह सरकार के हितों की देखभाल करता है। सरकार से सम्बन्धित मुकदमों का पर्यवेक्षण करता है। उसे कई प्रोटोकॉल से सम्बन्धित कार्य करना होता है। वह विदेशी मेहमानों, मंत्रियों, अन्य विशिष्ट व्यक्तियों के जिले में आगमन होने पर उनका स्वागत करता है।

4.3.3 जिला विकास पदाधिकारी के रूप में कलेक्टर की भूमिका:

जब से ग्रामीण विकास कार्यक्रम प्रारम्भ हुए हैं जिला कलेक्टर को विकास कार्यों में समन्वय स्थापित करने और प्रशासनिक नेतृत्व प्रदान करने का दायित्व सौंपा गया है। राष्ट्रीय सामुदायिक विकास कार्यक्रम और कालान्तर में निर्मित अनेक कल्याणकारी और विकासपरक कार्यक्रमों जैसे बीस सूत्री आर्थिक कार्यक्रम, एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम, जवाहर रोजगार योजना, स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना, प्रधानमंत्री रोजगार योजना और अब राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना इत्यादि ने उसके पद को विकासोन्तुख बना दिया हैं। सूचना के अधिकार अधिनियम, आपदा प्रबन्धन अधिनियम ने उसके पद को नया आयाम प्रदान किया है।

73वें और 74वें संविधान संशोधन के सन्दर्भ में स्थानीय सरकार की स्थिति में परिवर्तन आया है। 29 और 18 विषयों से सम्बन्धित कार्य क्रमश: ग्रामीण और नगरीय स्थानीय संस्थाओं को सौंपे गये हैं। जिला योजना समिति के गठन तथा जिला ग्रामीण विकास अभिकरण के गठन ने जिला कलेक्टर की स्थिति को प्रभावित किया है। कलेक्टर की समन्वयकारी भूमिका को उभरती जटिलता ने प्रभावित किया है। स्थानीय निकायों की स्वायत्तता ने जिला और निचले स्तरों पर बदलते सत्ता और शक्ति समीकरण का संकेत दिया है। अत: जब कल्याण और विकास के वर्तमान सन्दर्भ में अधिकाधिक कार्य स्थानीय निकायों और अन्य स्वायत्त निकायों, गैर सरकारी संगठनों को सौंपे जा रहे हैं तो जिला प्रशासन में कलेक्टर की स्थिति पर उनका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। केन्द्र और राज्य प्रायोजित विकास परियोजनाओं के सफल क्रियान्वयन और लक्ष्य पूर्ति के लिए सरकार द्वारा कलेक्टर से अपेक्षा की जा रही है, वहीं पंचायती राज संस्थाओं और नगर निकायों की विकेन्द्रित जनतांत्रिक प्रणाली से समन्वय स्थापित करना कलेक्टर के लिए दिन–प्रतिदिन चुनौतीपूर्ण हो रहा है। प्रशासनिक–आर्थिक यथार्थ के नवीन परिवेश में कलेक्टर की विकासात्मक भूमिका पर केन्द्र सरकार द्वारा वीरप्पा मोइली की अध्यक्षता में गठित द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा विचार किया जा रहा है। समन्वय के मामले में भी निम्न अन्तःक्रिया और उच्च अन्तःक्रिया के विभागों की स्थिति में भिन्नता है। किन्तु इक्कीसवीं सदी के बदलते सन्दर्भ में कलेक्टर की विकासात्मक भूमिका– 'शासक', 'माईबाप', 'अन्नदाता', 'लाट साहब' से बदल कर 'उत्प्रेरक',प्रबन्धक, **'Facilitator'** की हो गयी है। विकास और सामाजिक परिवर्तन से प्रतिबद्ध पेशेवर भूमिका की उससे अपेक्षा की जा रही है।

आज जब प्रशासनिक पारदर्शिता, संवेदनशीलता, नागरिक उन्मुखता और जवाबदेयता प्रशासनिक ऍथोस के अंग बनाये जा रहे हैं, लोकहित की परिभाषा बदल रही है तो स्वाभाविक है कि दो सौ पूर्व स्थापित इस पद की स्थिति और भूमिका में परिवर्तन होगा। किन्तु भविष्य में भी यह पद अपरिहार्य बना रहेगा।

4.4 सारांश

भारत में जिला प्रशासन का लम्बा इतिहास है। कलेक्टर या जिला मजिस्ट्रेट की संस्था का पूर्व में चाहे जो नाम रहा हो, किन्तु इसका अस्तित्व काफी पहले से रहा है। कालक्रम में

इसका विकास हुआ है। ईस्ट इंडिया के काल में (1772) यह वर्तमान रूप में अस्तित्व में आया। परंपरागत रूप में वह भू–राजस्व, कानून व्यवस्था बनाए रखना और अन्य नियामकीय कार्यों का प्रभारी था। स्वतन्त्र भारत में कल्याणकारी राज्य और योजनाबद्ध विकास के लक्ष्यों के कारण कलेक्टर का पद विकास एवं परिवर्तन का वाहक बन गया। विकास से सम्बन्धित संस्थाओं/निकायों से समन्वय कलेक्टर का दायित्व बन गया। कलेक्टर का कार्यभार अत्यधिक है। प्रशासन के राजनीतिकरण का प्रभाव भी उसकी स्थिति पर पड़ा है। राजनीतिक हस्तक्षेप, अनिश्चित कार्यकाल, असमय तबादले ने उसकी गरिमा और महत्ता को प्रभावित किया है। जिला प्रशासन के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिवेश में व्यापक परिवर्तन हुए हैं। कलेक्टर का पद चुनौतीपूर्ण हो गया है। इस पद के विकल्प तलाशने और इसके कार्यभार में कमी के प्रयास सफल नहीं हुए हैं। भारत में क्षेत्रीय प्रशासन की यह धुरी है। जिला मजिस्ट्रेट, जिला विकास पदाधिकारी, जिले का प्रशासक और जिले में सरकार के प्रतिनिधि के रूप में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है।

4.5 शब्दावली

Land Ceiling– (भूमि हदबन्दी) एक निश्चित सीमा से अधिक कृषि भूमि धारण करने पर रोक।

Land Consolidation– (भूमि चकबन्दी) किसान के सभी कृषि भूमि को एक स्थान पर आवंटित करना

Collectorate – (कलेक्टर) कलेक्टर का कार्यालय – समाहरणालय।

Protocol – (प्रोटोकॉल) नयाचार – व्यवहार और शिष्टाचार के औपचारिक नियम

4.6 अभ्यास प्रश्न

1. जिला प्रशासन के महत्व एवं विकास का चित्रण करें।
2. कलेक्टर के पद के उद्भव एवं विकास का चित्रण करें।
3. जिले में राजस्व प्रशासन के प्रधान के रूप में कलेक्टर की भूमिका का वर्णन करें।
4. जिला मजिस्ट्रेट एवं जिला पदाधिकारी के रूप में कलेक्टर की भूमिका की समालोचना करे।
5. वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कलेक्टर की विकासात्मक भूमिका की विवेचना करें।

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. रवीन्द्र शर्मा, राज्य प्रशासन, कॉलेज बुक हाउस, जयपुर, 2006
2. अवस्थी और अवस्थी, भारतीय प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2007
3. एस. आर. महेश्वरी, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया, मैकमिलन, नई दिल्ली, 2000
4. रमेश कुमार अरोड़ा (संपादक), इंडियन एडमिनिस्ट्रेशन: परसेपसन्स एण्ड पर्सपेक्टिव्स, आलेख प्रशासन, जयपुर, 1999
5. पद्मा रामचन्द्रन, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 1995

इकाई –5

विकास की अभिकर्ता (पंचायती राज संस्थाएँ) और स्थानीय स्वायत्त सरकार (पंचायतों) के रूप में भारत में स्थानीय सरकार

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 पंचायती राज का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य
5.3 सामुदायिक विकास कार्यक्रम
5.4 राष्ट्रीय प्रसार सेवाएँ
5.5 बलवंत राय मेहता समिति प्रतिवेदन (1957)
5.6 अशोक मेहता समिति प्रतिवेदन (1978)
5.7 सर्वोदयी विचारक और पंचायती राज
5.8 दलविहीन प्रजातांत्रिक व्यवस्था
5.9 सर्वोदयी विचारकों के अनुसार पंचायती राज के कार्य
5.10 लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा
5.11 पंचायती राज संस्थाओं के कार्यों के सम्बन्ध में बलवंत राय मेहता समिति के विचार
5.12 73वे संविधान संशोधन अधिनियम के अनुसार पंचायती राज के कार्य
5.13 सारांश
5.14 शब्दावली
5.15 अभ्यास प्रश्न
5.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.0 उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य पाठकों को पंचायती राज संस्थाओं के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, इनकी विकास यात्रा, सर्वोदयी विचारकों के पंचायती राज के संबंध में विचार, पंचायती संस्थाओं के कार्य, अवधारणा, और पंचायती राज के कार्यों के विषय में बलवंत राय मेहता समिति के विचारों से अवगत करवाना है। इस पाठ को पढ़ने के पश्चात् आप

1. पंचायती राज के इतिहास का वर्णन कर सकेंगे,
2. पंचायती राज के विषय में सर्वोदयी विचारकों के विचारों की व्याख्या करने में सक्षम हो जाएंगे,
3. ग्रामीण विकास और प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा और बलवंत राय मेहता तथा अशोक मेहता के पंचायती राज संबंधी योगदान का सविस्तार वर्णन कर पाएंगे।

5.1 प्रस्तावना

भारत देश भौगोलिक दृष्टि से अत्यधिक विशाल होने के साथ– साथ संसार का सबसे बड़ा प्रजातांत्रिक देश है। इस देश की अपनी अनूठी विशेषता है कि यहां पंचायती राज व्यवस्था को अपना कर प्रत्यक्ष प्रजातंत्र को साकार रूप दिया है। वास्तविकता में देखा जाए तो पंचायती राज भारतीय प्रजातंत्र में ग्रामीण स्थानीय प्रशासन की आधारशिला है। भारत के आसपास चारों और तानाशाही शासन और सैनिक शासन विद्यमान है। इन सबके बीच में भारत में पंचायती राज व्यवस्था का अस्तित्व अद्भुत और अनोखा ही कहा जाएगा। ग्राम सभा और ग्राम पंचायत का अस्तित्व प्राचीन काल से चला आ रहा है। लोक प्रशासन के विद्यार्थियों के लिए पंचायती राज की जानकारी उपयोगी होने के साथ–साथ आवश्यक जान पड़ती है, क्योंकि इन्हीं संस्थाओं के माध्यम से प्रजातंत्र को पुष्पित व पल्लवित किया जा सकता है।

इस अध्याय में सर्वप्रथम पंचायती राज के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य का वर्णन है, इसी के अन्तर्गत बलवंत राय मेहता समिति और अशोक मेहता समिति के विचारों की जानकारी प्रस्तुत की गई। पंचायती राज का कोई भी विचार सर्वोदयी दर्शन की जानकारी के बिना अधूरा ही है। इस कमी की पूर्ति का इस पाठ में विनम्र प्रयास किया गया है। प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा की यहाँ व्याख्या की गई है। पंचायती राज के कार्यों के विषय में बलवंत राय मेहता के विचारों से पाठकों को अवगत कराया गया है।

5.2 पंचायती राज का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

भारतवर्ष की अधिकांश जनसंख्या सदैव ही गांवों में निवास करती रही है। आज भी लगभग तीन–चौथाई जनसंख्या भारत के ग्रामों में ही निवास करती है। ग्रामीण स्थानीय संस्थाएं भारतीय लोक प्रशासन का अभिन्न अंग रही हैं। ऐतिहासिक स्रोतों से यह ज्ञात होता है कि ग्राम पंचायतें अति प्राचीन काल से ही यहां विद्यमान रही है " ऋग्वेद, वाल्मीकि रामायण और महाभारत में 'पंच' और 'पंचायत' शब्दों का उल्लेख है। समाज के पाँच मुख्य व्यक्तियों की संस्था होने के कारण यह पंचायत कहलाती थी। कालान्तर में इसकी सदस्य संख्या में अन्तर आ गया। ग्यारहवीं शताब्दी में 'नीतिसार' में शुक्राचार्य ने इनका उल्लेख किया है। बौद्धकाल में भारत में अनेक छोटे–छोटे गणराज्य विद्यमान थे। यह माना जाता कि इस काल में इन संस्थाओं का महत्व अत्यधिक बढ़ गया था। जातक कथाओं से इस बात की पुष्टि होती है। ऐतिहासिक स्रोत इस बात के गवाह है कि मौर्यकाल में देश में एक शक्तिशाली सत्ता की स्थापना हो चुकी थी, लेकिन गांवों की स्वायत्तता अप्रभावित रही है। उस समय भी पंचायतों की शक्तियाँ और क्रियाकलाप ज्यों के त्यों बने रहे।

मध्यकाल में मुगल शासकों ने भारतीय लोक प्रशासन में भारी फेरबदल किया था, लेकिन यह सम्पूर्ण फेरबदल राज्य स्तरीय प्रशासन और नगरीय स्थानीय प्रशासन तक ही सीमित रहा। **जदुनाथ सरकार** ने भारतीय इतिहास का वर्णन करते हुए कहा कि **'मुगल लोग केवल नगरीय व्यक्ति होकर रह गए थे'** उन्होंने ग्रामीण स्थानीय प्रशासन को नहीं छूआ, वह

जैसा पहले चल रहा था, यथावत वैसा ही चलता रहा। यह अवश्य है कि जाति पंचायतें इस काल की देन हैं

अंग्रेजी शासन काल में भारतीय लोक प्रशासन में भारी फेरबदल किया गया। अंग्रेजों ने धीरे–धीरे पंचायतों के समस्त कृत्य अपने अधिकार में ले लिये। नवीन न्यायिक व्यवस्था ने पंचायतों के न्यायिक कृत्य छीन लिये। अंग्रेजों ने अपने शासन के प्रारम्भिक काल में योजनाबद्ध तरीके से पंचायतों को नष्ट करने का प्रयत्न किया। बाद के शासनकाल में अंग्रेजों ने पंचायतों के पुनर्जीवन के प्रयत्न किये। पुनर्जीवन के प्रयासों के पीछे दो कारण थे– पहला तो यह कि बाढ़, अकाल, महामारी जैसी आपात स्थिति से निपटते समय उन्हें केन्द्रीय शासन और ग्रामजनों के मध्य एक कड़ी की नितान्त आवश्यकता महसूस होती थी, जिसकी पूर्ति के लिए उन्होंने पंचायतों को बेहतर समझा। दूसरा कारण यह था कि गांधी जैसे स्वतंत्रता संग्राम में जुटे लोगों द्वारा ग्रामराज्य की अवधारणा पर बल दिया। ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं की अंग्रेज स्वयं स्थापना करके स्वतंत्रता के संग्राम में जुटे प्रहरियों के महत्व को समाप्त करना चाहते थे। अत: इन्हीं सब बातों के फलस्वरूप अंग्रेजों ने बाद के शासनकाल में पंचायतों की स्थापना और सुदृढ़ीकरण पर ध्यान केन्द्रित किया।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय संविधान के अनुच्छेद 40 में राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में ग्राम पंचायतों के लिए प्रावधान किया गया। चालीसवें अनुच्छेद के अनुसार : "राज्य तथा उनको इतनी शक्तियाँ एवं सत्ता सौंपेगा कि उनको स्वायत्त सरकार की इकाईयों के रूप में कार्य करने के योग्य बना सकें।" वर्तमान पंचायती राज व्यवस्था पर भारत में आयोजित दो कार्यक्रमों, यथा सामुदायिक विकास कार्यक्रम और राष्ट्रीय विस्तार सेवाओं का बहुत बड़ा योगदान है, इस कारण से इन कार्यक्रमों पर सविस्तार चर्चा करना समीचीन होगा।

5.3 सामुदायिक विकास कार्यक्रम

भारत में नीति निर्माताओं की यह मान्यता थी कि वर्षो तक रहे विदेशी शासन के फलस्वरूप भारतीय ग्रामीण जन अपनी पहल की भावना (initiative) खो चुके थे और हर छोटी व बड़ी आवश्यकता की पूर्ति के लिए सरकार की ओर ताकते थे। उनकी मनोदशा बच्चों वाली हो चली थी। जिस प्रकार बच्चे शतप्रतिशत अपनी जरूरतों की पूर्ति के लिए माता–पिता पर निर्भर रहते हैं उसी प्रकार ग्रामीण जन सरकार पर निर्भर रहते थे। 'गूंगे–बहरे पशुओं' की भांति उनका व्यवहार हो चला था। नेतृत्व की भावना और पहल करने का मुद्दा ही नहीं रहा था। जिस प्रकार एक भेड़ जिधर चले दे उसी तरफ अन्य भेड़ें बिना सोचे–समझे चल देती हैं ऐसी उनकी मनोवृत्ति बन गई थी। अपनी स्थानीय छोटी–मोटी समस्याओं पर गंभीरता से सोचने और उसे दूर करने की प्रवृत्ति का लोप हो गया था।

ग्रामीणजन के मानसिक परिवर्तन के उद्देश्य से नीति निर्माताओं ने 'सामुदायिक विकास कार्यक्रम' को अपनाने का निर्णय लिया। भारत में इसका शुभारम्भ 2 अक्टूबर, 1952 को किया गया। इसके तहत प्रथम चरण में 55 विकास खण्डों की स्थापना की गई। आगे चलकर इसे सम्पूर्ण भारत में लागू किया गया। इस कार्यक्रम का मूल दर्शन था "from Government

motivated self–help to self motivated self–help” अर्थात् प्रारम्भिक दौर में सरकार की पहल से विकास के लिए प्रयत्न किए जाएंगे और शनै: शनै: ग्रामीण जनता में जैसे –जैसे पहल करने की प्रवृत्ति विकसित होगी तब सरकारी पहल धीरे– धीरे कम होते–होते समाप्त होकर सारे कार्य ग्रामीण जनता की पहल और प्रेरणा से सम्पन्न होने लग जाएंगे। एक प्रकार से सामुदायिक विकास कार्यक्रम ग्रामीण जनता में मानसिक परिवर्तन लाने के लिए प्रारम्भ किया गया था।

प्रथम पंचवर्षीय योजना के अनुसार ; “सामुदायिक विकास कार्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण जीवन के सम्पूर्ण स्तर को ऊँचा उठाने हेतु स्थानीय मानवशक्ति को क्रियाशील बनाने का एक संयुक्त और समन्वित प्रयत्न है। " समाजशास्त्री ए.आर.देसाई के अनुसार – " सामुदायिक विकास योजना एक ऐसी प्रणाली है जिसके द्वारा पंचवर्षीय योजना ग्रामों के सामाजिक और आर्थिक जीवन के रूपान्तरण की प्रक्रिया प्रारम्भ करना चाहती है। " भारत सरकार के प्रकाशन " इण्डिया 1959 " में लिखा था – “सामुदायिक विकास कार्यक्रम स्वयं ग्रामवासियों द्वारा आयोजित एवं कार्यान्वित किया हुआ एक अनुदान प्राप्त कार्यक्रम है जिसमें सरकार तो केवल तकनीकी मार्गदर्शन और वित्तीय सहायता प्रदान करती है। "

कृषि विकास सम्बन्धी कार्य, यातायात एवं संचार के साधनों का विकास, स्वास्थ्य, सफाई एवं चिकित्सा संबंधी कार्य, शिक्षा प्रसार, कुटीर उद्योग एवं बेकारी निवारण, कारीगरों, किसानों, पंचों एवं ग्रामीण नेताओं के प्रशिक्षण की व्यवस्था, ग्रामवासियों के लिए सस्ते और अच्छे मकानों की व्यवस्था, और सामाजिक कल्याण सामुदायिक विकास कार्यक्रम का हिस्सा बने।

5.4 राष्ट्रीय प्रसार सेवाएँ

"सामुदायिक परियोजनाओं के साथ–साथ उनके एक वर्ष उपरान्त 2 अक्टूबर 1953 को पुनर्निर्माण का एक अन्य कार्यक्रम आरम्भ किया गया था, जिसे ' राष्ट्रीय प्रसार सेवा' का नाम दिया गया। "इन सेवाओं की कल्पना ' अधिक अन्न ऊपजाओ जाँच समिति' की संस्तुति के आधार पर की गई थी। एक प्रकार से सामुदायिक विकास कार्यक्रम को प्रभावी तरीके से लागू करने के उद्देश्य से कुछ प्रशासनिक फेरबदल करके ढांचे का निर्माण किया और उसे राष्ट्रीय प्रसार सेवा नाम दिया गया। इसके अन्तर्गत प्रत्येक खण्ड स्तर पर लगभग एक दर्जन विषय विशेषज्ञ उपलब्ध कराए गए जिन्हें प्रसार तकनीक की सहायता से विकास को स्थाई रूप प्रदान करने का दायित्व सौंपा गया। इस विशेषज्ञ टीम का मुखिया खण्ड विकास अधिकारी को बनाया गया।

"सामुदायिक विकास प्रशासन का उत्तरदायित्व नियमित नौकरशाही को ही सौंपा गया था, किन्तु विद्यमान संगठनात्मक ढांचे में हेर–फेर कर दिया गया था। हेर–फेर करने में ध्यान इस बात का रखा गया था कि ग्रामीण पुनर्निर्माण के एकीकृत कार्यक्रम पर जो बल दिया गया था वह उसमें प्रतिबिम्बित हो सके और कार्य–नीति को समुचित महत्व दिया जा सके। "खण्ड विकास अधिकारी, विभिन्न विषयों से जुड़े हुए प्रसार अधिकारी और ग्राम–स्तरीय कार्यकर्ता,

जिसे आगे चलकर ग्राम सेवक के नाम से सम्बोधित किया जाने लगा, इन दोनों कार्यक्रमों की नवीनता माने जाते हैं।

5.5 बलवंत राय मेहता समिति प्रतिवेदन –1957

सामुदायिक विकास कार्यक्रम और राष्ट्रीय प्रसार सेवाओं के फलस्वरूप कुछ भौतिक उपलब्धियाँ अवश्य प्राप्त हुई किन्तु ग्रामीण लोगों के मानसिक सोच में कोई परिवर्तन नजर नहीं आया। ग्रामीणजन परतंत्र प्रशासन और स्वतंत्र भारत के प्रशासन में कोई अन्तर महसूस नहीं कर सके। नौकरशाही के हाथों में कार्यक्रमों की बागडोर के कारण जनता में नेतृत्व और हुपीलकदमी की भावना लेशमात्र भी नहीं बढ़ सकी। इन कार्यक्रमों की असफलता के कारण विरोधी दलों द्वारा ही आलोचना नहीं की गई वरन् स्वयं कांग्रेस के नेतागण भी इसकी कमियों के कारण इन कार्यक्रमों को समाप्त करने पर जोर डालने लगे। सरकारी, अर्द्धसरकारी और निजी संगठनों द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदनों में इन कार्यक्रमों की खामियों का खुलासा किया गया। सामुदायिक विकास कार्यक्रम और राष्ट्रीय विस्तार सेवाओं के कारण सरकार द्वारा संसद के भीतर और संसद के बाहर तीखी आलोचनाओं का सामना करना पड़ा। इन आलोचनाओं के परिणामस्वरूप आयोजन परियोजना समिति द्वारा बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में सामुदायिक परियोजनाओं और राष्ट्रीय प्रसार सेवा के अध्ययन दल की नियुक्ति वर्ष 1957 में की गई। इस दल को आमतौर पर बलवंत राय मेहता समिति के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इस समिति ने अपना अध्ययन प्रतिवेदन दिसम्बर 1957 में प्रस्तुत किया जिसमें निम्न प्रमुख खामियों को उजागर किया:–

(1) सामुदायिक विकास कार्यक्रम और राष्ट्रीय प्रसार सेवा दोनों ही योजनाएँ ग्रामीण जनता में पहल की भावना जाग्रत करने में विफल रही थीं।

(2) पंचायत स्तर के ऊपर की स्थानीय निकायों ने सामुदायिक कार्यक्रम के सम्बन्ध में कोई उत्साह नहीं दिखाया था, और

(3) पंचायतों ने भी सामुदायिक विकास कार्यक्रम में कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं निभायी थी।

बलवंत राय मेहता समिति की यह मान्यता थी कि इन दोनों योजनाओं में जनता की सक्रीय भागीदारी नहीं होने के कारण ये विफल रही हैं। समिति का कहना था कि जब तक ग्रामीण जनता को सीधे या उनके प्रतिनिधियों के माध्यम से इन कार्यक्रमों के निर्माण और उनके क्रियान्वयन में सम्मिलित नहीं किया जाता तब तक ग्रामीण जनता में पहल की भावना जागृत नहीं हो सकती। इन कार्यक्रमों से जनता में अपनत्व की भावना तभी जागृत हो सकेगी जब उनकी सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की जाएगी। इस समिति की राय थी कि यह सुनिश्चित करने के लिए 'प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण' (Democratic Decentralisation) किया जाना अतिआवश्यक है।

बलवंत राय मेहता समिति के मत में प्रजातंत्र की परिकल्पना यह है कि केवल ऊपर से ही शासन न चलाया जाये बल्कि स्थानीय प्रतिभाओं का विकास किया जाये। यह तभी संभव है जबकि वे (स्थानीय लोग) सक्रियता से सरकार के कार्यों में भाग ले सकें। इसे ही लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण कहते हैं। स्पष्ट है कि जिस राज्य में सत्ता का जितना अधिक विस्तार होगा वह

उतना ही अधिक लोकतांत्रिक विस्तार होगा, वह उतना ही अधिक लोकतांत्रिक लोक कल्याणकारी राज्य होगा। सर्वसाधारण के पास ज्यादा अधिकार आयेंगे तब वे अपना कर्तव्य पालन भी पूर्ण निष्ठा से करेंगे। विकेन्द्रित व्यवस्था में जनता अपने विकास एवं कल्याण सम्बन्धी कार्यों के लिए शासन पर निर्भर न रहकर स्वयं अपने साधनों से कार्य पूरा करने के लिए तत्पर रहेगी, क्योंकि उसके पास सत्ता होगी, अधिकार होंगे और उनके उपयोग करने की शक्ति भी उनके पास होगी। अत: विकेन्द्रीकरण और प्रजातंत्र में घनिष्ठ संबंध हैं तथा दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।

बलवंत राय मेहता समिति ने सुझाव दिया कि शीघ्र ही लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण किया जाए। ग्रामीण क्षेत्रों में लोकतांत्रिक आधार पर प्रतिनिधि संस्थाओं की स्थापना करके विकास की समस्त बागडोर उन्हें सौंपना अति आवश्यक है। इस समिति का यह कहना था कि इन संस्थाओं का आधार वैधानिक हो, ये संस्थाएं वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित हों, और उनके पास समुचित कार्यपालिका शक्तियाँ और पर्याप्त स्रोत हों। सरकार द्वारा इन संस्थाओं पर अत्यधिक नियन्त्रण नहीं रखा जाना चाहिए। इन्हें समुचित परामर्श तथा मार्गदर्शन मिलता रहना चाहिए ताकि ये गलतियाँ नहीं करें। ये प्रतिनिधि संस्थाएं स्थानीय विकास के लिए स्थानीय जनता की इच्छा–अभिव्यक्ति के यन्त्र का कार्य करें।

बवलतं राय मेहता समिति ने इन संस्थाओं की स्थापना के लिए एक प्रारूप प्रस्तुत किया जिसमें ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, खण्ड स्तर पर पंचायत समिति और जिला स्तर पर जिला परिषद के गठन का सुझाव दिया है। इस समिति की राय थी कि लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का सर्वाधिक लाभ तभी मिलेगा जब तीनों ही स्तरों पर पंचायतीराज संस्थाओं का गठन कर एक साथ कार्य प्रारम्भ किया जाए। इस समिति की मान्यता थी कि सम्पूर्ण ग्रामीण विकास के कार्य इन प्रजातांत्रिक संस्थाओं को सौंपा जाना श्रेयस्कर रहेगा। समिति का कहना था कि इन संस्थाओं में से प्रत्यक्ष निर्वाचन केवल ग्राम पंचायतों का किया जाए और पंचायत समिति और जिला परिषद का गठन अप्रत्यक्ष प्रणाली से किया जाए। पंचायत समिति को प्रमुख विकास की एजेंसी मानते हुए इसे अधिक से अधिक वित्तीय साधन और सहायता, अधिक कार्मिक वर्ग और ज्यादा तकनीकी सहायता उपलब्ध करायी जाये। जिला परिषद का कार्य मात्र जिले की ग्राम पंचायतों, पंचायत समितियों और सरकारी तथा गैर सरकारी संस्थाओं में सहयोग, समन्वय, पर्यवेक्षण और नियंत्रण का दायित्व रहे।

जिला स्तर तक के इस स्थानीय क्षेत्र में लोकतंत्र को पहुंचाकर वहां के लोगों में स्थानीय अभिरूचि व लगन पैदा किये जाने के सम्बन्ध में प्रतिवेदन में कहा गया कि जब तक हम ऐसी प्रतिनिधात्मक व लोकतंत्रीय संस्था को ढूँढ नहीं निकालते या उसका निर्माण नहीं कर लेते जो यह देखने के लिए कि स्थानीय बातों पर व्यय होने वाला धन स्थानीय आवश्यकताओं, अभिरूचि, स्थानीय देख–रेख तथा स्थानीय सतर्कता उपलब्ध कर सके, जब तक हम उसमें पर्याप्त शक्ति निहित नहीं करते और उसके लिए आवश्यक वित्त की व्यवस्था नहीं करते, तब तक हम विकास के क्षेत्र में कभी भी न तो स्थानीय अभिरूचि उत्पन्न कर सकेंगे और न स्थानीय उत्साह ही उत्तेजित कर सकेंगे।

राष्ट्रीय विकास परिषद् ने बलवंत राय मेहता समिति की सिफारिशों को सन 1958 में स्वीकार कर लिया था। अगस्त 1958 में आंध्र प्रदेश में कुछ क्षेत्रों में इस योजना को परीक्षण के तौर पर प्रारम्भ किया। इस परीक्षण के नतीजे सामने आये भी नहीं थे कि राजस्थान राज्य में 2 अक्टूबर 1959 को नागौर में द्वीप प्रज्वलित कर इस त्रि–स्तरीय व्यवस्था का श्रीगणेश किया गया। थोड़े समय पश्चात आंध्र प्रदेश में भी पूरे राज्य में इसे 1959 में ही लागू कर दिया। अन्य राज्यों में यह व्यवस्था कुछ या अधिक परिवर्तन के साथ 1960–61 में शुरू की गयी। राजस्थान और आंध्र प्रदेश में लगभग इस त्रि–स्तरीय योजना को उसी रूप में प्रभावी बनाया गया जिस रूप में बलवंत राय मेहता समिति ने सुझाया था।

आगे चल कर राज्य सरकारों दारा अपने–अपने राज्य में पंचायती राज व्यवस्था का अध्ययन करने के उद्देश्य से समय–समय पर कुछ समितियों की नियुक्ति की गई। संघीय सरकार द्वारा भी वित्तीय प्रशासन, इनकी निर्वाचन व्यवस्था, ग्राम सभा आदि के अध्ययन के उद्देश्य से पृथक–पृथक समितियों का गठन किया गया। जनता पार्टी के सत्ता में आने पर संघीय स्तर पर 1977 में अशोक मेहता समिति का गठन किया गया, जिसने अपना प्रतिवेदन अगस्त 1978 में सरकार को प्रस्तुत किया। इस समिति दारा सम्पूर्ण पंचायती राज व्यवस्था के अध्ययन के पश्चात् प्रस्तुत प्रतिवेदन की महत्वपूर्ण बातों की यहाँ जानकारी प्राप्त करना उचित रहेगा।

5.6 अशोक मेहता प्रबन्ध समिति प्रतिवेदन (1078)

इस समिति ने 'प्रजातांत्रिक प्रबन्ध की विचाराधारा' का प्रतिपादन किया। इसके प्रतिवेदन में यह स्वीकार किया गया कि बलवंत राय मेहता समिति की सिफारिशों के फलस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में कुछ विकास अवश्य हुआ है, लेकिन अभी भी विकास के और उच्च सोपान पर प्रगति के उद्देश्य से बहुत कुछ किया जाना शेष है। बलवंत राय मेहता समिति का विकेन्द्रीकरण की पद्धति से आगे बढ़ते हुए 'प्रजातांत्रिक प्रबंध व्यवस्था' (Democratic Management System) को अंगीकार करना है। बलवंत राय मेहता समिति द्वारा सुझाई त्रि–स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था के स्थान पर अशोक मेहता समिति ने द्वि–स्तरीय व्यवस्था की पुरजोर सिफारिश की। अशोक मेहता समिति ने अपने प्रतिवेदन में यह स्वीकार किया कि 'पंचायती राज की कहानी उतार–चढ़ावों की कहानी है जो तीन चरणों से होकर गुजरी है। सन् 1958 से 1964 तक विकास का चरण,1965 से 1969 तक ठहराव का चरण और 1969 से 1977 तक पतन का चरण।

अशोक मेहता समिति का मानना था कि – आमतौर पर पंचायती राज संस्थाओं का काम निराशाजनक रहा है और उसके पीछे कमियाँ और विफलताएँ रही हैं। इन संस्थाओं में समाज के आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से दबदबे वाले लोग हावी रहे हैं जिसके कारण कमजोर वर्गो तक लाभ नहीं पहुंच पाया है। राजनीतिक गुटबंदी के कारण भी उनके कामकाज में विकृति आई है और विकास कार्य अवरूद्ध या कमजोर हुआ है। भ्रष्टाचार, अकुशलता, नियमों की अवहेलना, दैनिक कामकाज में राजनीतिक हस्तक्षेप, गुटबंदी, स्वार्थ–प्रेरित कार्यवाही, सेवा भावना

की जगह अधिकारों पर कब्जा, इन तमाम कारणों से औसत ग्रामीण के लिए पंचायती राज की उपयोगिता सीमित हो कर रह गई हैं।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, अशोक मेहता समिति ने पंचायती राज की त्रि–स्तरीय के स्थान पर द्वि–स्तरीय मॉडल अपनाने की वकालत की। समिति की मान्यता थी कि पंचायत समितियां समुचित रूप से प्रभावशाली नहीं हैं, इस कारण इनके स्थान पर मण्डल पंचायतों का गठन करना श्रेयस्कर रहेगा। मण्डल पंचायतें एक प्रकार से पंचायत समिति और जिला परिषद के बीच की संस्था हैं। इस प्रकार अशोक मेहता समिति की यह मान्यता थी कि मण्डल पंचायतें और जिला परिषदों का गठन करके विकास कार्यों को द्रुतगति प्रदान की जा सकती हैं। इस समिति ने ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के प्रबंधन पर जोर देते हुए कहा कि केन्द्र और राज्यों के मध्य शक्तियों के वितरण की वर्तमान योजना पर पृथक से विस्तृत विचार किया जाना उचित होगा। महाराष्ट्र के पंचायती राज की सफलता से प्रभावित होकर अशोक मेहता समिति ने 'महाराष्ट्र मॉडल' की तरफ झुकाव दर्शाया है। दूसरी ओर इसे पंचायत समिति के स्थान पर मण्डल पंचायत अधिक उपयुक्त जान पड़ी। पंजाब के 'डवलपमेंट क्लस्टर्स' (Development Clusters) की उपलब्धियों से प्रभावित होकर इसे स्वीकार करने की बात कही है। इस समिति ने यह माना कि भारतीय किसान पहले की तुलना में समृद्ध हुए हैं और ग्रामीण क्षेत्रों में काफी मात्रा में विकास हुआ है। विकास की द्रुतगति प्राप्त करने के लिए इस समिति ने कहा कि हमें एक ऐसे मण्डल केन्द्र की स्थापना करना है जहां किसानों को खाद, बीज, ट्रैक्टर के कलपुर्जे तथा किसानों के मतलब के अन्य साधन एक ही जगह मिलने लगें। इससे किसानों को बहुत सहूलियत होगी। किसानों को एक–एक चीज के लिए इधर–उधर भटकना नहीं पड़ेगा। इस समिति ने जहां पंचायत समिति की भूमिका को नकारा है, वहीं ग्रामीण स्तर पर 'प्रबंध–व्यवस्था' विकसित करने पर जोर दिया है।

एक और महत्वपूर्ण सिफारिश अशोक मेहता समिति की थी कि पंचायती राज संस्थाओं में राजनैतिक दलों को सक्रिय भागीदारिता का निर्वाह करना चाहिए। यह पहला सरकारी दस्तावेज था जिसने दलविहीन व्यवस्था के स्थान पर स्पष्ट तौर पर दलीय भागीदारी पर जोर दिया। सिद्धराज ढढ्ढा ने, जो कि इस समिति के सदस्य थे, इस समिति में अपनी मिति दर्ज करायी। सर्वोदयी विचारक होने के कारण सिद्धराज को राजनैतिक दलों की सक्रीय भागीदारिता अनुपयुक्त लगी और साथ ही वे ग्राम सभा को अधिक सशक्त बनाना चाहते थे वो भी समिति ने नहीं माना।

अशोक मेहता समिति प्रतिवेदन राजनीति की भेंट चढ़ गई। जनता पार्टी, जिसने इस समिति की नियुक्ति की थी, थोड़े समय के पश्चात ही विघटित हो गई और उसके स्थान पर कांग्रेस दल की सरकार बनने के कारण इस प्रतिवेदन के संघीय सरकार ने ठंडे बस्ते में डाल दिया। आगे चलकर हेगड़े के नेतृत्व में बनी कर्नाटक सरकार ने मूल रूप से और कस में तेलगूदेशम् सरकार ने राजनैतिक उद्देश्य के कारण मिश्रित रूप से पंचायती राज के 'मण्डल मॉडल' को अपनाया। कर्नाटक में थोड़े समय पश्चात कांग्रेस के सत्ता में आने पर द्वि–स्तरीय के स्थान पर पुनः त्रि–स्तरीय पंचायती राज को अपना लिया गया।

5.7 सर्वोदयी विचारक और पंचायती राज

भारत में प्रचलित सर्वोदया विचारों की जड़े मोहनदास करमचन्द गांधी के शासन संबंधी दर्शन में पायी जाती हैं। जय प्रकाश नारायण और विनोबा भावे ने इसे नवीन रूप प्रदान करने के साथ–साथ समुचित विस्तार भी प्रदान किया। वास्तविकता में देखा जाये तो यह अवधारणा वास्तविक पंचायती राज से कहीं अधिक विस्तृत है। यह हमारे सम्पूर्ण राजनैतिक–प्रशासनिक ढ़ाचे से संबंध रखती है। गांधी और जय प्रकाश की मान्यता यह थी कि संसदात्मक व्यवस्था भारत के लिये अनुपयुक्त है। गांधी ने तो संसद के लिये बड़े कड़वे शब्दों का प्रयाग किया। उन्होंने संसद को **"बांझ औरत"** की संज्ञा देते हुए कहा कि हो सकता है यह व्यवस्था ब्रिटेन के लिये माफिक हो लेकिन भारत को पंचायती राज व्यवस्था को ही अंगीकार करना चाहिए। गांधी–जेपी–विनोबा की यह दृढ़ मान्यता थी कि हमारी राजनैतिक व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन करते हुए इसकी पुन: संरचना करनी चाहिए। पंचायत को मौलिक इकाई के रूप में अपनाते हुए हमारे देश को 'सामुदायिक प्रजातंत्र' (Communitarian Democracy) अंगीकार करना श्रेयस्कर होगा। किसान को अपने खेत पर प्राप्त उपज पर हक होगा लेकिन जमीन ग्रामीण समुदाय की होगी जिसे बेचने का हक किसान को प्राप्त नहीं होगा।

जयप्रकाश नारायण का यह कहना था कि भारत का वर्तमान राजनैतिक प्रशासनिक ढ़ांचा उल्टा है। यह एक ऐसा पिरामिडनुमा है जो नीचे से नुकीला और ऊपर से चौड़ा है। किसी भी देश का राजनैतिक ढांचा नीचे से विस्तृत और ऊपर से नुकीला होना चाहिए। उनकी मान्यता यह थी कि जिस ढ़ांचे का आधार नुकीला होगा वह अत्यन्त कमजोर होता है और वह कदापि सफल नहीं हो सकता है। जेपी यह कहते थे कि भारत की वर्तमान व्यवस्था ताश के पत्ते के पहले के अनुरूप है जो जरा से हवा के झौंके से ढह जाएगा।

गांधी–जयप्रकाश नारायण–विनोबा का यह कहना था कि भारत के संविधान का निर्माण करते समय हमें पंचायत को अधिक से अधिक कार्य और शक्तियां सौंपते हुए ऊपर की तरफ बढ़ना चाहिए। भारत में पंचायत को आधारभूत इकाई मानकर इसे सबसे पहले कार्य सौपें। उसके बाद खण्ड स्तर पर कार्य और शक्तियाँ सौपें। जो कार्य ग्राम और खण्ड स्तर पर नहीं हो सकते हैं उन्हें जिला स्तर पर वितरित करें। उसके बाद राज्य स्तर की इकाई को कार्य और शक्तियाँ सौंपी जानी चाहिए। शेष बचे हुए कार्य और शक्तियों का हस्तान्तरण संघीय स्तर पर संसद को किया जाना चाहिये। जबकि हुआ इससे उलट है। भारतीय संविधान निर्माताओं ने सर्वप्रथम संघीय स्तर पर संसद को कार्य और शक्तियां सौंपी हैं। उसके बाद राज्य स्तर पर कार्य और शक्तियां प्रदान की हैं। शेष बची खुची शक्तियां और कार्य स्थानीय स्वायत संस्थाओं को प्रदान करने का कार्य किया है।

स्वतंत्रता संग्राम के समय में भारत के लिये गांधी ने स्वतंत्र भारत में 'राम राज्य' की कल्पना की थी जिसमें आर्थिक–सामाजिक समानता होगी और ऊंच– नीच रहित व्यवस्था होगी। राम राज्य में सबसे प्रमुख ईकाई ग्राम होगा जिसमें समस्त नागरिकों को राजनैतिक – प्रशासनिक कार्यों में दिन– प्रतिदिन हिस्सेदारी निभानी है। सर्वोदयी विचारक यह मानते हैं कि चार साल या पांच साल में एक बार अपने जनप्रतिनिधियों का निर्वाचन कर लेना भर समुचित

नहीं है। वर्तमान व्यवस्था में सामान्य नागरिक द्वारा अपने प्रतिनिधियों का निर्वाचन करने के अलावा कोई भागीदारी नहीं है, जो उचित जान नहीं पड़ता है। नागरिक को शासन में कदम–कदम पर हिस्सा लेने के प्रचुर अवसर प्राप्त होने चाहिए।

सर्वोदयी विचारक यह चाहते हैं कि प्रत्येक गांव की एक मजबूत और सशक्त 'ग्राम सभा' होनी चाहिये जिसे अपनी ग्राम पंचायत का निर्वाचन करने का अधिकार होना चाहिए। ग्राम पंचायत के चुनाव प्रत्यक्ष प्रणाली से सर्वसम्मति द्वारा किये जाय। खण्ड या ब्लॉक स्तर पर संस्था का निर्माण अप्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली से किया जाए। इसी प्रकार जिला, राज्य और संघीय स्तर पर व्यवस्थापिका का निर्वाचन अप्रत्यक्ष आधार पर हो। कहने का अभिप्राय यह है कि भारत में एक ऐसी संघीय व्यवस्था हो जिसमें ग्राम सभा से लेकर संघीय स्तर पर संसद में ऑर्गेनिक (Organic) संबंध हों और उसमें प्रत्यक्ष निर्वाचन मात्र ग्राम पंचायत का हो और उससे ऊपर की समस्त इकाईयों का गठन अप्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली द्वारा किया जाना चाहिए।

महात्मा गांधी के अनुसार साधन और साध्य में अभिन्न सम्बन्ध है। उत्तम लक्ष्य की प्राप्ति के लिये उत्तम मार्ग को अपनाना होगा। गांधी के अनुसार हमारे लक्ष्य श्रेष्ठ हों। साथ ही साथ हमारे साधन भी पवित्र एवं उत्तम होने चाहिए। गांधीवादी सत्य और अहिंसा पर बल देते है। गांधी जी व्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रबल समर्थक थे। उनका कहना था कि मेरे लिये स्वराज्य का अर्थ अपने देश के दरिद्र से दरिद्र व्यक्ति की स्वतंत्रता है। वे राज्य के विरूद्ध व्यक्तियों को अधिकार देने के हिमायती थे।

गांधीवादियों का लक्ष्य एक सर्वोदयी समाज की स्थापना करना है जिसमें जाति, धर्म, ऊँच–नीच, अमीर–गरीब का भेद–भाव नहीं होगा। इस समाज में सभी नागरिकों को अपनी सर्वांगीण उन्नति करने का समान अवसर प्राप्त होगा, पूंजीवाद और आर्थिक शोषण का अन्त हो जाएगा। व्यक्तियों की भौतिक उन्नति के साथ–साथ नैतिक उन्नति पर भी गांधीवादी समुचित जोर देते हैं।

5.8 दल विहीन प्रजातांत्रिक व्यवस्था

राजनैतिक दलों के द्वारा प्रजातांत्रिक व्यवस्था के संचालन में दोष उत्पन्न हो जाते हैं। इस कारण से सर्वोदय विचारक दल विहीन व्यवस्था की वकालत करते हैं। सामान्यतया प्रजातांत्रिक व्यवस्था का संचालन राजनैतिक दलों की सहायता से किया जाता है। लेकिन दलों के मध्य संघर्ष की स्थिति और सत्ता प्राप्ति के लिये मुकाबला इतना अधिक बढ़ जाता है कि लोकहित और राष्ट्रीय हित पिछड़ जाता है एवं दलीय हित में कार्य करने के कारण दलीय व्यवस्था अहितकर सिद्ध होने लगती है। शासन प्रजातांत्रिक के स्थान पर दलीय अधिनायक तंत्र का रूप ग्रहण करने लगता है। सर्वोदय विचारकों की यह मान्यता है कि समाज के विविध व्यक्तियों व व्यक्ति समूहों के हित परस्पर विरोधी नहीं होते तथा उन्हें विरोधी मानकर उनमें सामंजस्य स्थापित करने के बहाने बहुमत के आधार पर लोकमत को जानकर उसके आधार पर समाज की व्यवस्था का संचालन दलीय लोकतंत्र के माध्यम से करना उचित नहीं है। पारस्परिक कृत्रिम विरोध की दशा में लोकमत के निर्धारण के लिये उस राजनीति का सहारा लिया जाता है जिसका आधार बहुमत है तथा जिसके अन्तर्गत बहुमत को लोकमत तथा दलीय नीति को

लोकनीति मानकर उसके आधार पर सम्पूर्ण समाज की समस्याओं को राज्य के माध्यम से हल करने का प्रयत्न किया जाता है। इस प्रकार बहुमत के आधार जो राजनीति अस्तित्व में आती है उसमें लोकतंत्र, लोकतंत्र न रहकर दलतंत्र बन जाता है। ऐसे में विनोबा के शब्दों में "चुनाव का विषवृक्ष" बहुमत पर आधारित राजनीति के सहचर के रूप में समाज में पारस्परिक विष फैलाता है। चुनाव के विषय में विनोबा कहते है : यह जो चुनाव होता है उसका अपना अलग धर्म विचार है। उसके तीन सिद्धान्त है : आत्मस्तुति, पर–निन्दा और मिथ्याभाषण।

सर्वोदयी विचारक बहुमत तथा अल्पमत के आधार पर बने हुए राजनैतिक दलों के माध्यम से लोकतंत्र के क्रियान्वयन को समाज की समष्टि की दृष्टि से हानिकर मानते हैं। विनोबा के शब्दों में : यह जो अल्पसंख्या और बहुसंख्या का विचार चला है उसका परिणाम बहुत भयंकर हो रहा है। इससे करोड़ों रूपया खर्च हो रहा है। इसमें गरीबों का कोई स्थान नहीं है। इसके कारण जाति भेद तो इतना बढ़ गया है कि कम्यूनिस्ट कम्द्युनिष्टों में जो चीज नहीं थी, उनमें भी वह आ गई है।

सर्वोदयी विचारक वर्तमान दलीय आधार पर प्रजातंत्र के संचालन का विरोध करते हैं। उनके अनुसार समाज का संचालन बहुमत पर आधारित दलीय लोकतंत्र की व्यवस्था के स्थान पर सर्वसम्मति पर आधारित दल विहीन लोकतंत्र के द्वारा होना चाहिए। वर्तमान प्रकार के लोकतंत्र में विविध दलों का निर्माण समाज सेवा के नाम पर होता है, लेकिन इस आधार पर जब राजनैतिक दल बन जाते है तो दलीय सेवा मुख्य और समाज सेवा गौण हो जाती है। प्रत्येक समस्या को अलग– अलग दल अपने अनुसार रंगने का प्रयत्न करते हैं। समस्त निर्णय दलहित में लेने की प्रवृत्ति बनती है। दलविहीन लोकतंत्र का संचालन वस्तुतः तभी संभव है जब लोग बिना दलबंदी के लोक सेवा करने के आदी हों।

सर्वोदयी विचारक दल विहीन व्यवस्था के विकास के लिये गांवों के पुनर्निमाण की राय देते हैं। विनोबा का विचार है कि लोकतंत्र को दल विहीन स्वरूप प्रदान करने के लिये ग्राम सभाओं का संगठन निर्दलीय आधार पर किया जाए। उनके विचार से प्रत्येक कुटुम्ब से एक–एक व्यक्ति को सम्मिलित करके एक सभा का गठन किया जाए और इस सभा द्वारा एक समिति की नियुक्ति करके दिन–प्रतिदिन के कार्यों का संचालन करना चाहिए। ग्रामों का इस आधार पर पुनर्गठन करने के साथ–साथ ग्रामों को इस बात का पूर्ण अधिकार होना चाहिए कि वे अपना शासन प्रबंध वे स्वयं करे और उसके लिये ऊपर के स्तर पर निर्मित सरकार का मुंह न ताकें।

5.9 सर्वोदयी विचारकों के अनुसार पंचायती राज के कार्य

जैसा कि अन्यत्र बताया जा चुका है कि सर्वोदयी विचारक पंचायतों को अधिकाधिक अधिकार और कर्तव्य सौंपने के पक्षधर हैं और वे चाहते हैं कि भारतीय संविधान में सरकार को अधिकार, शक्तियां और कर्तव्यों का वितरण करते समय पंचायतों से प्रक्रिया प्रारम्भ करके ऊपर की संस्थाओं की ओर बढ़ना चाहिये और केन्द्रीय या संघीय स्तर पर गठित पंचायत को कम से कम अधिकार और कर्तव्य सौंपे जाने चाहिये। गांधीजी के अनुसार "ग्राम पंचायत को अपने क्षेत्र के सम्पूर्ण कार्यों के सम्पादन का अन्तिम अधिकार होगा।.... गांधीजी ने इनके संगठन व अधिकारों की कोई स्पष्ट रूपरेखा प्रस्तुत नहीं की, तथापि उनके ही विचारों के आधार पर श्री

एस.एन. अग्रवाल ने (S.N. Agarwal : Gandhian Constitution for free India) जिला, प्रान्त व केन्द्रीय इकाईयों के अधिकार व संगठन का विवेचन किया है।

गाँधी जी लिखते हैं : "ग्राम स्वराज के संबन्ध में मेरा विचार यह है कि वह एक पूर्ण गणराज्य हो, जो अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिये अनेक पड़ोसियों से पूर्णत: स्वतंत्र होगा। गांव का सम्पूर्ण प्रशासन पंचायतों के हाथों में होगा।...... विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका तीनों प्रकार की शक्तियां गांव की पंचायतों के पास होंगी। "

गांधी के इन विचारों के अध्ययन से यही झलकता है कि पंचायती राज को वे स्थानीय स्वायत्त संस्था के रूप में मानते थे और इन संस्थाओं को विकास के अभिकरण के रूप में उन्होंने इन संस्थाओं की कल्पना नहीं की थी। सर्वोदयी विचारकों के अनुसार पंचायती राज संस्थाओं को अत्यधिक स्वायतता प्रदान की जानी चाहिए और बाह्य हस्तक्षेप को वे सभी अनुचित मानते हैं। गांधीजी तो ग्राम स्वराज्य को पूर्ण गणराज्य के रूप में देखना चाहते थे।

महात्मा गांधी ने कहा था कि स्वराज में समाज की प्रमुख इकाई परिवार होगा और राजनैतिक व्यवस्था की प्रमुख इकाई ग्राम होगा। यह "ग्राम गणराज्य" सभी आन्तरिक मामलों में पूर्णरूप से आत्मनिर्भर होगा और कुछ मामलों में पर निर्भर होगा। यह व्यवस्था पिरामिड़ीय नहीं होगी जिसमें आधार शिखर को बनाये रखता है, बल्कि यह व्यवस्था समुद्रीय होगी जिसमें कि व्यक्ति ही इसका प्रमुख केन्द्र होगा। इसमें बाहरी धाराएं अन्दरूनी धाराओं को ओर शक्ति प्रदान करेगी और बदले में वे उनसे शक्ति भी ग्रहण करेंगी।

5.10 लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा

लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था उसे कहा जाता है जिसमें जनता स्वयं प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष विधि से अपने जनप्रतिनिधियों द्वारा समष्टि रूप से सम्पूर्ण जनता के हित की दृष्टि से शासन करती है, न कि किसी समुदाय या वर्ग विशेष के हित की दृष्टि से। लोकतंत्र के जिस आदर्श स्वरूप की बात की जाती है वह व्यवहार में उतारना कठिन है, क्योंकि लोकतंत्र का क्रियान्वयन सामान्यतया राजनैतिक दलों के माध्यम से होता है लेकिन दलीय राजनीति व जनसाधारण की अज्ञानता– अनभिज्ञता के कारण लोकतंत्र सम्पूर्ण जनता के हित के स्थान पर वर्ग विशेष के हित का साधन बन कर रह जाता है, सम्पूर्ण जनता में निहित संप्रभुता का उपभोग सत्तारूढ़ दल के शीर्षस्थ नेता अथवा कर्मचारीवृंद के हाथों में आ जाता है और सामाजिक समानता के बजाय सामाजिक विषमता का बोलबाला हो जाता है। लोकतंत्र की इस व्यावहारिक कठिनाई को दूर करने की दृष्टि से विकेन्द्रित लोकतंत्र और दल विहीन शासन व्यवस्था की सिफारिश की जाती है। यहां लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण और दल विहीन व्यवस्था पर चर्चा करना प्रासंगिक होगा।

सर्वश्रेष्ठ प्रजातांत्रिक व्यवस्था उसे कहा जाएगा जिसमें अधिकाधिक विकेन्द्रीकरण हो। जनतंत्र में राज्य की सर्वोच्च सत्ता औपचारिक रूप से जनता में निहित होनी चाहिए। शासन के दिन प्रतिदिन के कार्यों में आम जनता की सक्रीय भागीदारी होना इसकी प्रथम आवश्यकता है। मिल कहते हैं कि "सामाजिक राज्य की सब आवश्यकताओं को पूरी तरह से पूर्ण करने वाला शासन वही हो सकता है जिसमें सम्पूर्ण जनता भाग ले। "लोकतंत्र का आदर्श रूप वह होगा

जिसमें आम जनता का योगदान सतत, व्यापक, सक्रिय और क्रियात्मक हो। इकबाल नारायण का कहना है कि "..... लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण शासन कार्य में जनता के योग की एक ऐसी व्यवस्था है, जिसमें यह योग समय– समय पर– दो, तीन, चार या पांच वर्ष बाद राष्ट्रीय या प्रादेशिक सरकार के लिये प्रतिनिधियों का चुनाव कर लेने तक ही सीमित नहीं रहता, वरण उसमें उस योग का रूप अपने स्थानीय क्षेत्र, ग्राम या नगर के सार्वजनिक मामलों के दिन प्रतिदिन के प्रबंध में सक्रिय भाग लेने का होता है। विकेन्द्रित लोकतंत्र, लोकतंत्र का वह रूप है जिसमें सार्वजनिक मामलों का प्रबंध कार्य चोटी के लोगों तक सीमित नहीं रहता, वरण उसका संचालन, प्रबंध–कार्य में सक्रिय भाग लेने वाली जनता की उन स्थानीय इकाईयों द्वारा होता है, जो न्यूनाधिक रूप से छोटी–छोटी सरकारें होने के कारण शासन की वास्तविक शक्ति एवं लोकतांत्रिक विचारों व लोकप्रिय कार्यों के केन्द्र के रूप में कार्य करती है। "

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण 'शक्ति के प्रत्यायोजन' (Delegation of power) और 'प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण ' (Administrative Decentralisation) से भिन्न होने के कारण ही लोकतांत्रिक शब्द के साथ विकेन्द्रीकरण शब्द का प्रयोग किया जाता है। कुछ लोग यह प्रश्न करते है कि जब लोकतंत्र शब्द में विकेन्द्रीकरण निहित है तो इसके साथ पृथक से विकेन्द्रीकरण शब्द का क्या औचित्य है? इसका उत्तर यही है कि शक्ति के प्रत्यायोजन और प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण से भिन्न होने के कारण ही विकेन्द्रीकरण शब्द का प्रयोग किया गया है।

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण से व्यापक है। प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण की अनुपस्थिति में प्रत्येक प्रशासनिक इकाई अपने उच्च स्तर के अधिकारियों के दिशा–निर्देशों का सदैव इन्तजार करते हैं और वे तब तक कुछ नहीं करते जब तक कि ऊपर से आदेश प्राप्त नहीं हो जाते। प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण अपनाए जाने के पश्चात प्रत्येक इकाई निश्चित सीमा तक बिना ऊपर के आदेश या इशारे के इंतजार किये अपना कार्य सम्पन्न कर सकती है। प्रशासनिक इकाईयों को दिन–प्रतिदिन के कार्य में कुशलता बनी रहती है, वे निश्चित सीमा तक बिना समय नष्ट किये अपना कार्य सम्पन्न करते चलते हैं। प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण के मूल में प्रशासनिक कुशलता निहित है जबकि लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का उद्देश्य ही राष्ट्रीय, प्रादेशिक और (विशेषकर) स्थानीय स्तरों पर शासन कार्य में जनता का अधिकाधिक हिस्सा लेने की व्यवस्था किया जाना है। प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण के अन्तर्गत विभिन्न स्तरों पर कार्यरत प्रशासनिक अधिकारियों और कर्मचारियों को मात्र इस बात का अधिकार होता है कि निर्धारित नीति के अन्तर्गत काम करते हुए विभिन्न योजनाओं को अनावश्यक बाह्य हस्तक्षेप के बिना अपने स्वयं के विवेक से कार्यान्वित कर सकें। जबकि लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के अन्तर्गत जनता की विविध स्तरों की प्रतिनिधि संस्थाओं को लोक कल्याण की विविध योजनाओं का निर्माण करने तथा स्वतंत्रतापूर्वक अपनी– अपनी परिस्थितियों के अनुसार उनका क्रियान्वयन करने और संचालन करने का अधिकार होता है। इससे स्पष्ट है कि लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण से व्यापक है।

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण में जनता द्वारा मौलिक उपभोग की व्यवस्था है, प्रशासनिक प्रत्यायोजन केवल प्रशासनिक उपयोगिता की वस्तु है तथा वह नीचे के प्राधिकारियों द्वारा केवल

ऊपर से प्राप्त की हुई शक्ति के उपभोग की व्यवस्था है। शक्ति का प्रत्यायोजन का तात्पर्य किसी उच्चाधिकारी द्वारा निम्न अधिकारी को इस प्रकार का अधिकार देना है कि उसका प्रयोग निम्न अधिकारी अपने स्वयं के अधिकार की तरह नहीं करके मात्र एक प्रदत्त अधिकार की तरह ही करें और यह उच्चाधिकारी के प्रसाद पर्यन्त ही ऐसा कर सकता है अर्थात जब तक उच्चाधिकारी चाहता है तभी तक वह ऐसा कर सकता है। उच्चाधिकारी द्वारा प्रयायोजित शक्ति वापस भी ली जा सकती है। इस संबन्ध में पाल मेयर का कहना हे कि "केन्द्रीय प्रशासन का निर्देश देने तथा निर्णयों को संशोधित करने का अधिकार सुरक्षित रहता।..... केन्द्रीय संगठन सुसम्बद्ध होता है, अर्थात वह उच्च स्तरीय व अधीनस्थ इकाइयों का एक दृढ़ ढांचा होता है। "जबकि लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण केन्द्रीय मामलों का प्रबंधन अपने आप करने के लोकतंत्रीय सिद्धान्त के क्रियान्वयन को व्यापक करके उसे स्थानीय क्षेत्र तक लागू करता है। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण में स्पष्टत: अधिकार की भावना निहित है जबकि प्रशासनिक प्रत्यायोजन में उच्च स्तरीय प्राधिकरण की स्वेच्छा या रियायत पर निर्भर है, वे जब चाहे प्रत्यायोजित शक्ति को वापस भी ले सकते हैं।

5.11 पंचायती राज संस्थाओं के कार्यों के संबंध में बलवंत राय मेहता समिति के विचार

बलवंत राय मेहता समिति का प्रतिवेदन संभवत: पहला सरकारी दस्तावेज था जिसने स्पष्ट शब्दों में पंचायती राज संस्थाओं को ग्रामीण विकास के संबंध में कार्य और दायित्व सौंपने की पुरजोर सिफारिश की थी। इस समिति की नियुक्ति की पृष्ठभूमि ही कुछ ऐसे थी कि स्वत: पंचायती राज संस्थाओं को अधिकाधिक स्वायत्तता के साथ ग्रामीण विकास दायित्वों को सौंपना उचित समझा। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि भारत सरकार द्वारा संचालित सामुदायिक विकास कार्यक्रम और राष्ट्रीय विस्तार सेवाओं की विफलता के कारणों की जांच करने और उनकी सफलता के लिये उपयुक्त सुझाव सरकार को प्रदान करने के उद्देश्य से ही बलवंत राय मेहता समिति की नियुक्ति की थी। अध्ययन और अनुसंधान के पश्चात इस समिति ने अपने प्रतिवेदन में स्पष्ट शब्दों में यह कहा था कि जब तक केवल नौकरशाह इन कार्यों को करते रहेंगें और उन कार्यों से जनता को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तरीके से नहीं जोडेंगे तब तक इस क्षेत्र में सफलता नहीं मिल सकती है। इस दिशा में सुधार के उद्देश्य से बलवंत राय मेहता समिति ने अपने प्रतिवेदन में यह पुरजोर सिफारिश की थी कि ग्रामीण पुनरूत्थान के उद्देश्य के लिये त्रि–स्तरीय जन प्रतिनिधि संस्थाओं का गठन करके उन्हें समुचित साधन उपलब्ध कराए जायें और उन्हें स्वायत्तता के साथ विकास प्रशासन सम्बन्धी अधिकार सम्पन्न बनाते हुए कर्तव्य सौंपे जाने चाहिये। इससे स्पष्ट हो जाता है कि बलवंत राय मेहता समिति ने ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं अर्थात पंचायती राज संस्थाओं को विकास के अभिकरण के रूप में कल्पना करते हुए इनकी स्थापना के लिये स्पष्ट सिफारिशें प्रस्तुत की है।

बलवंत राय मेहता समिति के प्रतिवेदन प्रस्तुत हो जाने के पश्चात समस्त अध्ययन दलों और समितियों ने बलवंत राय नेहता समिति के अनुरूप ही पंचायती राज संस्थाओं का

स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं के साथ–साथ इन्हें विकास के अभिकरण मानते हुए ही अपनी सिफारिशें प्रस्तुत की हैं[133]

5.12 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के अनुसार पंचायती राज के कार्य

जैसा कि अशोक मेहता समिति ने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है कि सत्तर के दशक में पंचायती राज व्यवस्था मृत प्राय होने लगी थी, इसे पुनःजीवित करने का प्रयत्न राजीव गांधी ने 64वें संविधान संशोधन अधिनियम के माध्यम से किया था, लेकिन राज्य सभा में समुचित समर्थन नहीं जुटा पाने के फलस्वरूप राजीव गांधी का यह प्रयास विफल ही रहा। नरसिम्हा राव के प्रधानमंत्रित्व काल में अप्रैल 1992 में 73वें संविधान संशोधन के द्वारा पंचायती राज व्यवस्था को संवैधानिक दर्जा प्राप्त हो सका। इस संशोधन द्वारा भारतीय संविधान में 11वीं अनुसूची जोड़कर पंचायती राज संस्थाओं को सौंपे जाने वाले कार्यों की सूची जोड़ी गई। इस सूची में से कुल 29 कार्य पंचायती राज को राज्य सरकारों द्वारा सौंपे जाने की अपेक्षा की गई है। इन कार्यों को राज्य द्वारा सौंपा जाना अनिवार्य नहीं है, यह राज्यों की स्वेच्छा पर छोड़ा गया है। इस 11वीं अनुसूची में दर्शाये कार्य अग्रलिखित है:–

1. कृषि जिसके अंतर्गत कृषि विस्तार भी है।
2. भूमि विकास, भूमि सुधार का कार्यान्वयन, चकबन्दी और भूमि संरक्षण।
3. लघु सिंचाई, जल प्रबंधन और जल–ग्रहण क्षेत्र का विकास।
4. पशुपालन, डेयरी उद्योग एवं कुक्कट–पालन।
5. मत्स्य उद्योग।
6. सामाजिक वानिकी एवं फार्म वानिकी।
7. लघु वन उपज।
8. लघु उद्योग, जिनके अन्तर्गत खाद्य प्रसंस्करण उद्योग भी है।
9. खादी, ग्रामोद्योग और कुटीर उद्योग।
10. ग्रामीण आवासन।
11. पेयजल।
12. ईंधन और चारा।
13. सड़कें, पुलिया, पुल, नौकायन फेरी, जलमार्ग और अन्य संचार साधन।
14. ग्रामीण विद्युतीकरण, जिसके अन्तर्गत विद्युत का वितरण भी है।
15. अपारंपरिक ऊर्जा स्त्रोत।
16. गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम।
17. शिक्षा, जिसके अन्तर्गत प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालय भी है।
18. तकनीकी प्रशिक्षण और व्यावसायिक शिक्षा।
19. प्रौढ़ और अनौपचारिक शिक्षा।

20. पुस्तकालय।
21. सांस्कृतिक क्रिया कलाप।
22. बाजार और मेले।
23. स्वास्थ्य और स्वच्छता जिनके अन्तर्गत अस्पताल, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र और औषधालय भी है।
24. परिवार कल्याण।
25. महिला और बाल विकास।
26. समाज कल्याण, जिसके अन्तर्गत विकलांगों और मानसिक रूप से मंद व्यक्तियों का कल्याण भी है।
27. दुर्बल वर्गो का और विशिष्टतया, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों का कल्याण।
28. सार्वजनिक वितरण प्रणाली।
29. सामुदायिक परिसम्पत्तियों का अनुरक्षण।

5.13 सारांश

इस तरह भारत जैसे विशाल देश में प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण की दृष्टि से पंचायती राज व्यवस्था को अपनाया गया था। इस व्यवस्था के माध्यम से प्रशासन में जन सहभागिता बढाने तथा नियोजन स्थानीय आवश्यकता के अनुरूप करने तथा उद्देशित लक्ष्यों को प्रभावी रूप में प्राप्त करने का प्रयास किया गया। यद्यपि प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण का विषय भारत के लिए कुछ नया नहीं है परन्तु बलवंत राय मेहता तथा अशोक मेहता समिति की सिफारिश अनुसार पंचायती राज की जो व्यवस्था स्थापित करने का प्रयास किया गया उसके कारण निश्चित ही अधिकांशत: गाँवों में रहने वाले भारतीय जनता को प्रशासन में सहभागिता का अवसर प्राप्त हुआ है।

5.14 शब्दावली

1. **सर्वोदयी :** ऐसी शासन व्यवस्था जिसमें समाज में रहने वाले समस्त नागरिकों को अपनी सर्वांगीण उन्नति करने का समान अवसर प्राप्त होता है। ऐसी व्यवस्था जिसमें सभी का उदय हो।
2. **अधिनायकतंत्र :** जिस व्यवस्था में शासक पर कोई अंकुश या प्रतिबन्ध नहीं होता उसे अधिनायकतंत्र या निरंकुश शासन अथवा तानाशाही कहते हैं। ऐसी शासन व्यवस्था जिसमें एक व्यक्ति या व्यक्ति समूह अपनी मनमानी से कठोरता से शासन करे उसे अधिनायकतंत्र कहा जाएगा।
3. **प्रत्यक्ष प्रजातंत्र :** शासन की वह व्यवस्था जिसमें सम्पूर्ण जनता स्वयं प्रत्यक्ष रूप से बिना एजेण्टों अथवा प्रतिनिधियों के प्रभुसत्ता का प्रयोग करती है।

4. **गणराज्य :** ऐसा राज्य जिसमें समस्त प्राधिकारों का स्रोत लोग या जनता हो और किसी बाह्य प्राधिकारी के प्रति कोई अधीनता नहीं हो। ऐसी शासन व्यवस्था जहां सरकार जनता के द्वारा जनता के लिए बनाई गई हो।
5. **प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण :** ऐसी शासन व्यवस्था जिसमें जनता को शासन–कार्यों में अधिकाधिक भाग लेने का अवसर हो, शक्ति का हस्तान्तरण ऊपर से नीचे की ओर होता हो और स्थानीय स्वायत्त–शासन की इकाईयाँ अपने प्रशासन का स्वयं प्रबन्ध करती हों।

5.15 अभ्यास प्रश्न

1. स्थानीय स्वायत शासन संस्था और विकास अभिकरण के रूप में पंचायती राज पर एक निबंध लिखिये।
2. प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण से क्या अभिप्राय हैं? बलवंत राय मेहता और अशोक मेहता समिति प्रतिवेदनों की प्रमुख सिफारिशों का वर्णन कीजिये।
3. पंचायती राज के विषय में सर्वोदया विचारकों के विचारों से अवगत कराते हुए इनकी कमियां बताइये।
4. भारतीय संविधान में ग्यारहवीं अनुसूची में वर्णित पंचायती राज के कार्यों की व्याख्या कीजिये। क्या आज पंचायती राज संस्थाएं इन समस्त कार्यों को सफलतापूर्वक कर रही हैं?

5.16 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. इकबाल नारायण, भारतीय राजनीतिक विचारक, ग्रन्थ विकास, जयपुर, 2005
2. इकबाल नारायण, राजनीति शास्त्र के मूल सिद्धान्त, रतन प्रकाशन मन्दिर, आगरा, 1975
3. एस.एस.सिंह, लेजिस्लेटिव फ्रेमवर्क ऑफ पंचायती राज इन इण्डिया, इंटेलेक्चुवल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1993
4. सूरत सिंह एवं मोहिन्दर सिंह (सम्पा.) रूरल डवलपमेन्ट इन दी, ट्वेंटी फस्ट सेंचूअरी, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन्स प्रा.लि, नई दिल्ली, 2006
5. गिरवर सिंह, भारत में पंचायती राज, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2004
6. महात्मा गांधी, ग्राम स्वराज, नवजीवन प्रकाश मन्दिर, अहमदाबाद, 2003
7. जय प्रकाश नारायण, पंचायती राज एंड द बेसिस ऑफ इण्डियन पोलिटि, 1962
8. जय प्रकाश नारायण, द्वर्ड्स ए न्यू सोसायटी, 1958
9. आर.वी.जथार, इवोल्यूशन ऑफ पंचायती राज इन इण्डिया, 1964

इकाई–6

केन्द्रीय स्तर पर सामाजिक कल्याण प्रशासन

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 भारतीय संविधान तथा सामाजिक न्याय

6.3 नीति नियोजन व सांगठनिक संरचना

- 6.3.1 सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय
- 6.3.2 महिला एवं बाल विकास विभाग
- 6.3.3 राष्ट्रीय महिला आयोग
- 6.3.4 अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग
- 6.3.5 केन्द्रीय समाज कल्याण मण्डल

6.4 सारांश

6.5 शब्दावली

6.6 अभ्यास प्रश्न

6.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

6.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य सामाजिक प्रशासन का भारतीय संदर्भ में विषय तथा क्रियाओं के रूप में अर्थ,परिभाषा व उद्देश्य स्पष्ट करना है। केन्द्रीय स्तर पर महिला एवं बाल कल्याण के विभिन्न कार्यक्रमों और नीति– नियोजन तथा इनके क्रियान्वयन से जुड़े प्रमुख अभिकरणों के गठन, कार्यों एवं भूमिका का वर्णन एवं विश्लेषण करना है।

6.1 प्रस्तावना

वर्तमान समय में विकासशील देशों में सामाजिक उत्थान एवं कल्याण प्रमुख प्राथमिकता है। इस प्राथमिकता को कार्यरूप में रूपान्तरित करने के लिए प्रत्येक राष्ट्र अपनी परिस्थितियों एवं संसाधनों के अनुरूप व्यूह रचना का निर्माण करते हैं, स्वाभाविक है सामाजिक कल्याण क्षेत्र सरकारी नीति–नियोजन में प्रमुख स्थान रखता है।

भारतीय संदर्भ में सामाजिक सुधार एवं कल्याण एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। भारतीय संविधान में उल्लेखित प्रावधानों एवं सरकारी नीति–नियोजन से यह स्पष्ट होता है कि सरकार सामाजिक न्याय के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वचनबद्ध है।

भारतीय संदर्भ में सामाजिक न्याय के प्रमुख आयाम निम्नलिखित है–

1. अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों का सामाजिक, शैक्षणिक तथा आर्थिक उत्थान।
2. महिला जागृति एवं अधिकारिता।

3. अन्य पिछड़े वर्ग का उत्थान।
4. अपाहिज वर्ग को सामाजिक सुरक्षा सेवाएं एवं उनका पुर्नवास।
5. बाल वर्ग की पर्याप्त सुरक्षा।
6. वृद्ध लोगों के लिए पर्याप्त सामाजिक सुरक्षा।
7. समाज में व्याप्त कुरूतियों का उन्मूलन।
8. भारतीय समाज में एक ऐसे सामाजिक वातावरण का निर्माण जो सम्पूर्ण विकास के लिए उत्प्रेरक बन सकें।

6.2 भारतीय संविधान तथा सामाजिक न्याय

भारतीय संविधान के विभिन्न प्रावधानों में सामाजिक न्याय के लिए नीति–निर्देशन एवं अन्य पर्याप्त व्यवस्थाओं का प्रावधान है–

अनुच्छेद 14– किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं किया जायेगा।

अनुच्छेद 15 (1)– किसी भी व्यक्ति के साथ धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद 15(3) – महिलाओं और बच्चों के लिए विशेष प्रावधान किए जा सकेंगे।

अनुच्छेद 16 – राजकीय पदों पर नियोजन या नियुक्ति के मामले में सभी नागरिकों को समान अवसर मुहैया कराये जायेंगे।

अनुच्छेद 39 (ए) – सरकारें ऐसी नीतियां बनायेंगी जिनसे कि पुरूषों एवं महिलाओं को समान रूप से अपनी आजीविका के लिए समुचित साधन सुनिश्चित हो सकें।

अनुच्छेद 39 (डी) – पुरूषों एवं महिलाओं, दोनों को ही समान कार्य के लिए समान वेतन मिले।

अनुच्छेद 39 (क) – न्याय को प्रोत्साहन के लिए सरकारें कानूनों, योजनाओं तथा अन्य तरीकों से समान अवसर और मुक्त कानूनी सहायता के आधार पर यह सुनिश्चित करेगीं कि किसी भी नागरिक को आर्थिक या अन्य किसी असमर्थता के कारण न्याय से वंचित न होना पड़े।

अनुच्छेद 42 – सरकार इस बात के पुख्ता इंतजाम करेगी कि कार्य और प्रसूति के मामले में उचित और मानवीय माहौल सुनिश्चित हो सके।

अनुच्छेद 46 – सरकार, समाज के कमजोर वर्ग के शैक्षणिक और आर्थिक हितों को विशेष ध्यान देकर प्रोत्साहित करेगी और उन्हें सामाजिक अन्याय तथा सभी प्रकार के शोषण के मामलों में संरक्षण देगी।

अनुच्छेद 47 – सरकार अपने नागरिकों के पोषण तथा उनके रहन–सहन के स्तर को उठायेगी तथा नागरिक स्वास्थ्य की स्थिति में सुधार लायेगी।

अनुच्छेद 51 (ए) (ई) – सरकार भारत के लोगों में भाईचारे की भावना और सदभाव को प्रोत्साहित करेगी तथा महिला की गरिमा को आघात पहुंचाने वाली परम्परा को अस्वीकार करेगी।

अनुच्छेद 243 (डी) (4) – सरकार, प्रत्येक पंचायत में प्रत्यक्ष चुनाव के जरिए कम से कम एक तिहाई सीटे आरक्षित करेगी जिसमें अनुसूचित जाति एवं जनजाति से संबंधित महिला के लिए आरक्षित सीटें भी शामिल होगी। ये सीटे पंचायत के विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों में रोटेशन प्रणाली के अनुसार आवंटित होंगी।

अनुच्छेद 243 (डी) (4) – पंचायतों के सभापति पदों की कुल संख्या में से एक तिहाई पद स्तर पर महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे।

अनुच्छेद 243 (टी) (8) – नगरपालिकाओं में प्रत्यक्ष चुनाव के जरिए सीटों पर आरक्षण के मामलों में भी यही तरीका अपनाया जायेगा।

अनुच्छेद 243 (टी) (4) – नगरपालिकाओं के सभापति पद के मामले में सीटों का आरक्षण विधानसभाएँ तय करेगी।

6.3 नीति–नियोजन व सांगठनिक संरचना

सामाजिक न्याय से संबंधित नीति नियोजन एवं कार्यक्रमों के प्रबन्धन हेतु केन्द्रीय स्तर पर कार्यरत प्रशासनिक तंत्रों के दायित्वों एवं गठन का वर्णन करने का प्रयास किया जा रहा है जो कि निम्न प्रकार से है -

4.3.1 केन्द्रीय सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय

4.3.2 केन्द्रीय महिला एवं बाल विकास विभाग

4.3.3 राष्ट्रीय महिला आयोग

4.3.4 केन्द्रीय समाज कल्याण मण्डल

4.3.5 राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग

6.3.1 सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय

सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गो, आदिवासियों, निशक्तजनों, भाषायी अल्पसंख्यकों, नशा कुप्रवृत्तियों तथा कुसंगजन के शिकार एवं अन्य असहाय व्यक्तियों के कल्याण एवं विकास के लिए देश में प्रमुख मंत्रालय 'सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय' के रूप में स्थापित है। भारत सरकार का यह मंत्रालय सामाजिक कल्याण से संबंधित राष्ट्रीय नीतियों तथा कार्यक्रमों के निरूपण, क्रियान्वयन तथा नियन्त्रण के लिए जिम्मेदार होता है।

यह मंत्रालय भारत सरकार की प्रशासनिक संरचना में पिछले तीन दशकों में हुए परिवर्तनों का परिणाम है। स्वतन्त्रता के समय समाज कल्याण से संबंधित किसी प्रकार का पृथक विभाग या मंत्रालय संघीय स्तर पर कार्य नहीं कर रहा था। समाज कल्याण तथा असहाय व्यक्तियों की सहायता से संबंधित कार्य स्वैच्छिक संगठनों द्वारा ही सम्पादित होते थे। समाज कल्याण से संबंधित कार्यों को सुगमतापूर्वक संचालन हेतु सर्वप्रथम 1964 से संघ स्तर पर पृथक विभाग बनाने के प्रयास प्रारम्भ किए गए। गृह, शिक्षा, श्रम एवं रोजगार, उद्योग, स्वास्थ्य, वाणिज्य तथा नगरीय विकास मंत्रालयों से समाज कल्याण संबंधित कार्य लेकर 14 जून, 1964 को "सामाजिक सुरक्षा विभाग" की स्थापना की गई। इस विभाग के कार्यक्षेत्र में सामाजिक सुरक्षा, सामाजिक कल्याण, पिछड़ा वर्ग तथा खादी एवं हस्तकला के कार्य संबंधित

थे। इसके बाद 1966 जनवरी में सामाजिक सुरक्षा को पहले से आवंटित कार्य पुन: शिक्षा, वाणिज्य, श्रम तथा रोजगार मंत्रालयों को दे दिए गए तथा इस विभाग का नाम "समाज कल्याण विभाग" रख दिया गया। सन् 1980 में अलग से पुन: समाज कल्याण मंत्रालय की स्थापना की गई तथा 1983–84 में पुन: इस मंत्रालय को नाम बदलकर समाज एवं महिला कल्याण मंत्रालय का नाम दिया गया।

1984 में सरकारी नीतियों को त्वरित गति से कुशलतापूर्वक क्रियान्वित करने के लिए भारत सरकार के मंत्रालयों तथा विभागों में व्यापक परिवर्तन किए गए। इसी क्रम में "समाज एवं महिला कल्याण मंत्रालय" से "महिला तथा बाल विकास विभाग" पृथक करके मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अधीन कर दिया गया तथा समाज एवं महिला कल्याण मंत्रालय की 25 सितम्बर 1985 में समाज कल्याण मंत्रालय का नाम दिया गया। सामाजिक कल्याण से संबंधित अनेकानेक गतिविधियाँ सरकार के अल्प मंत्रालयों के कार्यकलापों से भी संबंधित है। अत: समाज कल्याण से संबंधित विभाग मंत्रालय में बार–बार समयानुकूल प्रशासनिक बदलाव की आवश्यकता महसूस की गई। इसी क्रम में 25मई1998 को कल्याण मंत्रालय का नाम "सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता" मंत्रालय कर दिया गया। इस मंत्रालय की वर्तमान संरचना तथा कार्यप्रणाली अनुसूचित जाति विकास, सामाजिक सुरक्षा तथा बाल कल्याण, निशक्तजन कल्याण, पशु कल्याण तथा वक्फ, अल्पसंख्यकों की रक्षा से संबंधित है।

संगठन

मंत्रीपरिषद् के किसी वरिष्ठ एवं योग्य मंत्री को केन्द्रीय सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्री का दायित्व सौंपा जाता है। यह परम्परा रही है कि सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्री का यह पद किसी महिला अथवा अनुसूचित जाति / जनजाति के वरिष्ठ राजनेता को दिया जाए। कैबिनेट स्तर के सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्री के नियन्त्रण तथा नेतृत्व में यह मंत्रालय कार्य करता है। कैबिनेट मंत्री को उसे कार्यों में राजनीतिक मदद के लिए राज्य मंत्री होता है। आवश्यकता महसूस होने पर प्रधानमंत्री एक उपमंत्री की नियुक्ति भी कर सकते है। समाज कल्याण से संबंधित सभी विधियों, नीतियों, कार्यक्रमों तथा योजनाओं का निरूपण एवं कालान्तर में उनका निष्पादन सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्री के निर्देशन में ही होता है।

सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय का प्रशासनिक प्रमुख एक सचिव होता है जो भारतीय प्रशासनिक सेवाओं का वरिष्ठ अधिकारी होता है। सचिव ही सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्री तथा मंत्रालय के अन्य अधिकारियों के मध्य समन्वय स्थापित करता है। मंत्री को उसके प्रशासनिक कार्यों में मदद सलाह, सूचना उपलब्ध करवाने की पूरी जिम्मेदारी सचिव की होती है। सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता सचिव के अधीन एक अतिरिक्त सचिव तथा चार संयुक्त सचिव तथा एक वित्तीय सलाहकार तथा उनके अधीनस्थ अधिकारी एवं कर्मचारी होते है। संयुक्त सचिवों के अधीन निदेशक, उप सचिव के पद है। इन अधिकारियों के अधीन उप निदेशक, सहायक निदेशक, अनुसंधान अधिकारी, अवर सचिव, अनुभाग अधिकारी तथा लिपिक होते हैं।

केन्द्रीय सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय को कार्य सम्पादन की दृष्टि से वर्तमान में 11 प्रभागों में बाँटा हुआ है जो निम्नलिखित है –

1. प्रशासन प्रभाग
2. वित्त प्रभाग
3. समाज रक्षा प्रभाग
4. प्रेस प्रभाग (योजना, अनुसंधान, मूल्यांकन तथा मॉनिटरिंग)
5. अल्पसंख्यक प्रभाग
6. विकलांग (नि:शक्तजन) कल्याण प्रभाग
7. अनुसूचित जाति प्रभाग
8. पिछड़ी जाति प्रभाग
9. पशु कल्याण प्रभा
10. वक्फ प्रभाग
11. कारा प्रभाग (केन्द्रीय दस्तक ग्रहण संसाधन अभिकरण)

वृहत रूप से यह मंत्रालय पांच ब्यूरों में विभाजित है –

1. संयुक्त सचिव (स्वैच्छिक संगठन, प्रेस तथा मीडिया)
2. संयुक्त सचिव (समाज, रक्षा, प्रशासन तथा पशु कल्याण)
3. संयुक्त सचिव (अल्पसंरव्यक, अनुसूचित जाति, पिछड़े वर्ग तथा वक्फ)
4. वित्तीय सलाहकार (सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता)
5. संयुक्त सचिव (निशक्तजन तथा मुख्य सतर्कता अधिकारी)

(i) सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय को आवंटित विषय

समाज के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विकास से संबंधित कार्य सरकार द्वारा सम्पन्न किए जाते हैं। सामाजिक विकास तथा समाज कल्याण से संबन्धित कार्यों का क्षेत्र व्यापक एवं जटिल है, अत: समाज कल्याण से संबंधित बहुत से कार्य विभिन्न मंत्रालयों तथा विभागों को दिए गए हैं। केन्द्रीय सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय को आवंटित विषयों का विवरण निम्न है –

भाग– 1

यह विषय जो भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची–1 के अन्तर्गत है –

1. भारत–अमेरिका, भारत–इंग्लैण्ड, भारत–जर्मनी, भारत–स्विट्जरलैण्ड और भारत–स्वीडन से दान के रूप में प्राप्त राहत पूर्तियों तथा बिना शुल्क प्राप्तियों से संबंधित करारों का संचालन तथा उनके अन्तर्गत आने वाली पूर्तियों के वितरण से संबंधित मामले।

भाग– 2

निम्नलिखित विषय जो भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची– iii में आते हैं (केवल विधि निर्माण के संबंध में)

2. सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक बीमा उस सीमा को छोड़कर जहां तक वे किसी अन्य विभाग को आवंटित है।

भाग– 3

केन्द्रशासित प्रदेशों के लिए निम्नलिखित विषय जो भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची–II या I के अन्तर्गत आते हैं जहां तक वे केन्द्र शासित प्रदेश से संबंधित है।

3. अक्षम और रोजगार के अयोग्य व्यक्तियों की सहायता और सामाजिक सुरक्षा तथा सामाजिक बीमा से संबंधित उपाय, उस सीमा को छोड़कर जहां तक वे किसी अन्य विभाग को आवंटित है।

भाग– 4 : सामान्य और प्रामाणिक

4. समाज कल्याण, समाज कल्याण नियोजन, परियोजना बनाना, अनुसंधान, मूल्यांकन, सांख्यिकी और प्रशिक्षण।
5. समाज रक्षा संबंधी मामलों में अपराध की रोकथाम और अपराधियों के उपचार से संबंधित संयुक्त राष्ट्र संगठन से प्राप्त संदर्भो पर अन्य देशों के साथ संधियाँ।
6. जरूरतमंद बच्चों और वयोवृद्धों की देखभाल और विकास के लिए संस्थागत और गैर संस्थागत सेवा।
7. शारीरिक और मानसिक रूप से निःशक्तजनों की शिक्षा, पुनर्वास और कल्याण।
8. शारीरिक रूप से नि:शक्त और मंद बुद्धि व्यक्तियों के लिए राष्ट्रीय संस्थान।
9. मानसिक रोगियों का पुनर्वास।
10. राष्ट्रीय दृष्टि बाधितार्थ केन्द्र, जिसमें केन्द्रीय प्रेस मुद्रणालय, देहरादून सम्मिलित है, मूक–बधिर व प्रशिक्षण केन्द्र,आंशिक रूप से बधिर बच्चों का विद्यालय, हैदराबाद, मंदबुद्धि बच्चों का मॉडल स्कूल, नई दिल्ली और अन्य राष्ट्रीय संस्थान।
11. सामाजिक और नैतिक स्वास्थ्य कार्यक्रम।
12. भिक्षावृत्ति, किशोर आवारागर्दी, अपचारिता तथा अन्य केयर (CARE) कार्यक्रम।
13. किशोर अपराधियों की परिवीक्षा।
14. सामाजिक सुरक्षा के सभी मामलों पर अनुसंधान, मूल्यांकन, प्रशिक्षण, सूचना का आदान–प्रदान और तकनीकी मार्गदर्शन जिसमें सुधारात्मक सेवाएँ सम्मिलित है।
15. नशाबन्दी सम्बन्धी सभी मामले।
16. मादक औषधि व्यसन से संबंधित शिक्षा तथा समाज व्यवस्था से संबंधित पक्ष।
17. इस मंत्रालय को आवंटित विषयों से संबंधित पुण्यार्थ और धार्मिक न्यास।
18. इस मंत्रालय को आवंटित विषयों के संबंध में स्वैच्छिक प्रयासों का उन्नयन और विकास।
19. राष्ट्रीय समाज रक्षा संस्थान।
20. भारतीय कृत्रिम अंग निर्माण निगम (एलिम्को), कानपुर।
21. इस सूची में विनिर्दिष्ट विषयों में से किसी से भी संबंधित सभी सम्बद्ध या अधीनस्थ कार्यालय अथवा अन्य संगठन।
22. निम्नलिखित अधिनियमों का प्रशासन –

(1) अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958

(2) बाल अधिनियम, 1960

(3) पशु अत्याचार निवारण अधिनियम, 1950

(4) निःशक्तजन (समान अवसर, अधिकार संरक्षण तथा पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995

(5) किशोर न्याय अधिनियम, 1986 (संशोधित 2000)

23. अनुसूचित जाति, विमुक्ति, घुमन्तु और अर्द्धघुमन्तु और अन्य पिछड़े वर्ग जिनमें ऐसी जातियों और वर्गों के विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ प्रदान करना शामिल है।

24. (क) राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग की रिपोर्ट।

(ख) राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति।

(ग) राष्ट्रीय सफाई कर्मचारी आयोग के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति।

(घ) राष्ट्रीय सफाई कर्मचारी आयोग की रिपोर्ट।

25. अनुसूचित जातियों का विकास

26. (क) केन्द्र सरकार की नौकरियों में अन्य पिछड़े वर्गो को आरक्षण प्रदान करते हुए इन्दिरा साहनी और अन्य बनाम भारत संघ तथा अन्य (मंडल मामला) के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों का क्रियान्वयन।

(ख) राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग अधिनियम, 1993 का प्रशासन।

(ग) राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग वित्त एवं विकास निगम से संबंधित मामले।

27. राष्ट्रीय सफाई कर्मचारी आयोग अधिनियम, 1993 तथा राष्ट्रीय सफाई कर्मचारी वित्त एवं विकास निगम से संबंधित प्रकरण।

28. नि:शक्तजनों के मुख्य आयुक्त तथा राष्ट्रीय निःशक्तजन वित्त एवं विकास निगम के मामले।

29. (क) भाषायी अल्पसंख्यकों के विशेष अधिकारी की नियुक्ति, त्यागपत्र आदि।

(ख) विशेष अधिकारी की रिपोर्ट और

(ग) भाषायी अल्पसंख्यकों से संबंधित मामले।

30. (क) राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम, 1992 तथा राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग से संबंधित मामले तथा आयोग की रिपोर्ट।

(ख) अल्पसंख्यक कल्याण के लिए 15–सूत्री कार्यक्रम तथा धार्मिक अल्पसंख्यकों से संबंधित व अन्य मामले।

(ग) राष्ट्रीय अल्पसंख्यक विकास तथा वित्त निगम तथा अल्पसंख्यकों के लिए अन्य कल्याण योजनाएँ।

31. वक्फ अधिनियम, 1955 (1995 का 43वाँ)

32. निष्क्रांत सम्पत्ति (Evacuee Property) अधिनियम, 1950 (1950 का 31वाँ) के प्रशासन के अन्तर्गत वक्फ सम्पत्तियों से संबंधित मामले।

33. दरगाह ख्वाजा साहेब अधिनियम, 1955 (1966 का 36वाँ) का प्रशासन।

34. एंग्लो–इण्डियन समुदाय का प्रतिनिधित्व।

35. भारतीय पुनर्वास परिषद, भारतीय पशु कल्याण बोर्ड, राष्ट्रीय वक्फ परिषद, पंजाब वक्फ बोर्ड (अम्बाला) तथा मंत्रालय के अन्य अभिकरणों / संगठनों के प्रशासनिक मामले।

वयस्क बधिर प्रशिक्षण संस्थान, हैदराबाद, मंदबुद्धि बच्चों का मॉडल स्कूल तथा आंशिक रूप से बधिर बच्चों के लिए स्कूल को वर्ष 1986 में क्रमशः अली यावर जंग राष्ट्रीय श्रवण निःशक्तजन संस्थान, राष्ट्रीय मानसिक नि:शक्तजन संस्थान, हैदराबाद तथा आंध्र प्रदेश सरकार को अंतरित कर दिया गया है।

(ii) सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय के कार्य तथा कार्यक्रम

सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय के दो प्रकार के कार्य है –

(क) सामान्य कार्य

(ख) विशिष्ट कार्य

(क) सामान्य कार्य

सामान्य कार्यों का विवरण निम्न प्रकार से है –

1. सामाजिक प्रशासन से सम्बद्ध संस्थाओं व संगठनों का नेतृत्व।
2. समाज कल्याण, समाज, रक्षा तथा दलित वर्ग के कल्याण हेतु विधि निरूपण।
3. समाज कल्याण से संबंधित कार्यक्रमों तथा परियोजनाओं का संचालन।
4. संसद में प्रश्नोत्तर हेतु आवश्यक सूचना उपलब्ध करवाना।
5. समाज कल्याण से संबंधित शिक्षा, संचार तथा ज्ञान प्रसार।
6. संबंधित क्षेत्रों में ज्वलन्त समस्याओं पर शोध कार्य।
7. अन्य मंत्रालयों से संबंधित संगठनों के मध्य समन्वय स्थापित करना।
8. .समाज कल्याण से संबंधित कार्यों की प्रगति की मॉनिटरिंग तथा मूल्यांकन।

(ख) विशिष्ट कार्य

इस मंत्रालय के विशिष्ट कार्यों तथा कार्यक्रमों की सूची व्यापक तथा बहुआयामी है। इन गतिविधियों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से है –

1. समाज कल्याण के क्षेत्र में कार्यशील संस्थाओं को प्रशासनिक सहायता उपलब्ध करवाना। समाज कल्याण के क्षेत्र में कार्यरत अनेक निकायों को सहायता, परामर्श, आवश्यक सूचनाएं तथा संसाधन उपलब्ध कराने हेतु उत्तरदायी बनाया गया है। कार्यालय जो निम्न प्रकार से है –

   (क) संवैधानिक तथा वैधानिक आयोग।

   (ख) सार्वजनिक क्षेत्र कम्पनियाँ

   (ग) पंजीकृत सोसाइटिया

   (घ) अधीनस्थ कार्यालय

   (ङ) अन्य

      (i) मौलाना आजाद शिक्षा फाउण्डेशन

(ii) राष्ट्रीय वृद्धजन परिषद

(iii) चाइल्ड लाइन इण्डिया फाउण्डेशन

(iv) स्वलीनता, प्रमस्तिष्कीय पक्षाघात, मन्दबुद्धिता एवं बहु निशक्तजनता के कल्याण राष्ट्रीय न्यास, नई दिल्ली (National Trust for welfare of person with autism, cerebralpalsy mental retardation and multi–disability)

2. सफाई कर्मचारियों और उनके आश्रितों की मुक्ति तथा पुनर्वास की राष्ट्रीय योजना सन् 1992 से संचालित की जा रही है जिससे कि सिर पर मैला ढोने की कुप्रथा समाप्त हो सके और संबंधित वर्ग समाज में सम्मानित जीवन जी सके।
3. विशेष संघटक योजना (Special Component Plan) के माध्यम से कृषि, ग्रामीण विकास, लघु सिंचाई, ग्रामीण विद्युतीकरण, कुटीर उद्योग, आवास, शिक्षा तथा स्वास्थ्य से संबंधित विकास कार्यों को भारत सरकार के 13 अन्य मंत्रालयों के माध्यम से संचालित करता है ताकि ग्रामीण अनुसूचित जातियों का समेकित सामाजिक आर्थिक विकास हो सके।
4. अनुसूचित जाति वित्त एवं विकास निगम के माध्यम से वर्ष 1978–79 से स्वरोजगार, कृषि, व्यवसाय तथा परिवहन संबंधी योजनाएं कार्य कर रही है।
5. राष्ट्रीय अनुसूचित जाति वित्त और विकास निगम की सहायता रो कृषि, बागवानी, पशुपालन, डेयरी, लघु सिंचाई, लघु उद्योग, व्यापार तथा परिवहन आदि क्षेत्रों की योजनाएँ वित्त पोषित करता है। देशभर में निगम के कई क्षेत्रीय कार्यालय भी है।
6. अस्वच्छ कार्यों को सम्पादित करने वालों के बच्चों के लिए सैकण्ड्री पूर्व छात्रवृत्तियाँ इस मंत्रालय द्वारा 50 प्रतिशत सहायता के रूप में राज्य सरकारों को प्रदान की जाती है।
7. अनुसूचित जाति के छात्रों के लिए चिकित्सा, इंजीनियरिंग, पशु चिकित्सा, कृषि तथा पोलीटेक्नीक विषयों पर बुक बैंक योजना के अन्तर्गत वित्तीय सहायता प्रदान करता है।
8. अनुसूचित जाति के उम्मीदवारों के लिए प्रतिवर्ष 30 प्रतिशत राष्ट्रीय समुद्रपारीय छात्रवृत्तियाँ दी जाती है जिससे कि इस वर्ग के उम्मीदवार उच्चतर अध्ययन प्राप्त कर सकें।
9. किसी विदेशी सरकार या संगठन से योग्यता छात्रवृत्ति प्राप्त करने में सफल होने वाले अनुसूचित जाति इत्यादि के उम्मीदवारों को यात्रा अनुदान इस मंत्रालय के द्वारा स्वीकृत किया जाता है।
10. अनुसूचित जाति के बच्चों के लिए अलग– अलग छात्रावास की व्यवस्था मंत्रालय द्वारा की जा रही है।
11. नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम (P.C.R. Act), 1955 तथा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की क्रियान्विति हेतु भारत सरकार का यह मंत्रालय प्रयास करता है।
12. स्वैच्छिक संगठनों को वित्तीय सहायता प्रदान करना।

13. अनुसूचित जाति विकास संबंधी अनुसंधान तथा प्रशिक्षण आयोजित करने वाले विश्वविद्यालयों, संस्थानों, अकादमियों तथा राज्य सरकारों को वित्तीय सहायता प्रदान करता है।
14. डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय सार्वजनिक पुस्तकालय, विभिन्न विश्वविद्यालयों में कार्यरत डॉ. अम्बेडकर पीठें, डॉ. अम्बेडकर समुद्रपारीय फैलोशिप, डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय पुरस्कार तथा हिन्दी तथा अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर की संग्रहित कृतियों से संबंधित आवश्यक कार्य केन्द्रीय सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय के अधीन है।
15. "अन्य पिछड़ा वर्ग' ' के कल्याण से संबंधित कार्य।
16. उच्चतम न्यायालय द्वारा 16 नवम्बर, 1992 को दिए गए निर्णय की अनुपालना में पिछड़े वर्गो को नौकरियों में 27 प्रतिशत आरक्षण देने, आयु सीमा तथा अवसरों में छूट देने जैसे संवैधानिक प्रावधानों को क्रियान्विति करवाने के लिए सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय अन्य मंत्रालयों से प्रतिमाह प्रतिवेदन प्राप्त करता है तथा आवश्यक दिशा–निर्देश जारी करता है। पिछड़े वर्गो के उम्मीदवारों हेतु पूर्व परीक्षा कोचिंग की व्यवस्था भी इसी मंत्रालय के माध्यम से होती है।
17. राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग वित्त एवं विकास निगम से पिछड़ी जातियों के सदस्यों हेतु कृषि, शिल्प पारम्परिक व्यवसाय हेतु वित्तीय सहायता उपलब्ध करवाना।
18. निशक्तजन कल्याण।
19. समाज रक्षा कार्यक्रम।
20. सूचना तथा जन शिक्षा कार्यक्रम।

(ii) मंत्रालय के आदिवासी तथा अनुसूचित जनजातियों के विकास से संबंधित कार्य एवं भूमिका

भारत की कुल जनसंख्या (1991) में से 8.08 प्रतिशत व्यक्ति आदिवासी क्षेत्रों अथवा अनुसूचित जनजातियों से सम्बद्ध हैं। आदिवासी समुदायों की प्रमुख समस्या गरीबी, अंधविश्वास, अशिक्षा, निम्न स्वास्थ्य, सामाजिक रूढ़ियाँ तथा सभ्य समाज व उच्च शक्तिवान वर्गो द्वारा होने वाले शोषण तथा अत्याचार है। आदिवासी क्षेत्रों के कल्याण से संबंधित प्रवर्तित अनेक परियोजनाएं जनजातीय कार्य मंत्रालय के प्रत्यक्ष नियन्त्रण निर्देशन में है। इस क्रम में मंत्रालय द्वारा सम्पादित हो रहे कार्यो का विवरण इस प्रकार है –

(अ) गरीबी उपशमन कार्यक्रम के अन्तर्गत जनजाति परिवारों को आर्थिक सहायता मंत्रालय द्वारा उपलब्ध कराई जाती है।

(ब) आदिवासी उपयोजना (T.S.P) के माध्यम से अनुसूचित जनजातियों के सामाजिक–आर्थिक विकास तथा शोषण के विरूद्ध सुरक्षा प्रदान करने के लिए देश के 18 राज्यों तथा संघ राज्य क्षेत्रों में यह योजना क्रियान्वित हो रही है। इस योजना में इस मंत्रालय को भारत सरकार के 14 अन्य मंत्रालय भी सहयोग देते हैं।

(स) संविधान के अनुच्छेद 175 (1) के अधीन अनुसूचित क्षेत्रों के विकास के लिए जनजाति जनसंख्या की प्रतिशतता के आधार पर अनुदान दिया जाता है। इस सम्बद्ध के नियमानुसार प्रतिवर्ष राज्यपाल अपनी रिपोर्ट केन्द्रीय जनजातीय कार्य मंत्रालय को प्रस्तुत करते हैं।

(द) संविधान की पाँचवीं अनुसूची के पैरा 4 के अनुसार अनुसूचित क्षेत्र वाले प्रत्येक राज्य में आदिवासी सलाहकार परिषदें (20सदस्य) गठित की जाती है जो जनजातीय कार्य मंत्रालय के दिशा–निर्देशों के अनुसार कार्य करते हुए मंत्रालय को सूचना प्रदान करती है।

(य) अनुसूचित जनजाति के लड़के तथा लड़कियों के लिए छात्रावासों की व्यवस्था, भवन निर्माण तथा अन्य वित्तीय सहायता केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रदान की जाती है।

(र) आदिवासी उपयोजना क्षेत्रों में अनुसूचित जनजाति के छात्रों के लिए अनुकूल वातावरण में पढ़ाई सुनिश्चित करने के लिए "आश्रम स्कूल" व्यवस्था केन्द्रीय सहायता के माध्यम से चलाई जा रही है।

(ल) आदिवासी क्षेत्रों में 3–4 माह के व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान करके युवक–युवतियों को स्वावलम्बी बनाने की योजना का क्रियान्वयन केन्द्रीय जनजातीय कार्य मंत्रालय के माध्यम से होता है।

(व) अत्यन्त कम महिला साक्षरता वाले आदिवासी क्षेत्रों में शैक्षिक परिसर योजना के तहत आदिवासी लड़कियों की 5वीं तक पढ़ाई सुनिश्चित कराने के लिए सम्बन्धित राज्य सरकारों तथा गैर सरकारी संगठनों के माध्यम से प्रयास किए जाते हैं।

(श) आदिवासियों दारा उत्पादित या एकत्र लघु वन उत्पाद और अतिरिक्त कृषि उत्पाद मदों का लाभप्रद मूल्य दिलवाने तथा निजी व्यापारियों और बिचौलियों दारा उन्हें शोषण से मुक्त कराने के लिए "भारतीय आदिवासी सहकारी विपणन विकास परिसंघ लिमिटेड (TRIFED) "दारा किया जाता है।

(ष) लघु वन उत्पाद के लिए आदिवासी विकास सहकारी निगमों, लघु वन उत्पाद परिसंघों, वन विकास निगमों तथा अनुसूचित जनजाति में कल्याण के लिए कार्यरत स्वैच्छिक संगठनों को सहायता एवं अनुदान इसी मंत्रालय द्वारा प्रदान किया जाता है।

(स) प्रतिवर्ष गणतंत्र दिवस समारोह को देखने के लिए आदिवासी प्रतिनिधित्वों के स्वागत, भोजन, ठहरने की व्यवस्था, आगरा, फतेहपुर सीकरी तथा ऐतिहासिक स्थलों के भ्रमण, राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, रक्षामंत्री तथा जनजातीय मामलों के मंत्री से उनकी मुलाकात तथा उपहार प्रदान करने से संबंधित कार्यक्रम अब जनजातीय मंत्रालय द्वारा ही सम्पादित होते हैं।

6.3.2 केन्द्रीय महिला एवं बाल विकास विभाग

सामाजिक विकास तथा सुधार को यथार्थ रूप देने में महिलाओं एवं बच्चों का कल्याण तथा संभावित खतरों से उनकी रक्षा करना महत्वपूर्ण आवश्यकता है। 1983–84 में समाज कल्याण मंत्रालय का नाम समाज एवं महिला कल्याण मंत्रालय कर दिया गया था। 1985 में भारत सरकार के मंत्रालयों का पुनर्गठन हुआ। मानव संसाधन विकास मंत्रालय नामक संगठन पहली बार स्थापित हुआ। इस मंत्रालय के अधीन चार विभाग शिक्षा विभाग, युवा कार्य एवं

खेलकूद विभाग, संस्कृति विभाग तथा महिला एवं बाल विकास रखे गये। इस तरह समाज एवं महिला कल्याण मंत्रालय से महिला विकास से संबंधित सभी कार्य लेकर मानव संसाधन मंत्रालय के अधीन बने विभाग "महिला एवं बाल विकास विभाग" को प्रदान कर दिये गये। 15 अक्टूबर, 1999 को भारत सरकार ने एक अधिसूचना द्वारा मानव संसाधन विकास मंत्रालय को दो अलग–अलग मंत्रालयों यथा–मानव संसाधन विकास मंत्रालय तथा युवा कार्य एवं खेल मंत्रालय में विभक्त कर दिया। इस प्रकार, अब मानव संसाधन विकास मंत्रालय में तीन विभाग है –

1. महिला एवं बाल विकास विभाग
2. प्रारम्भिक शिक्षा विभाग
3. माध्यमिक शिक्षा तथा उच्चतर शिक्षा विभाग

(i) संगठन

केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्रालय के एक विभाग के रूप में कार्यरत, महिला एवं बाल विकास विभाग राजनीतिक दृष्टि से एक राज्यमंत्री द्वारा नियन्त्रित है जो केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री (कैबिनेट स्तर) के अधीन कार्यरत होता है। विभाग का प्रशासनिक मुखिया सचिव होता है जो भारतीय प्रशासनिक सेवाओं का वरिष्ठ अधिकारी होता है। सचिव के अधीन चार संयुक्त सचिव कार्यरत है जो अपने–अपने ब्यूरों के प्रमुख हैं। संयुक्त सचिवों के अधीन उपसचिव, निदेशक, सहायक सचिव, संयुक्त निदेशक, सहायक निदेशक तथा अन्य पदाधिकारी कार्यरत हैं। विभाग में चार प्रमुख ब्यूरों कार्यरत है–

1. महिला कल्याण ब्यूरों
2. बालिका तथा सतर्कता ब्यूरों
3. बाल कल्याण तथा पोषाहार ब्यूरों
4. बाल विकास ब्यूरों

इसके अतिरिक्त विभाग में वित्तीय सलाहकार का पद भी विशिष्ट शाखा के रूप में कार्य करता है। अन्य मंत्रालयों तथा विभागों की भांति इस विभाग में भी वित्तीय सलाहकार, बजट, लेखा, वित्त तथा मितव्ययता से सम्बन्धित कार्य करता है। महिला एवं बाल विकास विभाग की आंतरिक प्रशासनिक संरचना निम्नांकित प्रभागों में विभक्त है –

1. समन्वय प्रभाग
2. प्रशासन प्रभाग
3. लेखा एवं बजट प्रभाग
4. बाल विकास प्रभाग
5. शिशु गृह प्रभाग
6. बाल वैश्यावृत्ति प्रभाग
7. खाद्य एवं पोषाहार बोर्ड प्रभाग
8. राष्ट्रीय पोषाहार नीति प्रभाग
9. अनुसंधान प्रभाग

10. राष्ट्रीय महिला कोष प्रभाग
11. प्रशिक्षण प्रभाग
12. कामकाजी, महिला हॉस्टल प्रभाग
13. पोषाहार प्रशासन प्रभाग
14. राष्ट्रीय महिला आयोग प्रभाग
15. लघु ऋण विकास प्रभाग
16. इन्दिरा महिला योजना प्रभाग
17. बालिका प्रभाग
18. केन्द्रीय परियोजना प्रबन्धन प्रभाग (इकाई)
19. प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा प्रभाग
20. बाल कल्याण प्रभाग
21. केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड प्रभाग
22. सतर्कता प्रभाग
23. विश्व खाद्य कार्यक्रम प्रभाग
24. योजना प्रभाग
25. विश्व बैंक प्रभाग

केन्द्रीय महिला एवं बाल विकास विभाग के प्रशासनिक नियन्त्रण में चार स्वायत्तशासी संगठन क्रियाशील है, जो निम्न है –

1. राष्ट्रीय महिला आयोग
2. केन्द्रीय समाज कल्याण मण्डल
3. राष्ट्रीय जन सहयोग एवं बाल विकास संस्थान, नई दिल्ली (NIPCCD)
4. राष्ट्रीय महिला कोष

(ii) महिला विकास कार्यक्रम

महिला एवं बाल विकास विभाग द्वारा सम्पादित की जाने वाली गतिविधियों में मुख्य जोर महिलाओं के सामाजिक तथा आर्थिक सशक्तिकरण, प्रशिक्षण, रोजगार तथा शिक्षा तथा सहायक सेवाओं के संचालन तथा महिला कानूनों एवं अधिकारों के कार्यान्वयन पर होता है। वर्ष 2001 को "महिला सशक्तिकरण वर्ष" के रूप में मनाया गया। 16 अक्सर 1998 को "ग्रामीण महिला विकास तथा शक्ति सम्पन्नता योजना" 1993 में ग्रामीण महिलाओं में बचत की आदत को विकसित करने के लिए "महिला समृद्धि योजना" भी विभाग द्वारा संचालित की जाती है। 2001 में किशोरी शक्ति योजना किशोरियों की शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, आत्मविश्वास, कौशल वृद्धि, मनोरंजन के प्रयास राज्य सरकारों एवं स्वैच्छिक संगठनों की सहायता से किए जा रहे है। 1997 में सर्वोच्च न्यायालय दारा किए गए एक निर्णय के बाद से कार्यस्थलों तथा अन्य स्थानों पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न को रोकने हेतु यह विभाग दिशा–निर्देशों को लागू करवा चुका है।

(iii) राष्ट्रीय महिला सशक्तिकरण नीति (2001)

राष्ट्रीय महिला सशक्तिकरण नीति (2001) महिलाओं के मुद्दों और समस्याओं के विभिन्न पक्षों के समूचे दृष्टिकोण पर आधारित है और इसका उद्देश्य सारे देश में महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए दिशा–निर्देश देना है। देश में महिलाओं द्वारा किए जा रहे प्रयासों और विशेष रूप से भारत में महिलाओं की स्थिति संबंधी समिति की रिपोर्ट के बाद चौथाई शताब्दी से किए जा रहे प्रयासों की नियति है। वर्ष 2001 को सार्क महिला सशक्तिकरण अन्तर्राष्ट्रीय वर्ष घोषित किया गया। भारत के संविधान में प्रस्तावना, मूलभूत अधिकारों, मूलभूत कर्तव्यों और निर्देशक सिद्धान्तों में स्त्री–पुरूष समानता का सिद्धान्त प्रतिस्थापित किया गया है। संविधान न केवल महिलाओं को समानता का अधिकार देता है, अपितु सरकार को महिलाओं के पक्ष में सकारात्मक भेदभाव करने के उपाय करने का अधिकार भी देता है। लोकतांत्रिक राज्य व्यवस्था के ढांचे के अन्तर्गत, हमारे कानूनों, विकास नीतियों, योजनाओं और कार्यक्रमों का लक्ष्य विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं की उन्नति रहा है। पांचवी पंचवर्षीय योजना (1974–78) से महिलाओं की समस्याओं के प्रति दृष्टिकोण में काफी परिवर्तन आया है और अब कल्याण की बजाए विकास पर ध्यान दिया जा रहा है। हाल के वर्षो में महिलाओं की स्थिति निर्धारित करने में महिलाओं के सशक्तिकरण को मान्यता दी गई है। राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना 1990 में संसद के एक अधिनियम के तहत महिलाओं के अधिकारों और कानूनी हकों की रक्षा करने के लिए की गई थी। भारतीय संविधान के 73 वें और 74 वें संशोधनों के तहत महिलाओं के लिए पंचायतों और नगरपालिकाओं के स्थानीय निकायों में आरक्षण का प्रावधान किया गया है जिससे स्थानीय स्तर पर निर्णय लेने के प्रक्रिया में उनकी भागीदारी की मजबूत नींव पड़ी है।

भारत में महिलाओं के समान अधिकार सुरक्षित करने संबंधी विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय इकरारनामों और मानव अधिकारों विलेखों का भी अनुसमर्थन किया है। उनमें 1993 में महिलाओं के प्रति सभी प्रकार के भेदभाव के उन्मूलन संबंधी इकरारनामा (सीड़ो) का अनुसमर्थन सबसे महत्वपूर्ण है।

मैक्सिको कार्य योजना (1975), नैरौबी फारवर्ड लुकिंग स्ट्रेटेजीज (1965), बेइजिंग घोषणा तथा प्लेटफार्म फॉर एक्शन (1995) और 21 वीं शताब्दी के लिए स्त्री–पुरूष समानता, विकास और शांति पर संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा स्वीकृत "आउटकम दस्तावेज" जिसका शीर्षक "बेईजिंग घोषणा और प्लेटफार्म फॉर एक्शन की क्रियान्विति करने के लिए आगे कार्यवाही और पहल" है, का उपर्युक्त अनुवर्ती कार्यवाही के लिए भारत ने बिना किसी शर्त के समर्थन किया है।

इस नीति में नौंवी पंचवर्षीय योजना तथा महिला सशक्तिकरण संबंधी अन्य क्षेत्रीय नीतियों में किए गए वायदों का भी ध्यान रखा गया है।

महिलाओं के आन्दोलन तथा गैर सरकारी संगठनों के दूर–दूर तक फैले जाल से जिसकी आम जनता में जड़े मजबूत है और जो महिलाओं की समस्याओं को पूरी तरह समझते हैं, महिला सशक्तिकरण के लिए पहल करने में काफी प्रेरणा मिली है।

किन्तु फिर भी एक ओर संविधान, नीतियों, योजनाओं, कार्यक्रमों तथा संबंधित व्यवस्थाओं में प्रतिपादित लक्ष्यों और दूसरी ओर भारत महिलाओं की स्थिति की वास्तविकता के

बीच अभी भी काफी अन्तर है। इसका व्यापक विश्लेषण भारत में महिलाओं की स्थिति संबंधी समिति की रिपोर्ट समानता की ओर, 1974 में किया गया है और राष्ट्रीय महिला संदर्शी योजना, 1988 – 2000, श्रमशक्ति रिपोर्ट, 1988 और "प्लेटफार्म फॉर एक्शन" पाँच वर्ष बाद एक मूल्यांकन में उस पर प्रकाश डाला गया है।

महिलाओं के प्रति भेदभाव की झलक कई रूपों में मिलती है। इसका सर्वाधिक स्पष्ट प्रमाण पिछले कुछ दशकों में जनसंख्या में महिलाओं के निरन्तर घटते अनुपात से मिलता है। समाज में उनकी रूढ़िवादी छवि तथा घरेलू और सामाजिक स्तर पर उनके प्रति हिंसा का कुछ अन्य रूप है। बालिकाओं, किशोरियों और महिलाओं के प्रति अभी भी देश के विभिन्न भागों में भेदभाव होता है। पुरूष–महिला असमानता का संबंध मुख्य रूप से सामाजिक और आर्थिक ढांचे से है जो अनौपचारिक और औपचारिक मानदण्डों तथा प्रथाओं पर आधारित है।

परिणामस्वरूप महिलाओं को, विशेषकर कमजोर वर्ग की महिलाओं को, जिनमें अनुसूचित जातियों/ अनुसूचित जनजातियों/ अन्य पिछड़े वर्गो तथा अल्पसंख्यक वर्गो की महिलाएं शामिल है, जिनमें अधिकतर ग्रामीण क्षेत्रों तथा अनौपचारिक, असंगठित क्षेत्र में है– शिक्षा, स्वास्थ्य तथा उत्पादक संसाधनों में मिलने वाले अवसर अपर्याप्त है। इसलिए वे अधिकतर हाशिये पर गरीब तथा समाज से अलग रही आती है।

(iv) लक्ष्य और उद्देश्य

इस नीति का लक्ष्य महिलाओं के लिए प्रगति, उन्नति और सशक्तिकरण लाना है। इस नीति को अधिक से अधिक प्रचारित किया जायेगा जिनके लिए ये लक्ष्य प्राप्त किये जाने है, उनकी सक्रिय भागीदारी को प्रोत्साहन मिले। इस नीति के विशिष्ट उद्देश्य है–

1. महिलाओं को उनकी पूर्ण क्षमता का बोध कराने के लिए उनके पूर्ण विकास हेतु सकारात्मक, आर्थिक एवं सामाजिक नीतियों दारा एक वातावरण बनाना।
2. राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा नागरिक सभी क्षेत्रों में महिलाओं को पुरूषों के बराबर ही कानूनी एवं वास्तविक मानवाधिकारों का मूलभूत स्वतन्त्रता का लाभ दिलाना।
3. राजनीतिक, आर्थिक,. सामाजिक, सांस्कृतिक तथा नागरिक सभी क्षेत्रों में महिलाओं की बराबरी की साझेदारी तथा निर्णय–अधिकार निश्चित करना।
4. स्वास्थ्य की देखभाल, सभी स्तरों पर अच्छी शिक्षा, रोजगार तथा व्यावसायिक मार्गदर्शन, नियोजन समान वेतन, व्यावसायिक स्वास्थ्य तथा सुरक्षा, सामाजिक सुरक्षा और सरकारी पदों आदि में महिलाओं की समान पहुंच निश्चित करना।
5. महिलाओं के प्रति सभी प्रकार के भेदभावों को मिटाने के लिए कानूनी व्यवस्था मजबूत बनाना।
6. पुरूषों तथा महिलाओं दोनों की सक्रिय साझेदारी द्वारा सामाजिक प्रवृत्तियों तथा सामुदायिक प्रथाओं को बदलना।
7. विकस प्रक्रिया में महिला परिप्रेक्ष्य समाहित करना।
8. महिलाओं एवं बालिकाओं के प्रति भेदभाव तथा सभी प्रकार की हिंसा समाप्त करना।

(v) सर्वमान्य बाल विकास कार्यक्रम

देश में 8 वर्ष तक के बच्चों की संख्या विश्व में सबसे अधिक है। वर्ष 1974 में घोषित 'राष्ट्रीय बाल नीति' के पश्चात् इस दिशा में तेजी से प्रयत्न होने शुरू हुए तथा 1975 में आई.सी.डी.एम (Intergrated Child Development Services) योजना की शुरुआत हुई। 2 अक्टूबर, 1975 को यह एकीकृत (समेकित) बाल विकास योजना देश के 33 खण्डों में शुरू की गई थी जो वर्ष 2001 तक 5171 खण्डों तक विस्तारित की जा चुकी थी। एकीकृत बाल विकास सेवा के माध्यम से चलने वाले "आँगनबाड़ी केन्द्रों" द्वारा बच्चों एवं महिलाओं को पूरक पोषाहार, टीकाकरण, प्राथमिक शिक्षा, मनोरंजन तथा स्वास्थ्य सेवाएँ प्रदान की जाती है। सन् 1995 से I.C.D.S को "समन्वित माँ तथा शिशु विकास कार्यक्रम" नाम दिया गया। 6 मार्च, 1950 को हुए अनुबन्ध के कारण भारत तथा 'केयर' के बीच खाद्य तथा गैर खाद्य कार्यक्रम इस विभाग तथा 'केयर इण्डिया' की सहायता से संचालित किए जा रहे है। विश्व बैंक की सहायता से बालकों की देखभाल में जुटे कार्यकर्ताओं के लिए उदिशा (समेकित बाल विकास सेवा का प्रशिक्षण कार्यक्रम) कार्यक्रम भी चलाया जा रहा है।

कामकाजी तथा बीमा माताओं के बच्चों की देखभाल हेतु शिशु गृह या दिवस देखभाल केन्द्रों का संचालन भी इसी विभाग द्वारा किया जाता है। 21 मार्च, 1994 को बनाई 'राष्ट्रीय शिशु गृह निधि' के माध्यम से शिशु केन्द्रों को सहायता प्रदान की जाती है। वर्ष 1970– 71 से बालवाड़ी पोषाहार कार्यक्रम भी देश में संचालित हो रहा है।

(vi) खाद्य एवं पोषाहार कार्यक्रम

राष्ट्रीय पोषण नीति (1993) के अनुरूप बनाया गया "खाद्य एवं पोषाहार बोर्ड" इस विभाग के साथ 1 अप्रैल, 1993 से कार्यरत है जो पूर्व में खाद्य मंत्रालय के अन्तर्गत कार्य करता था। नई दिल्ली स्थित मुख्यालय के अतिरिक्त इस बोर्ड के चार क्षेत्रीय कार्यालय (नई दिल्ली, मुम्बई, कोलकात्ता, चेन्नई) तथा 43 सामुदायिक खाद्य एवं पोषाहार विस्तार इकाइयाँ (बोर्ड की क्षेत्रीय शाखाएँ) भी कार्य कर रही है। यह बोर्ड पोषण शिक्षा–प्रशिक्षण, फलों तथा सब्जियों को घर में परिरक्षित करने का प्रशिक्षण, सामग्री विकास, जनजागरण, पोषक आहारों का विकास, खाद्य पदार्थों का पुष्टिकरण, आहार विश्लेषण मानकीकरण तथा अनुसंधान एवं विकास कार्य करता है।

6.3.3 राष्ट्रीय महिला आयोग

भारत में महिलाओं को संवैधानिक और कानूनी सुरक्षा और उनके अधिकारों की सुरक्षा के लिए बने कानूनों को क्रियान्वित करवाने, वर्तमान कानूनों के अध्ययन करने तथा महिला विकास से संबंधित पहल करने के लिए एक उच्चाधिकार प्राप्त आयोग की स्थापना के "राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990 " संसद द्वारा पारित किया गया है और 1992 में इसकी स्थापना की गई। राष्ट्रीय महिला आयोग की प्रथम अध्यक्ष श्रीमती जयन्ती पटनायक को बनाया गया था। आयोग को प्रशासनिक सहायता महिला एवं बाल विकास विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार से प्राप्त होती है।

(i) संगठन

राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990 अन्तर्गत गठित राष्ट्रीय महिला आयोग में एक अध्यक्ष, पांच सदस्य तथा एक सदस्य–सचिव होता है। सन् 2001 में अध्यक्ष पद पर सुश्री विभा पार्थसारथी तथा सदस्य पर डॉ.(सुश्री) सईदा एस. हमीद, सुश्री विजय दक्ष, डॉ.(सुश्री) पूर्णिमा आडवाणी, सुश्री के. सता रेड्डी तथा सुश्री अनुसूइया कार्यरत थी तथा सुश्री बीनू सेन सदस्य–सचिव थी। वर्तमान में इसकी अध्यक्ष गिरिजा व्यास है। केन्द्र सरकार दारा चयनित अध्यक्ष तथा सदस्य विधि, प्रबन्ध, श्रमिक संगठन तथा महिलाओं से संबंधित स्वयंसेवी संगठनों के जाते हैं। सदस्य सचिव पद पर प्रशासनिक सेवाओं के अधिकारी को नियुक्त किया जाता है। एक सदस्या अनुसूचित जाति या जनजाति की होती है।

राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990 द्वारा आयोग को निम्न कार्य सम्पादित करता है –

1. महिलाओं को प्रदत्त कानूनी सुरक्षापायों की जाँच पड़ताल और समीक्षा करना तथा उनके प्रभावी क्रियान्वयन के लिए सरकार को परामर्श देना,
2. महिलाओं से संबंधित सुरक्षापायों के उल्लंघन वाले प्रकरणों को संबंधित अधिकारियों तक पहुंचाना।
3. महिलाओं से संबंधित मौजूदा कानूनों के प्रावधानों की समय–समय पर समीक्षा करना तथा उनमें किसी प्रकार की त्रुटियाँ मिलने पर सरकार को संशोधन सुझाना।
4. महिलाओं के सामाजिक– आर्थिक विकास हेतु नियोजन प्रक्रिया में सहयोग देना एवं प्रगति का मूल्यांकन करना।
5. महिलाओं के अधिकारों के हनन से संबंधित परिवादों पर ध्यान देना तथा स्वत: सूचना के आधार पर मामले को उठाना।
6. महिलाओं की किसी विशिष्ट समस्या, भेदभाव, छूआछूत इत्यादि पर खोज करना तथा निवारण के उपाय सुझाना।
7. सुधारगृहों, कारागृहों आदि स्थानों पर जहां महिलाओं को हिरासत में रखा जाता है, का निरीक्षण करना तथा उनके पुनर्वास और सुधार की सिफारिश करना।
8. महिलाओं के सर्वांगीण विकास, प्रोन्नति तथा शैक्षिक अभिवृद्धि के लिए अनुसंधान कार्य करवाना।
9. अधिसंख्य महिलाओं को प्रभावित करने वाले किसी मुकदमे को वित्तीय सहायता देना।
10. केन्द्र सरकार को वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करना और यदि किसी मामले में आवश्यकता हो तो राज्य सरकार को भी रिपोर्ट भेजना।
11. अन्य कोई कार्य जो आयोग को दिया जाए।

(ii) शक्तियाँ

राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990 के अन्तर्गत गठित इस आयोग को महिलाओं से संबंधित विकसोन्मुख कार्यक्रमों की रूपरेखा बनाने के साथ–साथ महिलाओं के लिए बने कानूनों के उल्लंघन के मामले में शिकायतों की जाँच करते समय इसे मुकदमा सुनने वाली

दीवानी अदालत की शक्तियाँ प्राप्त है। आयोग अपनी रिपोर्ट सरकार को देता है। यह सरकार का दायित्व है कि वह रिपोर्ट तथा उस पर की गई कार्यवाही का ब्यौरा सदन में प्रस्तुत करें। यदि सरकार इसकी किसी सिफारिश को स्वीकार नहीं करती है तो इसके पीछे संतोषजनक कारण बताने आवश्यक है। आयोग को किसी सिविल न्यायालय की तरह निम्न शक्तियाँ प्राप्त है –

1. भारत के किसी भी भाग से किसी भी व्यक्ति को बुलाने और उसकी उपस्थिति सुनिश्चित करने तथा शपथ–पत्र परीक्षण करने।
2. किसी दस्तावेज की तलाश करवाने और उसे पेश करवाने।
3. शपथ–पत्रों पर साक्ष्य लेने।
4. किसी भी अदालत अथवा कार्यालय से कोई सार्वजनिक अभिलेख या उसकी प्रति प्राप्त करने।
5. साक्षियों और प्रलेखों के परीक्षण के लिए आदेश जारी करने तथा
6. अन्य कोई मामला जिसे राष्ट्रपति नियम द्वारा निर्धारित करें, के सम्बन्ध में आवश्यक पहल करने की शक्तियाँ आयोग को प्राप्त है।

(iii) महिला विकास में आयोग की भूमिका

सन् 1992 में अपनी स्थापना के बाद से लेकर अब तक की एक या अर्ध दशकीय यात्रा में आयोग ने महिलाओं को समानता, न्याय तथा सम्मान का अधिकार दिलाने में बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया है। आयोग द्वारा स्वैच्छिक संगठनों के साथ मिलकर अनेक परियोजनाएँ तथा कार्यक्रम संचालित किए गए हैं। आयोग की संरचना में देश की प्रबुद्ध महिलाएं कार्यरत है जो भिन्न–भिन्न क्षेत्रों का दीर्घ अनुभव रखती है। आयोग ने सामाजिक चेतना, तलाक तथा क्षतिपूर्ति, पंचायतीराज की व्यावहारिकता, महिला ठेका श्रमिक न्यायिक निर्णयों, पारिवारिक अदालतों इत्यादि पर शोध तथा व्यावहारिक कार्य किया है। आयोग ने दहेज विरोधी कानून, सती निरोधक कानून, भारतीय दण्ड संहिता की धारा 498 ए के तहत महिलाओं से हिंसक व्यवहार में सजा, हिन्दू विवाह कानून, बाल विवाह विरोधी कानून, मिर्गी तथा तलाक संबंधी कानून, अनिवार्य विवाह तथा तलाक पंजीकरण, दो विवाह कानून, विवाह अधिनियम, बच्चों को गोद लेने संबंधी कानून, भारतीय दण्ड संहिता संशोधन अधिनियम तथा बच्चों के यौन शोषण संबंधी प्रस्तावित अधिनियम से संबंधित मामलों पर सरकार को सुझाव देते हुए उन्हें विधेयक के रूप में प्रस्तुत करने का आग्रह किया है। अल्पसंख्यक महिलाओं, नि:शक्त वर्ग की महिलाओं, महिला कैदियों, दहेज प्रताड़ित विवाहिताओं तथा मानसिक समस्याओं से ग्रस्त महिलाओं के कल्याण हेतु आयोग कार्य करता है।

राष्ट्रीय महिला आयोग अपनी गतिविधियों द्वारा महिलाओं की स्थिति, श्रेष्ठतर बनाने में लगा हुआ है। आयोग की पहल पर देश के लगभग सभी राज्यों में महिला आयोग स्थापित हो चुके है। आयोग ने राज्यपालों तथा मुख्यमंत्रियों से आग्रह करके 10 साल अथवा इससे अधिक समय से सजा काट रही महिलाओं की मुक्ति तथा उनके बच्चों को समुचित सुविधाएं प्रदान करवाने में सफलता प्राप्त की है। परिवार महिला लोक अदालतों के माध्यम से भी आयोग महिलाओं को राहत पहुंचाता है। महिलाओं को सम्मानजनक दर्जा दिलवाने, सामाजिक चेतना के

प्रसार करने, महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने, अनैतिक देह व्यापार पर रोक लगाने, मादक द्रव्य तथा शराबबन्दी आन्दोलन चलाने, पिछड़ी अनुसूचित जाति तथा जनजाति वर्गो की महिलाओं को आगे बढ़ाने तथा महिला शिक्षा में विस्तार करवाने में आयोग की महत्वपूर्ण भूमिका बनी हुई है। वर्तमान में महिलाओं से संबंधित कदाचित ही कोई कार्यक्रम या नीतिगत मामला हो जब सरकार इस आयोग को परामर्श न करती हो।

6.3.4 राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग

राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग, एक संवैधानिक निकाय है। संविधान के अनुच्छेद–338 में यह प्रावधान किया गया है कि अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए वर्णित संवैधानिक रक्षापायों के संबंध में जांच करने तथा राष्ट्रपति को प्रतिवेदन देने के लिए एक विशेष अधिकारी होगा। इस प्रावधान के अनुसरण में भारत सरकार ने संविधान प्रवर्तन के साथ ही इन वर्गो के विशेष अधिकारी (आयुक्त) तथा क्षेत्रीय कार्यालयों की स्थापना की। कालान्तर में संसद में तथा अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयुक्त के द्वारा बार–बार यह मांग की गई कि इस कार्यालय को एक सदस्यीय आयुक्त के बजाए बहुसदस्यीय बनाया जाए। इसी क्रम में अनुच्छेद– 338 में संशोधन करने हेतु 48 वाँ संविधान संशोधन प्रस्तुत किया गया। यह संशोधन पारित न हो सका किन्तु 1 जुलाई 1978 को गृह मंत्रालय के आदेश द्वारा एक अध्यक्ष तथा चार सदस्यों से युक्त आयोग के गठन का निर्णय लिया गया, अत: अगस्त, 1978 में श्री भोला पासवान शास्त्री की अध्यक्षता में प्रथम "अनुसूचित जाति एंव अनुसूचित जनजाति आयोग" गठित हुआ। इस समय आयोग को पिछड़ी जातियों के कार्य भी सौंपे गए थे। 1 सितम्बर, 1987 को कल्याण मंत्रालय के आदेशों द्वारा इस आयोग का नाम "राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग" किया गया।

सन् 1990 में पारित संविधान के 65वें संशोधन के माध्यम से "राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग" के स्वरूप, कार्यो तथा शक्तियों का वर्णन कर दिया गया है। यह संशोधन (अनु.338) 8जून,1990 को अधिसूचित किया गया तथा 3 नवम्बर, 1990 को तत्सम्बन्धी नियम प्रकाशित हुए। 65 वें संविधान संशोधन के पश्चात् 12 मार्च, 1992 को श्री रामधन की अध्यक्षता में नया आयोग गठित हुआ।

(i) संगठन

राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग में एक अध्यक्ष, एक उपाध्यक्ष तथा तीन अन्य सदस्य होते हैं जिनमें एक सदस्य महिला होती है। आयोग के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति की मुहर तथा हस्ताक्षर द्वारा की जाती है। यदि आयोग का अध्यक्ष अनुसूचित जाति का हो तो उपाध्यक्ष अनुसूचित जनजाति का होता है अथवा इसके विपरित स्थिति रखी जाती है। आयोग के अध्यक्ष को पद से हटाने हेतु कदाचार के आधार पर राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा (अनु.145) करवा सकता है। उपाध्यक्ष एवं सदस्यों को साधारण कारणों से हटाया जा सकता है। आयोग की रिपोर्ट संसद तथा राज्य

विधान मण्डलों में प्रस्तुत की जाती है। आयोग के प्रशासनिक कार्यों को पूरा करने के लिए एक सचिव, एक संयुक्त सचिव तथा कई निदेशक एवं अन्य कार्मिक कार्यरत है। आयोग के मुख्यालय के सचिवालय को चार प्रमुख खण्डों में विभक्त किया गया है।

1. प्रशासन एवं समन्वय खण्ड
2. सेवा रक्षोपाय खण्ड
3. अत्याचार तथा नागरिक अधिकार संरक्षण खण्ड
4. आर्थिक एवं सामाजिक विकास खण्ड

आयोग के यह प्रमाण अपने– अपने क्षेत्र से संबंधित कानूनों, नीतियों, कार्यक्रमों तथा सरकारी योजनाओं पर नियन्त्रण रखते हैं जो अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के कल्याण हेतु बनाई एवं क्रियान्वित की जा रही है। राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग के राज्यों में भी क्षेत्रीय कार्यालय है। राज्यों में स्थित आयोग के कार्यालयों का संचालन निदेशक, उपनिदेशक, सहायक निदेशक अथवा अनुसंधान अधिकारी करते हैं। आयोग के राज्य स्तरीय कार्यालयों का विवरण इस प्रकार है –

(ii) कार्य

राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों के निम्नलिखित कार्य है –

1. अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को अधिकारों तथा सुरक्षापायों से वंचित करने संबंधी विशेष शिकायतों की जांच करना।
2. संविधान के अन्तर्गत या किसी अन्य कानून अथवा सरकार के किसी आदेश के तहत अनुसूचित जातियाँ और अनुसूचित जनजातियों को प्रदान किए गए सुरक्षापायों के सम्बद्ध में सभी मामलों की जांच करना और मॉनीटर करना तथा ऐसे सुरक्षापायों के कार्यकरण का मूल्यांकन करना।
3. राष्ट्रपति को सुरक्षा के उपाय के कार्यकरण पर वार्षिक रूप से या किसी ऐसे अन्य समय में जिसे आयोग उचित समझे, रिपोर्ट प्रस्तुत करना।
4. अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सामाजिक–आर्थिक विकास की योजना प्रक्रिया में भाग लेना तथा सलाह देना एवं संघ या किसी राज्य के अन्तर्गत उनके विकास की प्रगति की समीक्षा करना।
5. अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के कल्याण, सुरक्षा, विकास तथा उन्नति के सम्बन्ध में ऐसे अन्य कार्यों को करना, जो राष्ट्रपति द्वारा संसद के किसी कानून द्वारा या किसी नियम द्वारा विनिर्दिष्ट किया जाए।
6. उन उपायों के बारे में ऐसी रिपोर्ट या सिफारिश करना जो अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के आर्थिक विकास, कल्याण सुरक्षा किसी राज्य या संघ सरकार द्वारा किये जाने चाहिए।

(iii) शक्तियाँ

राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग को सिविल न्यायालय की शक्तियाँ (सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908) भी दी गई हैं, जो विशेष रूप से निम्नलिखित के सम्बन्ध में होगी –

1. भारत के किसी भी भाग से किसी भी व्यक्ति को बुलाने और उसकी उपस्थिति सुनिश्चत करने तथा शपथ–पत्र परीक्षण करने।
2. किसी दस्तावेज की तलाश करवाने और उसे पेश करवाने।
3. शपथ–पत्रों पर साक्ष्य लेने।
4. किसी भी अदालत अथवा कार्यालय से कोई सार्वजनिक अभिलेख या उसकी प्रति प्राप्त करने।
5. साक्षियों और प्रलेखों के परीक्षण के लिए आदेश जारी करने तथा
6. अन्य कोई मामला जिसे राष्ट्रपति नियम दारा निर्धारित करें ।

आयोग का प्रशासनिक मंत्रालय भारत सरकार का सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय है। इस नाते इस आयोग को सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार से प्रशासकीय तथा तकनीकी सहायता प्राप्त होती है।

राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग मुख्यत: नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1950, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचारों की रोकथाम) अधिनियम, 1989, वन संरक्षण अधिनियम, 1980, पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तार) अधिनियम, 1986, बाल श्रम (प्रतिषेध एवं नियमन) अधिनियम, 1986 तथा बन्धुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम, 1976 की क्रियान्वयन में आ रही बाधाओं तथा कमियों के क्रम में कार्यवाही की जाती है। उपर्युक्त कानूनों के अलावा अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण, विकास तथा संरक्षण के लिए बने संवैधानिक प्रावधानों, प्रशासकीय नियमों आरक्षण एवं अत्याचारों के संबंध में शिकायतों का निस्तारण, जांच तथा मॉनीटरिंग का कार्य करता है। अनुच्छेद 388(9) यह प्रावधान करता है कि संघ तथा राज्य सरकारें अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के क्रम में नीतिगत निर्णय लेते समय इस आयोग से परामर्श करेगी।

6.3.5 केन्द्रीय समाज कल्याण मंडल

गैर सरकारी सामाजिक कल्याणकारी संगठनों द्वारा सामाजिक समस्याओं के उन्मूलन में प्रभावी भूमिका रही है। आजादी के पश्चात् यह देखा गया कि इन संस्थाओं की भूमिकाओं में कमी आ रही है और साथ ही संख्यात्मक रूप से गरीब है। भारतीय संविधान के प्रावधान तथा समय की आवश्यकता के अनुसार स्वयंसेवी कल्याणकारी संगठनों के प्रोत्साहन, संवर्द्धन, समन्वय और सहायता के लिए देश की प्रथम पंचवर्षीय योजना में 4 करोड़ रूपये का प्रावधान किया गया। इसलिए प्रावधान किया गया कि ये धनराशि स्वयंसेवी संस्थाओं के मध्य वितरित की जाए। ये भी आवश्यकता महसूस हुई कि इस धनराशि का वितरण सरकारी क्षेत्र में स्वायत्त

निकाय द्वारा किया जाएगा। अत: अगस्त 1953 में तत्कालीन शिक्षा मंत्रालय के एक प्रस्ताव द्वारा केन्द्रीय समाज कल्याण मण्डल की स्थापना की गई।

समाज कल्याण मण्डल को निम्नलिखित दायित्व दिए गए –

1. विभिन्न समाज कल्याण संगठनों के सर्वेक्षण, अनुसंधान के माध्यम से उनकी आवश्यकताओं को निर्दिष्ट करना।
2. अनुदान प्राप्त संस्थाओं द्वारा चलाए जा रहे कार्यक्रमों एवं परियोजनाओं का मूल्यांकन करना।
3. विभिन्न केन्द्रीय मंत्रालयों, विभागों राज्य सरकारों द्वारा कल्याणकारी संगठनों को दी जा रही सहायता में समन्वय स्थापित करना।
4. ऐसे क्षेत्रों में जहां समाज कल्याण संगठन नहीं है और वहां होना आवश्यक है स्थापना करने के लिए प्रयास करना और सहायता देना।
5. राष्ट्रीय प्राकृतिक तथा अन्य विपदाओं के समय आवश्यकता के अनुसार आपातकाल कार्यक्रम आयोजित करना।

(i) मण्डल का गठन

अप्रैल 1969 में जब इस मण्डल को इस मण्डल का पूर्ववर्ती संघ बदलकर भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 25 के अन्तर्गत पंजीकृत किया गया तो उसी के अनुकूल दूसरे संगठनात्मक रूप में भी परिवर्तन किया गया। मण्डल के प्रतिगठन में मूलत: तीन निकाय है –

1. सामान्य निकाय
2. कार्यकारी निकाय
3. मण्डल व कार्यालय

1. सामान्य निकाय का संगठनिक स्वरूप विस्तृत है। एक अध्यक्ष के अलावा भारत सरकार के द्वारा मनोनीत सरकारी सदस्य प्रख्यात कार्यकर्ता राजस्थान में चयनित अध्यक्ष, सामाजिक कल्याणकारी है। सामान्य निकाय का कार्य मण्डल की गतिविधियों के बारे में निर्णय लेना। कार्य प्रगति का मूल्यांकन करना एवं वित्तीय मदों को अनुमति देना है।
2. मण्डल के सामान्य प्रशासनिक कार्य के संचालन के लिए एक कार्यकारी समिति होती है। इस कार्यकारी समिति में मण्डल की अध्यक्षा तथा कार्यकारी निदेशक सहित 12 सदस्य होते हैं। ये समिति मण्डल की नीति निर्धारण करने वाली और क्रियान्वयन की देखरेख करने वाली एक प्रमुख इकाई है।
3. मण्डल के विधायी ऊर्जा देने के तुरन्त पश्चात् कार्यालय का पुर्नगठन किया गया तथा कार्यालय को 8 संभागों में विभक्त किया गया जो निम्नलिखित है –

   (1) सामाजिक एवं आर्थिक कार्यक्रम संभाग

   (2) संघन कार्यक्रम संभाग

   (3) परियोजना संभाग

   (4) क्षेत्रीय परामर्श एवं निरीक्षण संभाग

(5) अनुदान संभाग

(6) वित्त एवं लेखा संभाग

(7) प्रकाशन संभाग

(8) प्रशासन संभाग

गठित कार्यालय के माध्यम से यह प्रयत्न दिया गया कि मण्डल के कार्यभार को विभिन्न संभागों एवं इकाईयों में समान रूप से वितरण कर दिये जाये एवं साथ ही विभिन्न संभागों और इकाईयों के उत्तरदायी अधिकारियों को समान पड़ स्तर वेतन श्रृंखला भी प्रदान की जाए।

केन्द्रीय समाज कल्याण मण्डल अपने आवंटित कार्यों को प्रभावी रूप से संचालित करने में प्रयत्नशील है।

6.4 सारांश

अध्ययन की इस इकाई में महिला अनुसूचित जाति एवं जनजाति सम्बन्धित विभिन्न नीति–नियोजन एवं कार्यक्रमों के वर्णन एवं विश्लेषण का प्रयास किया गया। यह भी प्रयत्न किया गया है कि इस क्षेत्र में कार्यरत विभिन्न प्रशासनिक संगठनों एवं संस्थाओं के योगदान का मूल्यांकन किया जा सकें।

6.5 शब्दावली

1. नीति : वांछित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भविष्य में होने वाले अथवा किए जाने वाले कार्यक्रमों एवं गतिविधियों की रूपरेखा का नाम भी हैं।
2. सशक्तिकरण : एक विषयात्मक शब्दावली है, जिसका सामान्यता अर्थ व्यक्ति अथवा वर्ग समेकित मजबूती एवं विकास से है।
3. सामाजिक न्याय : एक बहु आयामी धारणा है जिसका तात्पर्य प्रचलित सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन सुधार एवं उन सभी वर्गो को न्याय देने से है जो अन्याय से पीड़ित रहे हैं।
4. मानव संसाधन : इसका तात्पर्य व्यक्ति अथवा व्यक्ति समूह की उन दक्षताओं और क्षमताओं से है जो कि निर्धारित लक्ष्य की ओर क्रियाशील होते हैं।

6.6 अभ्यास प्रश्न

1. भारत में सामाजिक कल्याण एवं सामाजिक न्याय हेतु नीति–नियोजन का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
2. केन्द्रीय सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय के गठन एवं कार्यों की विवेचना कीजिए।
3. केन्द्रीय महिला एवं बाल कल्याण विभाग के दायित्वों का मूल्यांकन करते हुए महिला सुधार एवं बाल कल्याण में इसकी भूमिका का परीक्षण कीजिए।
4. केन्द्रीय समाज कल्याण मण्डल के गठन एवं दायित्वों की समीक्षा कीजिए।

6.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कटारिया, सुरेन्द्र,सामाजिक प्रशासन, आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, जयपुर, 2002

2. भारत का संविधान, सेंट्रल लॉ पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 2005
3. कटारिया, सुरेन्द्र भारत में राज्य प्रशासन, मलिक एण्ड कम्पनी, दिल्ली, 2007
4. वार्षिक प्रतिवेदन 2006–07, सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली
5. वार्षिक प्रतिवेदन 2006–07, केन्द्रीय महिला एवं बाल विकास, भारत सरकार, नई दिल्ली
6. वार्षिक प्रतिवेदन 2006–07, राष्ट्रीय महिला आयोग, नई दिल्ली
7. वार्षिक प्रतिवेदन 2008–07, राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली
8. हैण्ड बुक ऑफ नेशनल कमीशन फोर शिड्यूल कॉस्ट एण्ड शिड्यूल ट्राइब्स, नई दिल्ली

इकाई–7

महिला एवं बाल विकास – राज्यस्तरीय प्रशासनिक तंत्र

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 राज्य महिला नीति

7.3 राज्य एवं महिला बाल विकास: प्रशासनिक तंत्र

- 7.3.1 राज्य महिला एवं बाल विकास विभाग
- 7.3.2 स्वरूप महिला एवं बाल विकास विभाग का संगठनात्मक स्वरूप
- 7.3.3 विभाग के कार्य
- 7.3.4 महिला विकास कार्यक्रम
- 7.3.5 समेकित बाल विकास सेवा कार्यक्रम
- 7.3.6 कार्यक्रम के अन्तर्गत संचालित परियोजनाएं

7.4 राजस्थान में महिला आयोग

- 7.4.1 संरचना
- 7.4.2 कार्य
- 7.4.3 शक्तियाँ
- 7.4.4 कार्यक्षेत्र

7.5 सारांश

7.6 शब्दावली

7.7 अभ्यास प्रश्न

7.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

7.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य राजस्थान राज्य की महिला एवं बाल विकास से संबंधित नीति नियोजन व विस्तृत विवरण देना है और विभिन्न कल्याणकारी कार्यक्रमों को लागू करने हेतु राज्य के महिला एवं बाल विकास विभाग तथा राज्य महिला आयोग के गठन क्रियाकलापों एवं भूमिका का विवेचन करना है।

7.1 प्रस्तावना

भारतीय संविधान की सातवीं अनुसूची के अनुसार महिला एवं बाल कल्याण का कार्य राज्य सरकारों आवंटित है। अत: संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार राज्यों से यह अपेक्षा किया जाना स्वाभाविक है कि कार्य हेतु पर्याप्त नीति नियोजन एवं सांगठनिक संरचनाओं का निर्माण किया जाए। राज्य स्तर पर कार्य विभिन्न अभिकरणों के गठन तथा कार्यकरण विवेचन हेतु पूर्व

संक्षिप्त में यह भी जानना आवश्यक है कि इन हेतु राज्य का नीति नियोजन किस तरह का है। राजस्थान राज्य में महिलाओं हेतु एक समेकित महिला नीति जारी की गई, जो 'महिला नीति' के नाम से जानी जाती है।

7.2 राज्य महिला नीति

राज्य में बालिकाओं तथा महिलाओं के सामाजिक स्तर एवं आर्थिक स्वास्थ्य स्थिति में सुधार; तथा शोषण एवं शोषणवादी कुरीतियों को समाप्त करने के लिए प्रक्रियाओं, पद्धतियों, तंत्र को गतिशील बनी महिलाओं एवं बालिकाओं के समग्र विकास हेतु सहायक वातावरण तैयार करने के उद्देश्य से राज्य की महिला नीति का निर्माण किया गया है। राज्य महिला नीति की घोषणा दिनांक 8 मार्च, 2000 को की गई थी। महिला नीति के अन्तर्गत महिला विकास के आठ आयाम निर्धारित किए गए हैं जो निम्न प्रकार है –

1. आर्थिक सशक्तिकरण
2. सामाजिक समर्थक सेवाएँ
3. स्वास्थ्य पोषण एवं जनस्वास्थ्य
4. साक्षरता एवं शिक्षा।
5. अत्याचार एवं हिंसा का निवास
6. राजनीतिक सहभागिता
7. संचार माध्यम
8. प्राकृतिक संसाधन एवं पर्यावरण

राजस्थान राज्य में महिला कल्याण हेतु मार्च 2000 में एक समेकित महिला नीति जारी की गई थी। इस नीति का उद्देश्य यह था कि समाज में बालिकाओं तथा महिलाओं के स्तर एवं स्थिति में सुधार करने तथा एवं शोषणवादी कुरूतियों को समाप्त करने के लिए प्रक्रियाओं, पद्धतियों एवं तंत्र को गतिशील बनाना है की महिलाओं एवं बालिकाओं के समग्र विकास हेतु वातावरण तैयार करना। सरकार की जारी नीति के प्रमुख घटक निम्न प्रकार है–

1. महिलाओं का सर्वांगीण विकास।
2. घटते हुए लिंगानुपात, लिंग चयन के आधार पर गर्भपातों, बालिकाओं के महत्व, महिलाओं को संवैधानिक अधिकारों की गारन्टी, पोषणात्मक विसंगतियों का उन्मूलन एवं बुनियादी शिक्षा के महत्व पर एक व्यापक जन–जागरण अभियान चलाना।
3. औपचारिक स्कूल पद्धति के भीतर एवं उसके बाहर बालिकाओं एवं किशोरी कन्याओं के साथ कार्य करने के लिए गैर सरकारी प्रयत्नों व प्रोत्साहन एवं समर्थन देना।
4. बाल विवाह (प्रतिबन्ध अधिनियम, 1978) को क्रियान्वित करने के लिए प्रभावी उपाय करना।
5. महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण के लिए बहुत से आर्थिक कार्यक्रम तैयार करना और उनके प्रभावी निष्पादन को सुनिश्चित करना।
6. महिला समूहों एवं सहकारी समितियों के गठन को प्रोत्साहन देना।

7. महिलाओं को अपनी बात कहने व मनवाने की क्षमता को बढ़ावा देना एवं आत्मविश्वास पैदा करना।
8. महिला उद्यमियों को प्रोत्साहन देना।
9. महिलाओं के प्रशिक्षण, कौशल विकास एवं प्रबन्ध में सुधार करना।
10. महिलाओं के हित में निर्मित रोजगार नीतियों के प्रभावी निष्पादन को सुनिश्चित करना।
11. बालिकाओं एवं बच्चों के लिए साक्षरता एवं शिक्षा के अभियान को तेज गति प्रदान करना।
12. अत्याचार एवं हिंसा का निवारण।
13. सभी उचित अवसरों का सृजन करना, जिससे कि महिलाओं की राजनैतिक भागीदारी को बढ़ावा मिल सकें।

7.3 राज्य में महिला एवं बाल विकास: प्रशासनिक तंत्र

राज्य सरकार के द्वारा निर्धारित नीति नियोजन कार्यक्रम, केन्द्रीय सरकार के द्वारा प्रायोजित विभिन्न कार्यक्रम तथा अन्तर्राष्ट्रीय अभिकरणों के द्वारा सहायता प्राप्त करना विभिन्न परियोजनाओं के प्रशासनिक प्रबन्ध हेतु राज्य स्तर पर प्रमुख अभिकरण निम्नलिखित है –

1. महिला एवं बाल विकास विभाग
2. राज्य महिला आयोग

प्रस्तुत इकाई में राज्य महिला एवं बाल कल्याण विभाग तथा राज्य महिला आयोग के गठन, क्रियाकलाप एवं भूमिका का विस्तृत वर्णन किया जाएगा।

7.3.1 राज्य महिला तथा बाल विकास विभाग: प्रशासनिक तंत्र

महिलाओं व बच्चों के विकास से संबंधित कार्यक्रमों व परियोजनाओं के समेकित व प्रभावी रूप से क्रियान्वित करने के लिए पृथक विभाग की आवश्यकता महसूस की गई। परिणामस्वरूप, 1985 में राज्य सरकार द्वारा "महिला बच्चे तथा पोषाहार" नामक एक पृथक विभाग की स्थापना की गई। बाद में 1989–90 में राज्य सरकार ने इस विभाग का नाम बदलकर महिला एवं बाल विकास कर दिया। यह विभाग समेकित बाल विकास तथा महिला विकास कार्यक्रमों से संबंधित परियोजनाएँ कार्यान्वित करता है।

राजस्थान सरकार के कार्य आवंटन नियमों के तदनुसार महिला एवं बाल विकास विभाग को निम्नांकित कार्यों व दायित्वों का आवंटन किया गया है –

1. समेकित बाल विकास सेवा कार्यक्रम
2. विशिष्ट पोषाहार कार्यक्रम
3. सरकारी अमेरिकन सांत्वना कार्यक्रम जहां कहीं भी लागू हो।
4. विश्व खाद्य कार्यक्रम
5. सहायता प्राप्त विशिष्ट पोषाहार कार्यक्रम
6. पूरक पोषाहार कार्यक्रम
7. पर्यावर्तित पोषाहार कार्यक्रम

8. परिवार एवं बाल कल्याण कार्यक्रम
9. महिला विकास कार्यक्रम
10. ग्रामीण क्षेत्रों के महिला एवं बाल विकास कार्यक्रम
11. क्षेत्रीय विकास में सामाजिक आगत कार्यक्रम
12. विभाग के प्रशासनिक योजना में आने वाले सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों के प्रस्थापन मामले (कार्मिक विभाग, सामान्य प्रशासनिक विभाग तथा वित्त विभाग को आवंटित मामले के अतिरिक्त)

7.3.2 महिला एवं बात विकास विभाग का संगठनात्मक स्वरूप

महिला तथा बाल विकास विभाग महिलाओं तथा बालकों के विकास सुधार से संबंधित महिला विकास योजना व समेकित बाल विकास सेवा कार्यक्रमों में विस्तृत नीति–नियोजन, क्रियान्वयन, प्रबन्धन, प्रबोधन तथा समन्वय आदि कार्यों के लिए कार्मिक वर्ग कार्यरत है और इस विभाग का अपना वृहत् संरचनात्मक प्रतिरूप है। गठन के विभिन्न स्तर निम्नांकित है –

1. मुख्यालय निदेशालय स्तर
2. मुख्यालय में विश्व बैंक परियोजना आई सी डी एस तृतीय के अन्तर्गत
3. राज्य परियोजना प्रबन्धन
4. जिला स्तर
5. इकाई स्तर

महिला एवं बाल विकास विभाग, राजस्थान

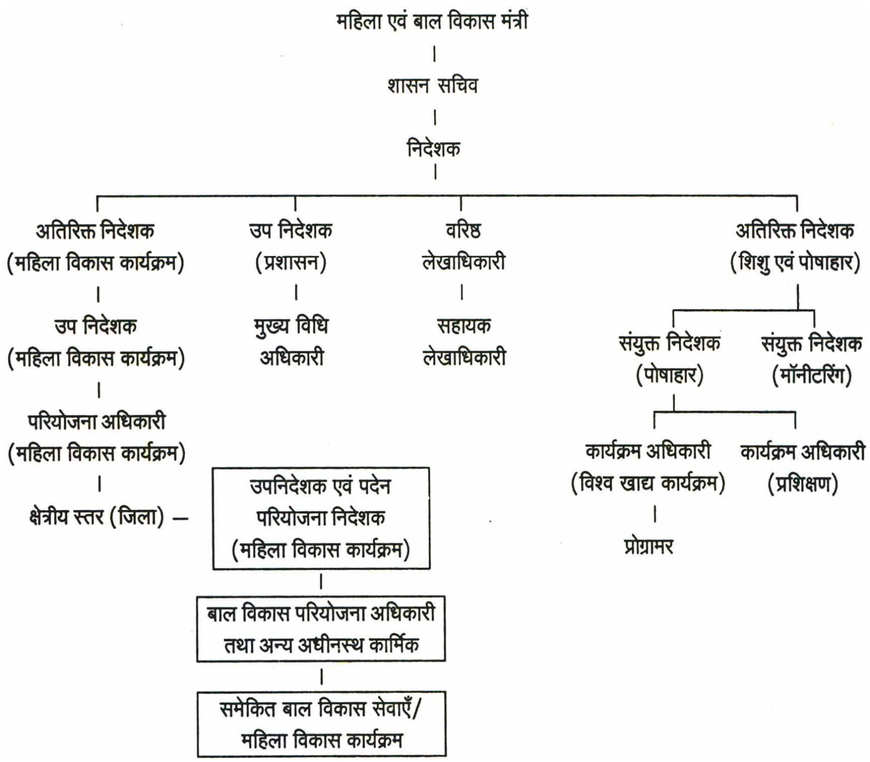

7.3.3 महिला एवं बाल विकास विभाग के कार्य

महिला एवं बाल विकास विभाग द्वारा सम्पादित किए जाने वाले कार्यों का विवरण निम्न प्रकार से है -

1. महिला एवं बाल विकास तथा कल्याण के लिए नीति एवं कार्यक्रम निर्माण।
2. महिला एवं बाल विकास से सम्बन्धित पक्षों पर राज्य सरकार को परामर्श।
3. इन कार्यक्रमों हेतु वित्तीय व्यवस्था एवं बजट निर्माण।
4. महिला तथा बाल विकास की परियोजनाओं व कार्यक्रमों का संचालन।
5. महिला एवं बाल विकास की विभिन्न परियोजनाओं हेतु कार्मिक प्रबन्ध।
6. प्रवर्तित परियोजनाओं एवं कार्यक्रमों का निर्देशन एवं नियन्त्रण।
7. विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय, प्रादेशिक तथा जिला स्तरीय अभिकरणों से समन्वय स्थापित करना।
8. विभाग के कार्यक्रमों की मॉनीटरिंग तथा रिपोर्ट निर्माण।
9. राज्य योजना प्रबन्ध इकाई, जिला परियोजना तथा प्रशिक्षण संचारण केन्द्र इत्यादि के लिए प्रशिक्षण सामग्री तैयार करना।
10. परियोजना के क्रियाकलापों को बेहतर बनाने के लिए विशिष्ट प्रकार के उपायों को विकसित करना।
11. इस क्षेत्र में कार्यरत स्वयंसेवी संगठनों को प्रोत्साहन देना।
12. प्रवर्तित परियोजनाओं का मूल्यांकन।
13. परियोजना मॉनीटरिंग तथा मूल्यांकन के क्षेत्र में समन्वय स्थापित करना।
14. भारत सरकार तथा विश्व बैंक को भेजे जाने वाले प्रगति प्रतिवेदनों को तैयार करना।

महिला एवं बाल विकास के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु विभाग द्वारा निम्न दो कार्यक्रम मुख्य रूप से संचालित किए जा रहे हैं –

1. महिला विकास कार्यक्रम
2. समेकित बाल विकास कार्यक्रम

7.3.4 महिला विकास कार्यक्रम

राजस्थान राज्य में महिला विकास कार्यक्रम वर्ष 1984 में 6 जिलों में प्रारम्भ किया गया था। कार्यक्रम के आकलन से प्राप्त सकारात्मक परिणामों से प्रोत्साहित होकर राज्य सरकार राज्य के समस्त जिलों में इस कार्यक्रम को क्रियान्वित कर रही है। महिला विकास कार्यक्रमों का वृहत लक्ष्य शिक्षा व प्रशिक्षण के माध्यम से महिलाओं का आर्थिक एवं सामाजिक सशक्तिकरण करना तथा उन्हें विकास की मूल धारा से जोड़ना है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए समस्त विकास कार्यों की जानकारी उन तक पहुंचाकर उन्हें विकास की कड़ी बनाकर अधिक से अधिक लाभ अर्जित कराने का प्रयास किया जाता है। विभिन्न विभागों की अनेक योजनाएं है जिनका प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः उद्देश्य महिलाओं की स्थिति में सुधार लाना है। महिला विकास कार्यक्रम इन सभी योजनाओं में महिलाओं को वास्तविक रूप से विकसित करने में प्रयासरत है।

शिक्षा, प्रशिक्षण, स्वास्थ्य, पोषण, परिवार कल्याण, रोजगार तथा आर्थिक विकास आदि घटक इस कार्यक्रम के प्रमुख रहे हैं। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत महिलाओं को विकास की प्रक्रिया में केवल लाभार्थी के रूप में नहीं देखा जाकर एक आवश्यक भागीदार के रूप में समझा जाता है जिससे एक समेकित मानवीय दृष्टिकोण का विचार पनप सके। महिला विकास कार्यक्रम के मूल्यांकन हेतु कोई लक्ष्य निर्धारित नहीं किए गए है। परिणामस्वरूप इसका मूल्यांकन भौतिक आधार पर नहीं किया जा सकता है। कार्यक्रम की पद्धति गुणात्मक है, जिसमें ग्रामीण महिलाओं में आत्मविश्वास की भावना जागृत करना तथा विचारों व सोच में परिवर्तन करना शामिल है। महिला विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत दहेज, बाल विवाह, परिवार नियोजन, अल्प बचत, सामाजिक वानिकी, साक्षरता एड्स, महिलाओं पर बढ़ती हिंसा के मुख्य बिन्दुओं पर जाजमों, शिविरों, फिल्म शो, नुक्कड़ नाटकों एवं बैठकों के माध्यम से चर्चा कर महिलाओं को उत्पीड़न से बचाने तथा उनके आर्थिक एवं सामाजिक विकास हेतु महिलाओं में चेतना जागृत की जाती है।

महिला विकास कार्यक्रम के कार्यकर्ताओं द्वारा पोलियो उन्मूलन, महिला पंच/ सरपंच आमुखीकरण, महिला शिक्षा व स्वास्थ्य जागरूकता के क्षेत्र में भी अन्य विभागों से जुड़कर उत्साहवर्द्धक कार्यों का संचालन किया जाता है।

(i) प्रचेता व साथिन

महिला विकास कार्यक्रम का क्रियान्वयन जिला स्तर पर जिला महिला विकास अभिकरण के माध्यम से किया जा रहा है। इसके अन्तर्गत जिला स्तर पर परियोजना निदेशक तथा प्रत्येक पंचायत समिति स्तर पर एक प्रचेता होती है जो कि कार्यक्रम को आवश्यक दिशा एवं गति प्रदान करने में सहायता करती है। वर्तमान में प्रत्येक पंचायत समिति स्तर पर एक प्रचेता स्वीकृत है।

साथिन महिला विकास कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने वाली मानदेय प्राप्त ग्राम स्तरीय कार्यकर्ता है। साथिन वह कड़ी है जो महिलाओं को विकास की मूलधारा से जोड़ने का कार्य करती है तथा समाज में महिलाओं के प्रति सकारात्मक सोच एवं जागरूकता पैदा करती है। महिला विकास कार्यक्रम की सफलता एवं इसके में साथियों की महत्वपूर्ण भूमिका को देखते हुए राज्य में प्रत्येक ग्राम पंचायत पर एक साथिन नियुक्त करने का निर्णय लिया जा चुका है।

(ii) सामूहिक विवाहों हेतु अनुदान

समाज में विवाहों पर व्यय की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। सामूहिक विवाहों के आयोजन से ही इसे नियन्त्रित किया जा सकता है। सामाजिक विकास की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने तथा विवाहों पर होने वाले व्यय को रोकने के लिए सामूहिक विवाह अनुदान नियम, 1996 बनाये गये, जिसमें समय–समय पर संशोधन किये जाने के उपरान्त नवीनतम प्रावधान निम्नानुसार है–

1. सामूहिक विवाह आयोजित करने वाली संस्था, रजिस्ट्रार संस्थाओं के कार्यालय में पंजीकृत होनी चाहिए।
2. आयोजनकर्ता संस्था का विवाह आयोजन करने की तिथि से कम से 15 दिवस पूर्व जिला कलेक्टर कार्यालय, जिला परिषद अथवा महिला विकास अभिकरण कार्यालय में निर्धारित प्रपत्र में आवेदन पत्र प्रस्तुत करना अनिवार्य है।

3. आयोजनकर्ता संस्थान द्वारा एक साथ कम से कम दस जोड़ों का विवाह आयोजित करने पर ही अनुदान देय होता है। अधिकतम बीस जोड़ों के लिए ही अनुदान दिया जा सकेगा।
4. विवाह योग्य लड़के की उम्र कम से कम 21 वर्ष व लड़की की उम्र 18 वर्ष होना आवश्यक है तथा जन्म प्रमाण–पत्र अनुदान प्रस्तावों के साथ प्रस्तुत करना आवश्यक है।
5. आयोजनकर्ता संस्था को पहले रूपये........ प्रति विवाहित स्त्री के नाम से स्त्रीधन के रूप में न्यूनतम 3 वर्ष की अवधि के लिए किसी डाकघर अथवा अधिसूचित राष्ट्रीयकृत बैंक में सावधि जमा के रूप में जमा करवाने होंगे तथा रसीद/ छाया प्रति अनुदान प्रस्तावों के साथ ही प्रस्तुत करनी होगी।

(iii) जिला महिला सहायता समिति

राज्य में महिलाओं के आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक स्तर में सुधार के उपरान्त भी महिलाओं की स्थिति में परिवार स्तर पर अपेक्षित सुधार नहीं हुआ है एवं महिला उत्पीड़न एवं शोषण के प्रकरणों में कमी नहीं आ रही है। ऐसा देखने में आया है कि मुख्य रूप से समाज में व्याप्त महिलाओं के प्रति विचारधारा ही महिलाओं के प्रति उत्पीड़न एवं हिंसा का मुख्य कारण है। इस हेतु कुछ प्रकरणों में, विशेष रूप से पारिवारिक प्रकरणों को समझाइए के माध्यम से सकारात्मक रूप से सुलझाये जाने के प्रयास किए जा रहे हैं। ऐसी शोषित एवं उत्पीड़ित महिलाओं को अविलम्ब राहत देने, उन्हें आवश्यक सहायता एवं मार्गदर्शन प्रदान करने एवं शोषण के प्रकरणों का पुनरीक्षण कर शीघ्र कार्यवाही कराने के उद्देश्य से समस्त जिलों में एक जिला स्तरीय महिला सहायता समिति की स्थापना जिला कलक्टर की अध्यक्षता में की गई है।

यह समिति निम्न विषयों पर महिलाओं को राहत एवं सहायता उपलब्ध करवा सकती है–

1. उत्पीड़ित, निराश्रित महिलाओं को तात्कालिक आश्रय एवं विधिक सहायता प्रदान करना। तात्कालिक सहायता समाज कल्याण विभाग के महिला सदन अथवा जिला कलेक्टर द्वारा अनुमोदित संस्था के पास जो ऐसी व्यवस्था करने में समक्ष हो, के द्वारा प्रदान की जाती है।
2. समस्या विशेष के संबंध में परामर्श प्रदान करना।
3. उत्पीड़न/ शोषण के प्रकरणों का पुनरीक्षण कर आवश्यक विधिक एवं समझाइए की कार्यवाही करना।

समिति के सदस्य निम्न प्रकार है –

1.	जिला कलेक्टर	अध्यक्ष
2.	पुलिस अधीक्षक	सदस्य
3.	मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट/ न्यायाधीश पारिवारिक न्यायालय (जिस जिले में स्थापित हो)	सदस्य
4.	संयुक्त निदेशक, समाज कल्याण विभाग सदस्य	सदस्य
5.	कानूनी सलाहकार– 2 (राज्य स्तर पर मनोनीत)	सदस्य
6.	प्रतिष्ठित स्वयंसेवी संस्था के प्रतिनिधि (राज्य स्तर पर मनोनीत)	सदस्य

7. परियोजना निदेशक, जिला महिला विकास अभिकरण सदस्य

यह एक स्थायी समिति है, जिसकी बैठक 3 माह में एक बार अवश्य होती है अथवा जितनी अध्यक्ष महोदय आवश्यक समझे, आयोजित की जा सकती है। जिला स्तरीय महिला सहायता समितियों की ओर अधिक प्रभावी बनाने हेतु जन प्रतिनिधियों को समिति का सदस्य बनाये जाने की कार्यवाही की जाती है।

(iv) महिला स्वयं सहायता समूह योजना

विभाग द्वारा महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण तथा रोजगार के अवसर उपलब्ध करवाने की दृष्टि से वर्ष 1997–98 से निरन्तर स्वयं सहायता समूह कार्यक्रम संचालित किया जा रहा है। यह कार्यक्रम राज्य के सभी जिलों में चल रहा है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 10से 15 महिलाओं के समूहों का गठन कर उन्हें बचत, सहयोग एवं स्वावलम्बन की प्रवृत्तियों की ओर प्रवृत्त किया जाता है। समूह की महिलाएँ नियमित बचत से राशि का आपसी लेनदेन करने के साथ–साथ स्वरोजगार से भी जुड़ रही है।

स्वयं सहायता समूह संस्थान की गतिविधियों के व्यापक प्रचार–प्रसार हेतु चालू वित्तीय वर्ष में सभी 7 संभाग मुख्यालयों पर ऐसे ही संस्थानों के भवन निर्माण का कार्य करवाये जाने के प्रस्ताव राज्य सरकार द्वारा स्वीकृत किये जा चुके हैं। भवन निर्माण के उपरान्त संभागों में भी प्रशिक्षण की गतिविधियाँ नियोजित रूप से वृहत् स्तर पर आयोजित हो सकेगी।

(v) महिला स्वयं सहायता समूह उत्पादन विपणन में विभाग की पहल

महिला समूहों दारा निर्मित उत्पादों को मार्केटों नेटवर्क उपलब्ध करवाने एवं इनकी बिक्री के लिए करवाई गई। इसी के साथ विभिन्न जिलों में होने वाले धार्मिक मेलों में भी उत्पादों की बिक्री करवाई जाती है। अन्य विभागों द्वारा आयोजित मेलों में विभाग समूहों को निज:शुल्क स्टील का आवंटन करवाई जा रही है।

राज्य में प्रायोजित सभी मेलों में आर्टिजन्स को भोजन सप्लाई / कच्ची रसोई का कार्य भी विभाग की महिला स्वयं सहायता समूहों को दिलवाने हेतु भी आवश्यक कार्यवाही प्रारम्भ की जा रही है। महिला समूहों को स्थानीय मार्केट में आने, उत्पादों की सुगमता से बिक्री करने एवं उत्पादों की गुणवत्ता को बढ़ाने के संदर्भ में वेण्डर डवलपमेन्ट प्रशिक्षण भी आयोजित करवाये जा रहे हैं।

(vi) भारत सरकार की विभाग द्वारा संचालित योजनाएँ

महिलाओं की आय वृद्धि एवं रोजगार की योजना के अन्तर्गत महिलाओं को प्रशिक्षण के माध्यम से स्वरोजगार प्रदान करने की योजना गैर सरकारी संगठनों के तारा संचालित है। स्वयं सेवी संस्थाओं से प्राप्त प्रस्तावों पर राज्य सरकार की अनुशंसा के आधार पर भारत सरकार द्वारा अनुदान स्वीकृत किया जाता है। महिलाओं के प्रशिक्षण हेतु नियमानुसार प्राप्त सभी प्रस्ताव अभिशांसित कर भारत सरकार को भिजवाये जाते है।

(vii) महिलाओं के प्रशिक्षण एवं रोजगार कार्यक्रम हेतु सहायता (स्टेप)

इस योजना के अन्तर्गत अल्प आय वर्ग की महिलाओं को रोजगार से जोड़ने हेतु भारत सरकार द्वारा अनुदान स्वीकृत किया जाता है। राज्य के 10 जिलों अजमेर, बीकानेर, भरतपुर,

पाली, जोधपुर, बांसवाड़ा, जयपुर, चूरू, भीलवाड़ा, उदयपुर में महिला डेयरी संघ संचालित है। इस कार्यक्रम में न केवल दूध उत्पादन एवं विपणन के माध्यम से पशुपालकों का सामाजिक एवं आर्थिक विकास हुआ है अपितु इन जिलों की ग्रामीण महिलाओं के लिए साक्षरता, ग्रामीण स्वास्थ्य एवं सफाई, स्वरोजगार कार्यक्रम एवं जागरूकता कार्यक्रम चलाकर उनकी सर्वांगीण विकास भी किया जा रहा है।

(viii) किशोरी शक्ति योजना

भारत सरकार से प्राप्त दिशा–निर्देशों के अनुसार किशोरी शक्ति योजना के 165 ब्लॉक्स में संचालित की जा रही है। इस हेतु शत–प्रतिशत भारत सरकार हारा उपलब्ध करवाई जाती है। 11–18 वर्ष की बालिकाएँ जो कभी स्कूल नहीं गई हो या मजदूरी पर जाती हो, उनका सर्वांगीण विकास हेतु चयन किया जाता है। बालिकाओं को लाभान्वित करने हेतु विभिन्न गतिविधियों यथा–प्रशिक्षण, एक्सपोजर विजिट, मेले, पुनश्चर्या प्रशिक्षण में बालिकाओं को साक्षरता, स्वच्छता, स्वास्थ्य, शारीरिक बदलाव, पारिवारिक हिंसा, छेड़छाड़, कौशल क्षमता की पहचान कराते हुए विभिन्न प्रतियोगिताएँ आयोजित की जा रही है। इनका मुख्य उद्देश्य बालिकाओं को समाज की मुख्य धारा से जोड़ना है।

(ix) एकीकृत महिला सशक्तिकरण योजना (स्वयं सिद्ध)

प्रदेश की महिलाओं में आर्थिक स्वायत्तता लाने तथा उनके विकास के लिए अन्तर विभागीय सेवाओं में समन्वय एवं जागरूकता के उद्देश्य से राज्य में इन्दिरा महिला योजना वर्ष 1995 में केन्द्र सरकार के सहयोग से आरम्भ की गई। इसे अब स्वयं सिद्ध योजना के नाम से जाना जाता है। योजना का उद्देश्य महिलाओं में विभिन्न सरकारी तथा गैर सरकारी योजनाओं के प्रति जागृति पैदा करना, उनका लाभ उठाने हेतु उन्हें शिक्षित करना तथा आय उपार्जित करने की विभिन्न गतिविधियों को प्रोत्साहित कर शिक्षा तथा जागरूकता के लिए एक अनवरत प्रक्रिया का विकास करना है।

(x) राट्रीय मातृत्व लाभ योजना (बीपीएल परिवारों के लिए)

बीपीएल परिवारों के लिए पहले दो जीवित बच्चों तक प्रत्येक गर्भ पर 5०० रूपये की सहायता दी जाती है। समाज कल्याण विभाग द्वारा यह योजना अक्टूबर 2000 को इस विभाग को स्थानान्तरित की गई।

(xi) महिला कार्यक्रमों के अन्तर्गत राज्य स्तरीय समितियाँ

राज्य में महिला विकास कार्यक्रम की देख–रेख, उनकी प्रगति समस्याओं के बारे में विचार करने एवं कार्यक्रम की क्रियान्विति के प्रशासनिक, वित्तीय आदि विषयों पर अंतिम निर्णय लेने हेतु मुख्य सचिव महोदय की अध्यक्षता में राज्यस्तरीय कमेटी का गठन किया गया है।

राज्य में महिला चेतना योजना की क्रियान्विति, उपलब्धियों की समीक्षा, समस्याएँ, सुझाव आदि देने हेतु एक राज्य स्तरीय कमेटी का गठन विकास आयुक्त की अध्यक्षता में किया गया है। इस समिति का प्रशासनिक विभाग, महिला एवं बाल विकास होता है।

(xii) महिला शक्ति अवार्ड हेतु समिति

राज्य में महिला शक्ति अवार्ड हेतु प्राप्त अभ्यावेदनों पर विचार कर पुरस्कार हेतु चयन करने के लिए मुख्य सचिव महोदय की अध्यक्षता में एक राज्य स्तरीय समिति का गठन किया गया है।

(xiii) डवाकरा परियोजना

ग्रामीण क्षेत्रों में महिला और बच्चों के विकास का कार्यक्रम योजना अप्रैल, 99 में प्रारम्भ हुई। यह अब स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना में समाहित कर दी गई है।

(xiv) समुदाय आधारित अभिसरक सेवाएँ कार्यक्रम हेतु समिति

समुदाय आधारित अभिसरक सेवाएं कार्यक्रम के क्रियान्वयन हेतु विकास आयुक्त एवं सचिव महोदय की अध्यक्षता में कार्यकारी समूह का गठन किया गया है।

महिला व बाल विकास विभाग, इस तरह महिला व बाल कल्याण सुधार हेतु विभिन्न परियोजनाओं व योजनाओं के प्रबन्धन के लिए राज्यस्तरीय महत्वपूर्ण विभाग है। इसके अन्तर्गत राष्ट्रीय जनसहयोग तथा बाल दिवस संस्थान (निपसिड) नई दिल्ली महिला एवं बाल विकास की अधिकांश योजनाओं में कार्यरत कार्य को प्रशिक्षण, अनुसंधान तथा परामर्श सेवाएं ही प्रदान करता है। इस विभाग की संरचनात्मक व कार्यात्मक विशिष्टता व गुणवत्ता से ही कार्यक्रमों की प्रभावी निष्पति सुनिश्चित की जा सकती है।

7.3.5 विभाग द्वारा संचालित समेकित बात विकास सेवा कार्यक्रम

राष्ट्रीय बाल नीति प्रस्तावों के अनुसरण में राज्य के बच्चों एवं महिलाओं को बेहतर जीवन की मूलभूत सुविधाएं उपलब्ध कराने के उद्देश्य से समेकित बाल विकास सेवा कार्यक्रम की प्रथम बाल विकास परियोजना बांसवाड़ा जिले की गढ़ी पंचायत समिति में वर्ष 1975 में प्रारम्भ की गई थी। वर्तमान में यह योजना विश्व बैंक, केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकार के संयुक्त सहयोग से संचालित हो रही है। इस कार्यक्रम के उद्देश्य एवं कार्यक्रम के अन्तर्गत दी जाने वाली सेवाओं का विवरण निम्नानुसार है –

1. वर्ग 0–6 के बच्चों के पोषण एवं स्वास्थ्य स्तर में सुधार लाना।
2. बच्चों के उचित मनोवैज्ञानिक, शारीरिक एवं सामाजिक विकास के लिए आधार तैयार करना।
3. बाल मृत्यु, रूग्णता, कुपोषण तथा बीच में पढ़ाई छोड़ने वाले बच्चों की दर में कमी लाना।

7.3.6 समेकित बात विकास सेवा कार्यक्रम के अन्तर्गत संचालित परियोजनाएं

समेकित बाल विकास सेवा कार्यक्रम वर्तमान में राज्य की सभी समितियों एवं एक लाख से अधिक जनसंख्या वाले 19 शहरों (20, शहरी खण्डों) में संचालित किया जा रहा है।

इसमें पूरक पोषाहार, प्रतिरक्षण (टीकाकरण), स्वास्थ्य जाँच, स्वास्थ्य शिक्षा, शाला पूर्व अनौपचारिक शिक्षा, स्वच्छ पेयजल, शुद्ध पर्यावरण एवं रैफरल सेवा इत्यादि सम्मिलित है। इसीलिए स्वास्थ्य, परिवार कल्याण तथा पोषाहार के अधिकांश कार्यक्रम यथा–दाई प्रशिक्षण, सुरक्षित मातृत्व कार्यक्रम, टीकाकरण कार्यक्रम, अनौपचारिक शिक्षा, बाल पोषण कार्य योजना, बेहतर स्वास्थ्य एवं पोषण शिक्षा कार्यक्रम, तीव्र श्वसन संक्रमण, नियन्त्रण तथा पूरक पोषाहार

तथा स्वास्थ्य शिक्षा कार्यक्रम इत्यादि "समेकित बाल विकास सेवाओं" के माध्यम से एकीकृत कर दिये गए है। ग्रामीण स्तर पर ये सेवाएं आंगनबाड़ी कार्यकर्ता तथा आंगनबाड़ी सहायिकाओं द्वारा किए जाते है। स्वास्थ्य विभाग की ए.एन.एम. तथा अन्य कार्मिक इन्हें सहायता प्रदान करते हैं। पंचायत समिति स्तर पर एक बाल विकास परियोजना अधिकारी द्वारा उस क्षेत्र के अधिकारियों को मार्गदर्शन प्रदान करता है। आंगनबाड़ी केन्द्रों को स्थायी भवन प्रदान करने के लिए अब ग्रामीण विकास अभिकरण निर्माण कार्य करवाता है। समेकित या एकीकृत बाल विकास योजना के अन्तर्गत अब अन्य कई बाल विकास कार्यक्रम भी समाहित कर दिए गए हैं। विश्व खाद्य कार्यक्रम भी समाहित कर दिए गए हैं। विश्व खाद्य कार्यक्रम, स्थानीय खाद्य सामग्री, केयर खाद्य सामग्री तथा विश्व बैंक की स्थानीय खाद्य सामग्री योजनाएं बाल विकास हेतु संचालित हो रही है। यूनिसेफ, नोराड तथा विश्व बैंक की सहायता से दिशा नामक प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं। विशिष्ट संघटक योजना जनजाति उपयोजना क्षेत्र तथा बीस सूत्री कार्यक्रम के अन्तर्गत भी समेकित बाल विकास सेवाओं को समर्थन दिया जा रहा है। जून, 2001 से राज्य के छः सर्वाधिक सूखा प्रभावित जिलों में यूनिसेफ की सहायता से "आँगन से आँचल" कार्यक्रम संचालित किया जा रहा है। कार्यक्रम के अन्तर्गत 2 वर्ष तक के बच्चों के पोषण तथा विकास पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है।

7.4 राजस्थान में महिला आयोग की स्थापना

राजस्थान में राज्य महिला आयोग की स्थापना हेतु राज्य सरकार द्वारा अप्रैल, 1999 को एक विधेयक राज्य विधानसभा में प्रस्तुत किया गया। इस विधेयक के पारित होने पर दिनांक 15 मई, 1999 को राज्य सरकार द्वारा जारी अधिसूचना के अनुसार राजस्थान राज्य महिला आयोग का गठन किया गया।

7.4.1 आयोग की संरचना

आयोग के अधिनियम की धारा 3 के अनुसार आयोग में राज्य सरकार द्वारा नियुक्त अध्यक्ष और सदस्य सचिव सहित चार से अधिक सदस्य होंगे। सदस्यों में से एक अनुसूचित जाति अथवा अनुसूचित जनजाति की और एक अन्य पिछड़ी जाति की महिला होगी। अध्यक्ष एक तथा चार सदस्य होते है।

7.4.2 आयोग के कार्य

अधिनियम की धारा 11 में आयोग के कार्यों का उल्लेख किया गया है। आयोग के मुख्य कार्य निम्न प्रकार से है –

1. महिलाओं के खिलाफ होने वाले किसी भी प्रकार के अनुचित व्यवहार की जांच करना, उस पर विनिश्चय करना और उस मामले में की जाने वाली कार्यवाही की सरकार को सिफारिश करना।
2. प्रवृत्त विधियों व उनके प्रवर्तन को महिलाओं के हित में प्रभावी बनाने के लिए कदम उठाना।

3. राज्य लोक सेवाओं और राज्य लोक उपक्रमों में महिलाओं के विरूद्ध किसी भी प्रकार के भेदभाव को रोकना।
4. महिलाओं की दशा में सुधार करने की दृष्टि से कदम उठाना, यथा–कल्याणकारी उपायों की सरकार को सिफारिश करना, समान अवसर प्रदान करवाने के उद्देश्य से सकारात्मक योजनाएं सरकार को सुझाना, महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दशा के सम्बन्ध में तुलनात्मक अध्ययन व आकड़ों के माध्यम से महिलाओं के अधिकारों के समर्थन की कार्यवाहियों को गति प्रदान करना।
5. आयोग की दृष्टि में यदि किसी भी लोक सेवक ने सरकार के हितों का संरक्षण करने में अत्यधिक उपेक्षा या उदासीनता बरती है तो उसके विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही के लिए सरकार से सिफारिश करना।
6. महिलाओं से संबंधित विद्‌यमान कानूनों की समीक्षा करना तथा महिलाओं को समुचित न्याय मिले, इस दृष्टि से कानून में आवश्यक संशोधन की सरकार से सिफारिश करना।

अधिनियम की धारा 14 के अनुसार आयोग राज्य सरकार को वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करता है। धारा 14 खण्ड (2) के अनुसार राज्य सरकार आयोग की सिफारिशों पर प्रस्तावित कार्यवाही व सिफारिशों को अस्वीकार किए जाने के कारणों के ज्ञापन सहित, आयोग की रिपोर्ट विधानमण्डल के सदन के समक्ष प्रस्तुत करती है।

7.4.3 आयोग की शक्तियाँ

अधिनियम की धारा 10 में विस्तृत रूप से आयोग की शक्तियों का उल्लेख किया गया है। धारा 10, खण्ड (1) के अनुसार आयोग को किसी भी जांच के प्रयोजन के लिए सिविल न्यायालय की शक्तियाँ प्रदत्त है। यदि आयोग इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि मामले में अनुचित व्यवहार किया गया है या मामले में कार्यवाही किए जाने का कोई विशेष आधार प्रतीत होता है, वहां आयोग राज्य सरकार को इस मामले में कार्यवाही करने की और अभियोजन प्रारम्भ करने की सिफारिश कर सकता है। धारा 12 खण्ड (4) के अनुसार आयोग की सिफारिशों की प्राप्ति की तारीख से तीन माह के भीतर राज्य सरकार उन पर विनिश्चय करने व आयोग को उसकी सूचना देने के लिए प्रतिबद्ध है।

अधिनियम की धारा 12 के तहत आयोग को महिलाओं के विरूद्ध होने वाले किसी भी अनुचित व्यवहार की जांच करने का अधिकार है। धारा 13 के अनुसार अन्वेषण पश्चात् यह समाधान हो जाने पर कि किसी व्यक्ति ने दाण्डिक अपराध किया है, संबंधित व्यक्ति के विरूद्ध आयोग अभियोजन प्रारम्भ कर सकेगा।

महिलाओं के विरूद्ध अत्याचार, हिंसा व उत्पीड़न की अनेकों घटनाओं पर अंकुश लगा पाने व प्रभावी रूप से अपनी महत्वपूर्ण कार्यों को सम्पादित कर पाने की दृष्टि से अधिनियम द्‌वारा प्रदत्त उपर्युक्त शक्तियां अत्यन्त महत्वपूर्ण है। समाज में महिलाओं के प्रति व्याप्त भेदभाव को दूर करने के लिए यह शक्तियां आयोग के लिए महत्वपूर्ण अस्त्र के रूप में कार्य करेगी व आयोग के लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग को सुगम बनाने में सहायक सिद्ध हो सकेगी।

उल्लेखनीय है कि केरल के बाद राजस्थान ही देश का दूसरा राज्य है जिसमें राज्य महिला आयोग को अभियोजन करने को अधिकार प्राप्त है। अधिनियम में इन शक्तियों का समायोजन राज्य की जनता, विधायिक व सरकार की महिला अधिकारों के प्रति संवेदनशील विचारधारा का परिचायक हैं।

7.4.4 आयोग के कार्यक्षेत्र

राज्य महिला आयोग राज्य में महिलाओं पर अत्याचार, दुराचार, असमानता इत्यादि के संबंध में प्राप्त सभी शिकायतों पर कार्यवाही करता है, चाहे व शिकायत लिखित रूप में प्राप्त हुई हो, मौखिक रूप में हो अथवा किसी अन्य आधार पर आयोग द्वारा संज्ञान लिया गया हो। लिखित रूप में की जाने वाली शिकायत महिला आयोग को सम्बोधित होनी आवश्यक है।

आयोग में महिला उत्पीड़न के विभिन्न मामले दहेज, दहेज के कारण क्रूरता, दहेज हत्या, घरेलू हिंसा, बलात्कार, यौन शोषण, कार्यस्थल पर यौन शोषण, रोजगार में भेदभाव, जमीन–जायदाद में हिस्सा न देना, उत्तराधिकार, द्विविवाह, पति द्वारा अभित्यजन, संबंधियों द्वारा यौन शोषण आदि से संबंधित शिकायतें दर्ज हुई है। आयोग में दिनांक 01.04.2005 से 31.03.2006 तक की अवधि में कुल 2682 शिकायतें जन सुनवाई में, लिखित शिकायत तथा व्यक्तिगत सुनवाई में प्राप्त हुई, जिनमें 963 लिखित तथा 380 व्यक्तिगत सुनवाई में शिकायतें प्राप्त हुई। राज्य महिला आयोग राज्य के सभी जिलों में भी जन सुनवाईयों का आयोजन कर उन शिकायतों की सुनवाई करता हैं, जो आयोग कार्यालय तक नहीं पहुंच पाती है। इस जनसुनवाई के दौरान 1339 प्रकरण आयोग को प्राप्त हुए।

आयोग, प्राप्त शिकायतों में निम्न प्रकार से कार्यवाही करता है –

1. पुलिस द्वारा किए जा रहे जांच कार्य को गति प्रदान करना।
2. विभिन्न अधिकारियों द्वारा महिला उत्पीड़न संबंधी मामलों में निश्चित अवधि में कार्यवाही सुनिश्चित करवाना।
3. कामकाजी महिलाओं को यौन उत्पीड़न से सुरक्षा हेतु1997 में विशाखा बनाम राजस्थान राज्य वाद में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देशानुसार हर विभाग व संस्थान में कामकाजी महिलाओं के यौन उत्पीड़न रोकथाम हेतु कमेटी के गठन द्वारा त्वरित कार्यवाही एवं उनका निवारण सुनिश्चित करवाना।
4. गम्भीर मामलों में घटना स्थल पर जाकर जांच करना।

ऐसे मामलों में जिनमें आयोग उचित समझता है, पीड़िता एवं प्रतिपक्ष की व्यक्तिगत सुनवाई करवाना तथा पक्षकारों को राहत प्रदान करने के लिए उचित कार्यवाही सुनिश्चित करना। आयोग पक्षकारों द्वारा शिकायत प्राप्त होने पर आपसी बातचीत द्वारा समाधान करवाने का प्रयास करता है। इस कार्य के लिए आयोग द्वारा सप्ताह में निर्धारित दो दिनों (बुधवार–वृहस्पतिवार) में विभिन्न प्रकरणों से संबंधित पक्षकारों को व्यक्तिगत सुनवाई के लिए बुलाया जाता है।

7.5 सारांश

इस इकाई के अन्तर्गत महिला तथा बाल विकास के क्षेत्र में राज्य स्तर पर कार्यरत दो प्रमुख अभिकरणों यथा महिला एवं बाल विकास विभाग तथा राज्य महिला आयोग स्थापना, गठन, कार्यक्रम दायित्व एवं भूमिका का विस्तृत विवेचन किया गया है। विषयवस्तु की आवश्यकता को देखते हुए यथा स्थान पर आकड़ों एवं तथ्यों का भी समावेश किया गया है। आकड़े और तथ्यों का परिवर्तन होना स्वाभाविक है। अत: उनकी विश्वसनीय और बदलाव की स्थिति को देखने के लिए संबंधित अभिकरणों के वार्षिक प्रतिवेदन और उनके द्वारा समय–समय पर जारी विभिन्न दस्तावेजों के माध्यम से अपने अध्ययन को अधिक सारगर्भित बनाया जाना संभव है।

7.6 शब्दावली

1. **सातवीं अनुसूची –** भारतीय संविधान में उक्त अनुसूची जो कि तीन सूचियों यथा–संघ, राज्य तथा समवर्ती सूची माध्यम से संघीय सरकार एवं राज्य सरकारों को विधायी, कार्यकारी तथा न्यायिक कार्यों का वितरण किया जाना।
2. **समेकित नीति –** वांछित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए भावी रूपरेखा के विभिन्न आयामों का समग्रीकरण।
3. **कार्य आवंटन नियम –** भारत के राष्ट्रपति द्वारा निरूपित नियमों की पुस्तिका जिसके माध्यम से भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों एवं विभागों को कार्यों दायित्वों का आवंटन किया जाता है।
4. **प्रचेता –** महिला विकास कार्यक्रम को लागू करने के लिए पंचायत समिति स्तर पर एक पद होता है।
5. **साथिन –** महिला विकास कार्यक्रम से जुड़ी ग्राम स्तरीय महिला।
6. **स्वयं सहायता समूह –** स्थानीय स्तर पर गठित महिलाओं का वह समूह जो कि बचत सहयोग एवं आर्थिक सशक्तिकरण पर प्रयास करता है।

7.7 अभ्यास प्रश्न

1. राजस्थान राज्य की महिला नीति के प्रमुख उद्देश्यों एवं घटकों का वर्णन कीजिए।
2. आपके राज्य के महिला एवं बाल विकास विभाग के गठन एवं कार्यों की विवेचना कीजिए।
3. राजस्थान राज्य के महिला आयोग की संरचना, कार्यों एवं शक्तियों का मूल्यांकन कीजिए।

7.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कटारिया, सुरेन्द्र : सामाजिक प्रशासन, आर.बी.एस पब्लिशर्स, जयपुर, 2002
2. डॉ. शर्मा, रविन्द्र : राज्य प्रशासन, कॉलेज बुक हाऊस, जयपुर, 1996
3. डॉ. शर्मा, अशोक : भारत में स्थानीय प्रशासन, आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, जयपुर, 1995
4. वार्षिक प्रतिवेदन (2006–07) : महिला एवं बाल विकास विभाग, राजस्थान, जयपुर।
5. वार्षिक प्रतिवेदन (2006–07) : राज्य महिला आयोग, राजस्थान सरकार, जयपुर।

इकाई–8

अनुसूचित जाति एवं जनजाति कल्याण: नीति–नियोजन तथा प्रशासनिक तंत्र

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 अनुसूचित जाति एवं जनजातियाँ: नीति–नियोजन एवं संवैधानिक प्रावधान

8.3 प्रशासनिक संगठन

8.4 राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग

 8.4.1 संगठन

 8.4.2 आयोग के कार्य

 8.4.3 शक्तियाँ

8.5 सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता विभाग

 8.5.1 कार्य

 8.5.2 राजस्थान राज्य समाज कल्याण सलाहकार मण्डल

 8.5.3 वित्तीय व्यवस्था

 8.5.4 मण्डल की परियोजनाएँ

 8.5.5 सामान्य अनुदान सहायता कार्यक्रम

8.6 सारांश

8.7 शब्दावली

8.8 अभ्यास प्रश्न

8.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

8.0 उद्देश्य

अनुसूचित जाति एवं जनजाति कल्याण हेतु नीति–नियोजन तथा प्रशासनिक तंत्र नामक इकाई का उद्देश्य इस वर्ग के कल्याण हेतु संवैधानिक प्रावधान नीति नियोजन की विवेचना करना है साथ ही केन्द्र एवं राज्य स्तर पर कार्यरत उन सरकारी प्रशासनिक अभिकरणों की विवेचना करना है, जिनका दायित्व पूर्णतया अथवा आंशिक रूप में अनुसूचित जाति एवं जनजाति कल्याण के विभिन्न नीति–नियोजन तथा कार्यक्रमों का निष्पादन करना है।

8.1 प्रस्तावना

भारतीय संविधान समानता, विकास एवं समान अवसर के प्रति वचनबद्ध है। इस वचनबद्धता को कार्यरूप में परिणित करने के लिए भारत संविधान में अनुसूचित जातियों व जनजातियों के लिए पर्याप्त उपबन्ध एवं प्रावधान है। नीति–निर्देशन तत्व भी सरकार को यह

निर्देश देते है कि वे समाज के कमजोर एवं पिछड़े वर्गो के शिक्षा एवं अर्थ संबंधी हितों में अभिवृद्धि करते हुए सामाजिक अन्याय तथा सभी प्रकार के शोषण से उनकी सुरक्षा करने के उत्तरदायित्व का पूर्णरूपेण निर्वाह करे। तदनुसार प्रथम पंचवर्षीय योजना के शुभारम्भ के साथ ही वर्ष 1951–52 में समाज के कमजोर एवं पिछड़े हुए वर्गों के संरक्षण तथा उनके सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक विकास के लिए अनेकों कार्यक्रम बनाये और उन कार्यक्रमों को लागू करने के लिए समय–समय पर सांगठनिक संरचनाओं की स्थापना की जाती रही है।

8.2 अनुसूचित जातियां एवं जनजातियां : नीति–नियोजन एवं संवैधानिक प्रावधान

संविधान में इसकी परिभाषा नहीं दी गई है कि वे कौन–से व्यक्ति है जो उक्त जातियों की श्रेणी में आते हैं। अनु. 341 और 342 राष्ट्रपति को इन जातियों को विनिर्दिष्ट करने की शक्ति प्रदान करता है। राष्ट्रपति लोक सूचना द्वारा उन जातियों को उल्लिखित करेगा जो उस प्रयोजन के लिए अनुसूचित जातियां या अनुसूचित जनजातियां समझी जायेगी। यदि ऐसी कोई अधिसूचना किसी राज्य से संबंधित है तो वह राज्यपाल के परामर्श से की जा सकेगी। संसद विधि द्वारा खण्ड (1) के अधीन निकाली अधिसूचना में उल्लिखित सूची के अन्तर्गत किसी जनजाति या जनजाति के समुदायों को सम्मिलित कर सकती है या निकाल सकती है। कोई जनजाति इस अनुच्छेद के अंन्तर्गत जनजाति है या नहीं, हमें राष्ट्रपति के द्वारा निकाली गई अधिसूचना पर ध्यान देना होगा। अनुसूचित जातियों की श्रेणी के संबंध में राष्ट्रपति का आदेश पर्याप्त है। इस सूची की मान्यता पर इस आधार पर आपत्ति नहीं की जाएगी कि इसमें किसी उपजाति को अनुसूचित जाति के रूप में उल्लिखित नहीं किया गया है।

संविधान उपर्युक्त जातियों के हितों के संरक्षण के लिए निम्न उपबन्ध की व्यवस्था करता है –

लोकसभा तथा राज्य–विधानसभाओं में स्थानों का आरक्षण– अनु. 330 और 332 के अधीन लोकसभा तथा राज्यों की विधानसभाओं में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थान आरक्षित किए जाने का उपबन्ध किया गया है। अनु. 330 यह उपबन्धित करता है कि लोकसभा में (क) अनुसूचित जातियों के लिए, (ख) अनुसूचित जनजाति सिवाए असम के स्वशासी जिलों की अनुसूचित जनजातियों को छोड़कर, (ग) असम के स्वशासी जिलों की अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थान आरक्षित रहेंगे। अनु. 332 यह उपबन्धित करता है कि प्रत्येक राज्य की विधानसभा में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए (असम के स्वशासी जिलों की अनुसूचित जनजातियों को छोड़कर) स्थान आरक्षित रहेंगे तथा असम राज्य की विधानसभा में स्वशासी जिलों के लिए भी स्थान आरक्षित रहेंगे। स्थानों का आरक्षण जनसंख्या के आधार पर किया जाएगा। 42 वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा इस अनुच्छेद में संशोधन करके यह स्पष्ट कर दिया गया था कि इस प्रयोजन के लिए जनसंख्या से तात्पर्य सन् 1971 में की गई जनगणना पर आधारित जनसंख्या है और वह सन् 2000 तक वैसे ही बनी रहेगी। इसका तात्पर्य यह था कि इन वर्गो के लिए लोकसभा और

राज्यों की विधानसभाओं में स्थानों का आरक्षण सन् 2000 तक सन् 1971 की जनगणना के आधार पर ही किया जायेगा और नयी जनगणना का इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। अब संविधान के 84 वें संशोधन अधिनियम, 2000 द्वारा अनु. 330 और 332 में संशोधन किया गया है और इस प्रयोजन हेतु 'जनसंख्या' को पुन: परिभाषित किया गया है। इस संशोधन द्वारा अनु. 330 के स्पष्टीकरण के परन्तुक में संख्या 2000 और 1971 के स्थान पर संख्या 2026 और 1991 अन्तःस्थापित की गई है।

8.3 प्रशासनिक संगठन

अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के सामाजिक, शैक्षणिक एवं आर्थिक उत्थान के लिए निर्मित नीति– नियोजन एवं कार्यक्रमों को लागू करने के लिए अनेकों प्रशासनिक अभिकरणों का गठन किया गया है। इस इकाई में निम्नलिखित तीन महत्वपूर्ण अभिकरणों का विवेचन किया जाएगा –

(1) राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग

(2) राज्य सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता विभाग

(3) राज्य समाज कल्याण सलाहकार बोर्ड

8.4 राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग

राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग, एक संवैधानिक संस्था है। संविधान के अनुच्छेद–338 में यह प्रावधान किया गया है कि अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए वर्णित संवैधानिक रक्षा उपायों के संबंध में जांच करने तथा राष्ट्रपति को प्रतिवेदन देने के लिए एक विशेष अधिकारी होगा। इस प्रावधान के अनुसरण में भारत सरकार ने संविधान प्रवर्तन के साथ ही इन वर्गों के विशेष अधिकारी (आयुक्त) तथा क्षेत्रीय कार्यालयों की स्थापना की। संसद में तथा अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयुक्त के द्वारा बार–बार यह मांग की गई कि इस कार्यालय को एक सदस्यीय आयुक्त के बजाय बहुसदस्यीय बनाया जाए। 21 जुलाई, 1978 को चार सदस्यों से युक्त आयोग के गठन का निर्णय लिया गया, अत: अगस्त, 1978 में श्री भोला पासवान शास्त्री की अध्यक्षता में प्रथम "अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग" गठित हुआ। इस समय आयोग को पिछड़ी जातियों के कार्य भी सौंपे गए थे। एक सितम्बर,1987 को कल्याण मंत्रालय के आदेशों द्वारा इस आयोग का नाम "राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग" किया गया।

सन् 1990 में पारित संविधान के 65 वें संशोधन के माध्यम से "राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग" के स्वरूप, कार्यों तथा शक्तियों का वर्णन कर दिया गया है। यह संशोधन (अनु. 338) 8 जून, 1990 को अधिसूचित किया गया तथा 3 नवम्बर, 1990 को तत्सम्बन्धी नियम प्रकाशित हुए। 65 वें संविधान संशोधन के पश्चात् 12 मार्च, 1992 को श्री रामधन की अध्यक्षता में नया आयोग गठित हुआ तथा 5 अक्टूबर, 1995 को

श्री एच. हनुमन्थप्पा की अध्यक्षता में दूसरा आयोग गठित किया गया। दिसम्बर, 1998 में श्री दिलीप सिंह भूरिया की अध्यक्षता में आयोग पुनर्गठित किया गया।

8.4.1 संगठन

राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग में एक अध्यक्ष, एक उपाध्यक्ष तथा तीन अन्य सदस्य होते हैं जिनमें एक सदस्य महिला होती है। आयोग के सदस्यों का कार्यकाल पाँच वर्ष का होता है। आयोग के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति की मुहर तथा हस्ताक्षर द्वारा की जाती है। यदि आयोग का अध्यक्ष अनुसूचित जाति का हो तो उपाध्यक्ष अनुसूचित जनजाति का होता है अथवा इसके विपरीत स्थिति रखी जाती है। आयोग के अध्यक्ष को पद से हटाने हेतु कदाचार के आधार पर राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा जांच (अनु. 145) करवा सकता है जबकि उपाध्यक्ष एवं सदस्यों को साधारण कारणों से हटाया जा सकता है। आयोग की रिपोर्ट संसद तथा राज्य विधानमण्डलों में प्रस्तुत की जाती है। आयोग के प्रशासनिक कार्यों को पूरा करने के लिए एक सचिव, एक संयुक्त सचिव तथा कई निदेशक एवं अन्य कार्मिक कार्यरत है। आयोग के मुख्यालय के सचिवालय को चार प्रमुख खण्डों में विभक्त किया गया है –

1. प्रशासन एवं समन्वय खण्ड
2. सेवा एवं रक्षोपाय खण्ड
3. अत्याचार तथा नागरिक अधिकार संरक्षण खण्ड
4. आर्थिक एवं सामाजिक विकास खण्ड

आयोग के यह खण्ड अपने–अपने क्षेत्र से संबंधित उन कानूनों, नीतियों, कार्यक्रमों तथा सरकारी योजनाओं पर निगरानी रखते हैं जो अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के कल्याण हेतु बनाई एवं क्रियान्वित की जा रही है। राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग के राज्यों में भी क्षेत्रीय कार्यालय है। राज्यों में स्थित आयोग के कार्यालयों का संचालन निदेशक, उपनिदेशक, सहायक निदेशक अथवा अनुसंधान अधिकारी करते है।

8.4.2 आयोग के कार्य

राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग निम्न कार्यों के लिए उत्तरदायी है –

1. संविधान के अन्तर्गत या किसी अन्य कानून अथवा सरकार के किसी आदेश के तहत अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को प्रदान किए गए सुरक्षापायों के सम्बद्ध में सभी मामलों की जांच करना और मॉनीटर करना तथा ऐसे सुरक्षापायों के कार्यकरण का मूल्यांकन करना,
2. अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को अधिकारों तथा सुरक्षापायों से वंचित करने संबंधी विशेष शिकायतों की जांच करना,

3. अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सामाजिक– आर्थिक विकास की योजना प्रक्रिया में भाग लेना तथा सलाह देना एवं संघ या किसी राज्य के अन्तर्गत उनके विकास की प्रगति की समीक्षा करना,
4. राष्ट्रपति को इन सुरक्षापायों के कार्यकरण पर वार्षिक रूप से या किसी ऐसे अन्य समय में जिसे आयोग उचित समझे, रिपोर्ट प्रस्तुत करना,
5. उन उपायों के बारे में ऐसी रिपोर्ट या सिफारिश करना जो अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के कल्याण, सुरक्षा तथा आर्थिक विकास के लिए किसी राज्य या संघ सरकार द्वारा किए जाने चाहिए और
6. अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के कल्याण, सुरक्षा, विकास तथा उन्नति के सम्बन्ध में ऐसे अन्य कार्यों को करना, जो राष्ट्रपति द्वारा संसद के किसी कानून द्वारा या किसी नियम द्वारा विनिर्दिष्ट किये जाये।

8.4.3 शक्तियाँ

राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग को सिविल न्यायालय की शक्तियाँ (सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908) भी दी गई हैं, जो विशेष रूप से निम्नलिखित के सम्बन्ध में होगी –

1. भारत के किसी भी भाग से किसी व्यक्ति को बुलाने और उसकी उपस्थिति सुनिश्चित करने तथा शपथ पर परीक्षण करने,
2. किसी दस्तावेज की तलाश करवाने और उसे पेश करवाने,
3. शपथ–पत्रों पर साक्ष्य लेने,
4. किसी भी अदालत अथवा कार्यालय से कोई सार्वजनिक अभिलेख या उसकी प्रति प्राप्त करने,
5. साक्षियों और प्रलेखों के परीक्षण के लिए आदेश जारी करने तथा
6. अन्य कोई मामला जिसे राष्ट्रपति नियम दारा निर्धारित करे।

आयोग का प्रशासनिक मंत्रालय भारत सरकार का सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय है। इस आयोग को सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार से प्रशासनिक तथा तकनीकी सहायता प्राप्त होती है।

राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग मुख्यत: नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 (PCR Act), अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचारों की रोकथाम) अधिनियम, 1989 (POA Act), वन संरक्षण अधिनियम, 1980, पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तार) अधिनियम, 1986 तथा बन्धुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम, 1976 की क्रियान्वियन में आ रही बाधाओं तथा कमियों के क्रम में कार्यवाही करता है। उपयुक्त कानूनों के अतिरिक्त अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण, विकास तथा संरक्षण के लिए बनने संवैधानिक प्रावधानों, प्रशासनिक नियमों, आरक्षण एवं अत्याचारों के संबंध में शिकायतों के निवारण, जांच तथा मॉनीटरिंग का कार्य करता है ।

अनुच्छेद 338 (9) यह प्रावधान करता है कि संघ तथा राज्य सरकारें अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के क्रम में नीतिगत निर्णय लेते समय इस आयोग से परामर्श करेगी।

8.5 सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता विभाग

राजस्थान शासन सचिवालय में 1950 में "पिछड़ी जाति कल्याण विभाग" की स्थापना की गई। इस विभाग को 1956 में "समाज कल्याण विभाग" का नाम दिया गया । यह विभाग 1950 से 1956 तक पिछड़ी जातियों से संबंधित कार्य करता था। 1956 में इस विभाग को महिला एवं बाल विकास से संबंधित कार्य भी सौंप दिए गए। सरकारी नीतियों व कार्यक्रमों में आए बदलावों से विभाग की कार्य सूची में भी परिवर्तन होता रहा। महिला एवं बाल विकास विभाग की स्थापना के पश्चात् इस विभाग से पोषाहार कार्यक्रम नये विभाग को दे दिया गया। कुछ समय पूर्व इसे नया नाम दिया गया है, वह है "सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता विभाग"।

सामाजिक न्याय व अधिकारिता विभाग के शीर्ष पर राजनीतिक निर्देशन हेतु एक कैबिनेट होता है जिसे कभी इस विभाग का स्वतन्त्र प्रभार तो कभी अन्य विभागों का कार्य भी देखना होता है। समाज कल्याण विभाग तथा राज्य मंत्रिपरिषद के बीच मध्यस्थ की भूमिका मंत्री ही निभाता है। समाज की नीतियों, कार्यक्रमों तथा योजनाओं के निर्धारण तथा राज्य सामाजिक प्रशासन पर नियन्त्रण निर्देशन का कार्य मंत्री ही करता है। शासन सचिवालय में विभाग का मुख्य प्रशासनिक अधिकारी शासन सचिव (सामाजिक न्याय व अधिकारिता विभाग) होता है। यह पद भारतीय प्रशासनिक सेवाओं के वरिष्ठ अधिकारी द्वारा धारण किया जाता है। शासन सचिव, सामाजिक न्याय व अधिकारिता विभाग की समस्त नीतियों तथा कार्यक्रमों के निर्माण तथा बजट निर्धारण में मंत्री के प्रमुख परामर्शदाता व प्रशासनिक सहायता की भूमिका निभाता है। राज्य के अन्य विभागों तथा केन्द्रीय कल्याण मंत्रालय सहित अन्य संलग्न अभिकरणों से समन्वय का कार्य भी शासन सचिव ही करता है। विभाग की प्रशासनिक संरचना पर नियन्त्रण, निर्देशन, पर्यवेक्षण, नेतृत्व तथा कार्मिक प्रबन्ध उत्तरदायित्व शासन सचिव द्वारा ही वहन किए जाते है। सामाजिक न्याय व अधिकारिता विभाग से संबंधित केन्द्रीय तथा राज्य सरकार के कार्यक्रमों की सफल क्रियान्विति सुनिश्चित करना तथा उनका मूल्यांकन करना भी इसी अधिकारी का उत्तरदायित्व है।

निदेशालय स्तर पर सामाजिक न्याय व अधिकारिता विभाग एक निदेशक एवं पदेन उपशासन सचिव द्वारा निर्देशित किया जाता है। यह पद भी प्रशासनिक सेवाओं के अधिकारियों से ही भरा जाता है। निदेशक की सहायता हेतु निदेशालय में दो अतिरिक्त निदेशक (प्रशासन तथा पिछड़ी जाति), एक परियोजना निदेशक (विशिष्ट संघटक योजना), पांच उपनिदेशक एक मुख्य लेखा अधिकारी, एक सहायक विधि परामर्शी, एक एनालिस्ट कम प्रोग्रामर, परियोजना निदेशक (परियोजना सृजन) तथा परियोजना निदेशक (आर.आर.ई.आई.एस.) तथा अन्य अधिकारियों के पद सृजित है। जिला स्तरीय अधिकारी के रूप में 10 जिलों में उप निदेशक, 13 जिलों में सहायक निदेशक तथा शेष 9 जिलों में जिला परिवीक्षा एवं सामाजिक न्याय व अधिकारिता विभाग अधिकारी कार्यरत है। जयपुर, कोटा, जोधपुर, अजमेर, उदयपुर तथा बीकानेर में संभागीय स्तर पर संयुक्त निदेशक कार्यरत थे लेकिन अब यह पद समाप्त कर दिए गए है।

जिला पुनर्वास केन्द्र, कोटा में एक संयुक्त निदेशक स्तर का पद सृजित है। परीक्षा पूर्व प्रशिक्षण केन्द्र जयपुर में एक संयुक्त निदेशक स्तर का आवासीय अधिकारी तथा अजमेर में एक उपनिदेशक स्तर का आवासीय अधिकारी कार्यरत है। यह सम्पूर्ण प्रशासनिक संरचना निदेशालय, समाज कल्याण विभाग के अधीन स्थापित है।

निदेशक तथा अतिरिक्त निदेशक (प्रशासन) के पदों पर ही प्रशासनिक सेवाओं के अधिकारी पदस्थापित है। शेष सभी संयुक्त निदेशक, उपनिदेशक तथा अन्य अधिकारी, कर्मचारीगण समाज कल्याण विभाग में ही पदोन्नति प्राप्त कर पदस्थापित होते हैं।

समाज कल्याण निदेशालय को प्रशासनिक कार्य संचालन की दृष्टि से निम्नांकित आठ इकाइयों में विभक्त किया गया है –

1. संस्थापना यूनिट
2. पिछड़ी जाति यूनिट
3. लेखा एवं अंकेक्षण यूनिट
4. विशिष्ट संघटक योजना तथा समन्वय यूनिट
5. एनालिस्ट कम प्रोग्रामर यूनिट (कम्प्यूटर)
6. सामाजिक सुरक्षा तथा नि:शक्तजन कल्याण यूनिट
7. परियोजना सृजन यूनिट
8. राजस्थान आवासीय शैक्षिक संस्था सोसायटी यूनिट

सामाजिक न्याय व अधिकारिता विभाग के कार्यों में सहायक की भूमिका निभाने वाले संगठनों में "राजस्थान अनुसूचित जाति, जनजाति वित्त एवं सहकारी विकास निगम लि. ‘‘(1980 से)," राजस्थान अन्य पिछड़ा वर्ग वित्त एवं विकास निगम लि.(2000 से)", "राजस्थान अल्पसंख्यक वित्त एवं विकास सहकारी निगम लि. (2000 से) " अग्रणी है, जो "राजस्थान सहकारी समितियाँ अधिनियम, 1965" के अन्तर्गत पंजीकृत है तथा संबंधित वर्ग के लोगों के आर्थिक उत्थान का कार्य करते हैं। यह निगम राष्ट्रीय स्तर के निगमों में रियायती दरों पर ऋण प्राप्त करके जिला स्तरीय केन्द्रीय सहकारी बैंकों के माध्यम से योजनाएं संचालित करते हैं।

8.5.1 सामाजिक न्याय व अधिकारिता विभाग के कार्य

इस विभाग के निम्न कार्य है –

1. समाज कल्याण से संबंधित संवैधानिक प्रावधानों की क्रियान्विति करना।
2. केन्द्र सरकार द्वारा वित्त पोषित तथा निर्देशित कल्याण कार्यक्रमों की राज्य में क्रियान्विति करना।
3. राज्य सूची के विषय पर सामाजिक कानून तथा योजनाओं का निर्माण करना।
4. इन कल्याण परियोजनाओं की मॉनीटरिंग तथा मूल्यांकन का कार्य करना।
5. सामाजिक विकास से संबंधित कार्यों में अन्य विभागों (केन्द्र तथा राज्य स्तरीय) से समन्वय स्थापित करना

6. समाज कल्याण गतिविधियों के लिए बजट निर्माण तथा वित्त व्यवस्था करना।
7. सामाजिक कानूनों की क्रियान्विति सुनिश्चित करना।
8. पिछड़ी जाति, निःशक्तजन, भिक्षुक, निराश्रित, नशेड़ी, बाल तथा किशोर अपराधी तथा महिला एवं बाल विकास गतिविधियों पर नियन्त्रण तथा कल्याण परियोजनाएं संचालित करना।
9. सामाजिक न्याय व अधिकारिता विभाग से संबंधित कार्मिकों के सेवीवर्गीय प्रशासन का संचालन करना।
10. सामाजिक न्याय व अधिकारिता विभाग की अधीनस्थ संस्थाओं, भवनों, कार्यालयों तथा छात्रावासों इत्यादि की स्थापना तथा रख–रखाव करना।
11. स्वैच्छिक संगठनों को अनुदान तथा उनका निरीक्षण एवं नियन्त्रण करना।
12. सामाजिक न्याय व अधिकारिता विभाग से सम्बन्धित सांख्यिकी तथा तथ्यों का एकत्रण करना।

राजस्थान राज्य समाज कल्याण विभाग के छः संभागीय संयुक्त निदेशक क्रमशः जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, कोटा, अजमेर तथा बीकानेर संभागों में पदस्थापित थे लेकिन विभागीय तार्किकीकरण पुनर्गठन के अन्तर्गत यह कार्यालय अब बन्द हो चुके है। जब जिला स्तरीय कार्यालय ही महत्वपूर्ण प्रशासनिक इकाई रह गए है।

जिला स्तर पर सामाजिक प्रशासन के तहत राजस्थान के 10 जिलों में समाज कल्याण विभाग का मुखिया उप निदेशक होता है। जयपुर, कोटा, अजमेर, उदयपुर, बीकानेर, भरतपुर, भीलवाड़ा, बारां, चित्तौड़गढ़ तथा जोधपुर में पदस्थापित उप निदेशकों के पास शेष प्रशासनिक व्यवस्था वहीं है जो अन्य जिलों के सहायक निदेशकों या जिला परिवीक्षा तथा सामाजिक न्याय व अधिकारिता विभाग के अधिकारियों के पास है। जिला स्तरीय समाज कल्याण अधिकारियों की भर्ती राजस्थान लोक सेवा आयोग से की जाती है।

सामाजिक न्याय व अधिकारिता विभाग की जिला स्तरीय प्रशासनिक संरचना विभाग के कार्यक्रमों को क्षेत्रीय स्तर पर क्रियान्वित करने के लिए उत्तरदायी है। विभाग द्वारा संचालित संस्थाओं का पर्यवेक्षण तथा नियन्त्रण जिला समाज कल्याण विभाग द्वारा ही किया जाता है। राजस्थान में जिला स्तरीय समाज कल्याण प्रशासनिक संरचना को निम्न कार्य सौंपे गए है –

1. महिला, बालक, वृद्ध, निःशक्तजन, नशेड़ी, बाल अपराधी तथा पिछड़े वर्गो से संबंधित समाज कल्याण कार्यक्रमों का संचालन करना।
2. विभाग के अधीन तथा सम्बद्ध सेवा सदनों, छात्रावासों, शिशु गृहों, वृद्ध एवं अशक्त गृहों, सम्प्रेक्षण तथा बालक गृहों का निरीक्षण तथा रख–रखाव करना।
3. अनुसूचित जाति और जनजाति के विरूद्ध होने वाले अत्याचारों तथा शोषण की शिकायत का निवारण तथा जांच करना एवं तत्काल सहायता पहुंचाना।
4. जिला स्तर पर कार्यरत अन्य विभागों, पंचायत राज संस्थाओं तथा स्वैच्छिक संस्थाओं से सहयोग लेना तथा समन्वय स्थापित करना।

5. नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 तथा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की क्रियान्विति सुनिश्चित करना।
6. किशोर न्याय अधिनियम, 1986 के अन्तर्गत परिवीक्षा पर छोड़े जाने वाले किशोरों की पारिवारिक तथा चरित्र रिपोर्ट तैयार करना।
7. विभिन्न प्रकार की छात्रवृत्तियों के आवेदन–पत्रों की प्राप्ति तथा स्वीकृति जारी करना।
8. परीक्षा पूर्ण प्रशिक्षण केन्द्रों तथा अम्बेडकर–एकलव्य प्रशिक्षण संस्थानों का संचालन करना।
9. जिला कलेक्टर की अध्यक्षता में बनी समिति में रिपोर्ट प्रस्तुत करना।
10. विभिन्न कार्यक्रमों, योजनाओं तथा केन्द्रों की प्रगति रिपोर्ट निदेशालय को प्रेषित करना।
11. सामाजिक न्याय व अधिकारिता विभाग तथा समाज रक्षा से संबंधित विषयों पर जनशिक्षा तथा चेतना प्रसार के प्रयास करना तथा विभाग के कार्यक्रमों के बारे में जनसाधारण को सूचित करना।
12. स्वैच्छिक संगठनों को परामर्श तथा पर्यवेक्षण प्रदान करना।
13. जिन जिलों में परिवीक्षा तथा कारागृह कल्याण अधिकारी हैं, वहां जेल में बन्द कैदियों की समस्या– समाधान तथा कल्याण कार्य करना।

सामाजिक न्याय व अधिकारिता विभाग, राजस्थान दारा संचालित किए जा रहे विभिन्न समाज कल्याण तथा योजनाओं का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है –

(i) शैक्षणिक विकास के कार्य

अनुसूचित जाति, जनजाति, विमुक्त एवं घुमन्तु जाति के छात्रा /छात्राओं को नि:शुल्क छात्रावासीय सुविधाएं उपलब्ध करवाने हेतु विभाग तारा सभी जिलों में छात्रावास संचालित किए जा रहे हैं। इनके अतिरिक्त स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा चलाए जा रहे छात्रावासों को सामाजिक न्याय व अधिकारिता विभागद्वारा अनुदान भी दिया जाता है। इन सभी छात्रावासों में आवास, भोजन, वस्त्रादि तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण की नि:शुल्क सुविधाएं उपलब्ध करवाई जाती है। जनजाति क्षेत्रों में "आश्रम स्कूल" विभाग द्वारा संचालित किए जा रहे हैं। वर्ष 1997–98 से टोंक में बालिकाओं हेतु तथा अटरू (बारां) में बालकों हेतु आवासीय विद्यालय संचालित किए जा रहे हैं। इन छात्रावासों के छात्र–छात्राओं के मध्य जिला स्तर पर खेलकूद प्रतियोगिताएँ तथा उत्कृष्ट कार्य के लिए प्रत्येक जिले से एक सहायक अधीक्षक एवं प्रतिभावान छात्र–छात्राओं को पुरस्कृत करने की योजना भी राज्य सरकार द्वारा चलायी जाती है। पूर्व तथा उत्तर मैट्रिक छात्रवृत्ति इन जातियों के छात्र–छात्राओं को नियमानुसार दरों पर देय है। राज्य के 29 मेडिकल, इंजीनियरिंग, कृषि, वेटरनरी तथा पोलीटेक्नीक कॉलेजों में बुक बैंक योजना भी क्रियान्वित की जा रही है। शुष्क शौचालय की सफाई करने वाले, चर्म शोधन करने वाले, चमड़ा उतारने वाले तथा सफाई कार्य में परम्परागत रूप से जुड़े व्यक्तियों के बच्चों को कक्षा 3 से 10 तक 350 रूपये प्रतिमाह छात्रवृत्ति देने की नई योजना देश भर में चलाई जा रही है। इसी तरह अनुसूचित जाति/ जनजाति के राज्य कर्मचारियों को अपनी योग्यता वृद्धि के लिए तकनीकी या व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए क्षतिपूर्ति भत्ता देने की योजना भी प्रवर्तित है। राज्य का

सामाजिक न्याय व अधिकारिता विभाग इस समस्त योजनाओं, परियोजनाओं व कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने के दायित्व का निर्वाह करता है। जर्मन संस्था के.एफ. डब्ल्यू की सहायता से विभाग द्वारा राज्य के वंचित वर्गों के विद्यार्थियों हेतु आवासीय विद्यालयों की स्थापना का कार्य किया जा रहा है। यह परियोजना R.R.E.I.S. के माध्यम से संचालित हो रही है।

(ii) आर्थिक विकास से संबंधित कार्य

सन् 1979–80 से अनुसूचित जाति के गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे परिवारों के आर्थिक एवं सामाजिक योजनाबद्ध विकास की "विशिष्ट संघटक योजना" चलाई जा रही है। योजना के अन्तर्गत कृषि, ग्रामीण विकास, सिंचाई एवं बाढ़ नियन्त्रण, विद्युत, उद्योग एवं भवन, यातायात तथा समाज एवं सामुदायिक सेवाओं के विकास पर राज्य के कुल बजट का 15.90 प्रतिशत व्यय किया जा रहा है। अनुसूचित जाति तथा जनजाति के अभ्यार्थियों हेतु परीक्षा पूर्व प्रशिक्षण व्यवस्था, व्यावसायिक प्रशिक्षण के माध्यम से स्वावलम्बन योजना तथा 20 सूत्री कार्यक्रम के सूत्र 11 (क) के माध्यम से सामाजिक न्याय स्थापित किया जा रहा है। गाड़ियाँ लुहारों को स्थायी रूप से बसाने के लिए विशेष एकीकृत योजना के माध्यम से राज्य सरकार प्रत्येक परिवार को 5000 रूपये का अनुदान, 5000 रूपये का बैंक ऋण तथा 2000 रूपये स्वयं शक्ति के द्वारा श्रमदान के रूप में उपलब्ध करवा रही है। राजस्थान अनुसूचित जाति, जनजाति वित्त एवं विकास सहकारी निगम लि. की 1980 में स्थापना की गई थी। यह निगम इन जातियों के गरीब परिवारों के ऋण भी उपलब्ध करवाता है। इसी प्रकार "राजस्थान अल्पसंख्यक वित्त एवं विकास सहकारी निगम लि." तथा "राजस्थान अन्य पिछड़ा वर्ग वित्त एवं विकास सहकारी निगम लि." भी ऋण उपलब्ध कराते हैं। हरिजन बस्ती विकास कार्यक्रम के माध्यम से तथा "सम्बल ग्राम विकास योजना" के द्वारा भी अनुसूचित नीतियों के विकास के प्रयास किए जा रहे हैं।

विभाग के राजकीय छात्रावासों में रह रहे अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, स्वच्छकारों, विमुक्त तथा घुमन्तु जातियों के कक्षा 8–12 के विद्यार्थियों को पढ़ाई के साथ–साथ विभिन्न व्यवसायों का प्रशिक्षण भी प्रदान किया जा रहा है। वर्ष 1993–94 से "शिक्षण से स्वावलम्बन" नाम से संचालित हो रही योजना के अन्तर्गत 3 से 6 माह का ऑटो मैकेनिक, बढ़ईगिरी, डीजल मैकेनिक इलेक्ट्रिक मोटर बाईडिंग, हाउस वायरिंग, प्लम्बर, शार्टहैण्ड टाइपिंग, टंकण, सिलाई, फोटोग्राफी तथा टी.सी. / रेडियो मरम्मत का कार्य सिखाया जाता है। जयपुर स्थित बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर प्रशासनिक परीक्षा पूर्व प्रशिक्षण संस्थान में आई.ए.एस. तथा आर.ए.एस. परीक्षाओं तथा राज्य के 24 परीक्षा पूर्व प्रशिक्षण केन्द्रों तथा 6 अम्बेडकर प्रशिक्षण केन्द्रों के माध्यम से बी.एड., रेलवे, पटवारी, बैंक परिवीक्षा अधिकारी इत्यादि परीक्षाओं की तैयारी करवाई जाती है।

(iii) सामाजिक उत्थान से सम्बन्धित कार्य

नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 तथा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 के माध्यम से सामाजिक न्याय, समानता तथा सुरक्षा स्थापित करने के लिए दलित वर्गों को विशेष संवैधानिक सहायता दी गई है। नाग़ौर, अलवर, राजगढ़ (अलवर), कोटा, अटरू तथा बारां में 6 विशेष न्यायालय स्थापित किए गये हैं। अत्याचारों से पीड़ित इन वर्गो के व्यक्तियों को तुरन्त आर्थिक सहायता उपलब्ध करवाई जाती है। राज्य सरकार द्वारा अन्तरजातीय विवाह (अनुसूचित तथा स्वर्ण जाति के मध्य) को प्रोत्साहन देने के लिए ऐसे दम्पत्ति को 50,000 रूपये की प्रोत्साहन राशि दी जा रही है। इसी तरह अस्पृश्यता निवारण एवं अनुसूचित जाति (अस्वच्छ कार्यों में कार्यरत) के कार्यों में अग्रणी प्रयास करने वाली ग्राम पंचायतों को पुरस्कृत किया जाता है। राज्य स्तर पर प्रथम स्थान प्राप्त करने वाली ग्राम पंचायत को रूपये 50,000, द्वितीय को रूपये 25,000 तथा जिला स्तर पर प्रथम आने वाली पंचायत को रूपये 5,000 की राशि सामाजिक न्याय व अधिकारिता विभाग प्रदान करता है।

मार्च, 1993 में राजस्थान राज्य पिछड़ा वर्ग आयोग गठित किया गया है जो 1989 में अन्य पिछड़ी जाति मण्डल कहलाता था। यह आयोग अन्य पिछड़ी जातियों की सूची में किसी जाति का नाम हटाने या जोड़ने की सिफारिश करता है। आयोग में एक अध्यक्ष, तीन सदस्य तथा एक सदस्य–सचिव कार्यरत है। इन जातियों के छात्र–छात्राओं के लिए सामाजिक न्याय व अधिकारिता विभाग के छात्रावासों (अनुसूचित जाति/ जनजाति हेतु) में 10 प्रतिशत स्थान आरक्षित किए गए हैं। राज्य के सीमान्त जिले श्रीगंगानगर, जैसलमेर, बाड़मेर एवं बीकानेर में अन्य पिछड़ी जाति के छात्रों को पूर्व मैट्रिक छात्रवृत्ति दी जाने लगी है। 19 मार्च, 2001 की अधिसूचना के माध्यम से राजस्थान अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग गठित किया गया है जो इन वर्गो के आर्थिक, शैक्षणिक तथा सामाजिक विकास की योजनाओं की मॉनीटरिंग तथा आवश्यक उपाय सुझाको।

(iv) समाज कल्याण से सम्बन्धित कार्य

विभाग द्वारा जयपुर में एक शिशु गृह, अविवाहित माताओं के बच्चे तथा अन्य निराश्रित छोटे बच्चों की देखरेख हेतु संचालित है। जयपुर और जोधपुर में एक–एक अनुदानित शिशुगृह स्वयं सेवी संस्थाओं द्वारा भी चलाए जा रहे हैं। अजमेर में दयानन्द बालक सदन अनाथ बालिकाओं हेतु अनुदानित किया जा रहा है। जयपुर में ही एक राजकीय बालिका गृह तथा अनेक संस्थाऐं राज्य में निराश्रित अभागे बच्चों के कल्याण हेतु कार्यरत है। राज्य सरकार ने 1981 में "राजस्थान बालक अधिनियम, 1970" को समाप्त कर केन्द्रीय कानून" किशोर न्याय अधिनियम, 1986 " लागू किया है। अधिनियम के तहत किशोरों की देखरेख, प्रशिक्षण, शिक्षा और पुनर्वास का कार्य सामाजिक न्याय व अधिकारिता विभाग सम्पादित करता है। इन किशोरों को अजमेर स्थित एक विशेष विद्यालय में शिक्षा, प्रशिक्षण तथा पुनर्वास किया जाता है।

केन्द्र सरकार की योजनान्तर्गत कार्यशील महिलाओं के लिए 33 छात्रावास राज्य में संचालित है। संकटग्रस्त महिलाओं को आश्रय देने के लिए जयपुर में महिला सदन तथा इन

बेसहारा महिलाओं को उत्पादक कार्यों का प्रशिक्षण देने के लिए महिला विकास केन्द्र भी जयपुर में कार्यरत है। इसी तरह राज्य के महिला स्वैच्छिक संगठनों द्वारा 10स्थानों पर अल्पावास महिला गृह भी संचालित है। वैवाहिक विवाद, भावनात्मक अशांति, पारिवारिक विघटन, रोजगार हेतु शहरों को पलायन तथा वैश्यावृत्ति को मजबूर की जाने वाली महिलाओं को कुछ समय के लिए इन गृहों में आश्रय दिया जाता है।

8.5.2 राजस्थान राज्य समाज कल्याण सलाहकार मण्डल

केन्द्रीय समाज कल्याण मण्डल, नई दिल्ली की स्थापना वर्ष 1953 में भारत सरकार की अधिसूचना द्वारा की गई थी तथा वर्ष 1969 में चेरिटेबिल कम्पनी के रूप में कम्पनी एक्ट के अन्तर्गत केन्द्रीय मण्डल का पंजीयन किया गया। भारत सरकार द्वारा 1953 में केन्द्रीय समाज कल्याण मण्डल, नई दिल्ली की स्थापना के पश्चात् कार्य के विकेन्द्रीकरण करने को दृष्टिगत रखते हुए वर्ष 1954 में राजस्थान राज्य समाज कल्याण सलाहकार मण्डल की स्थापना की गई। राजस्थान राज्य समाज कल्याण सलाहकार मण्डल, जयपुर की स्थापना 1954 में की गई थी राजस्थान राज्य समाज मण्डल, राजस्थान सोसायटी एक्ट 1958 के तहत अथवा केन्द्रीय मण्डल की सहायक शाखा के रूप में कम्पनी एक्ट 1956 के तहत पंजीकृत नहीं है। राजस्थान राज्य समाज कल्याण सलाहकार मण्डल के प्रमुख उद्देश्य निम्नानुसार है –

1. महिलाओं, बच्चों एवं विकलांगों के लिए विभिन्न उपयोगी समाज कल्याण गतिविधियों को प्रोत्साहन देना।
2. समय–समय पर समाज कल्याण के क्षेत्र में कार्यरत स्वयंसेवी संगठनों को अनुदान कार्यक्रम संचालित करने हेतु अनुदान आवंटन करना।
3. विभिन्न स्वैच्छिक संगठनों की आवश्यकता का अध्ययन करना तथा अनुदानित संस्थाओं के कार्यों का मूल्यांकन करना।
4. सामाजिक कुरीतियों के प्रति समाज को जागृत करना।
5. विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत संस्थाओं तथा केन्द्रीय बोर्ड, नई दिल्ली के मध्य समन्वय का कार्य करना।
6. संस्थाओं/ परियोजनाओं द्वारा संचालित कार्यक्रमों का निरीक्षण करना एवं केन्द्रीय बोर्ड को अवगत कराना।
7. केन्द्रीय बोर्ड को नयी कल्याणकारी गतिविधियों का आवश्यकतानुसार आवंटन प्रदान करने में परामर्श एवं सहायता प्रदान करना।
8. केन्द्रीय बोर्ड एवं राज्य सरकार को कल्याणकारी गतिविधियों के अधिक बेहतर क्रियान्वयन के लिए सहायता प्रदान करना।

8.5.3 वित्तीय व्यवस्था

राज्य बोर्ड के अपने कोई स्वयं के वित्तीय स्रोत अथवा संसाधन नहीं है तथा राज्य बोर्ड के विभिन्न क्रियाकलापों हेतु निम्नानुसार अंशदान वहन किये जाते है –

1. **राज्य बोर्ड संस्थापन :** केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड, नई दिल्ली एवं राज्य सरकार के मध्य 50:50 के अनुपात में वहन किया जाता है।
2. **परियोजनाएं :** केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड, नई दिल्ली एवं राज्य सरकार के मध्य 2:1 के अनुपात में वहन किया जाता है।
3. **अध्यक्षा सुविधा :** अध्यक्षा सुविधा का शत–प्रतिशत व्यय भार राज्य सरकार द्वारा वहन किया जाता है।

8.5.4 मण्डल की परियोजनाएँ

राज्य बोर्ड के अन्तर्गत निम्नलिखित परियोजनाएँ संचालित की जाती है –

(क) समाज कल्याण विस्तार परियोजना सीमा क्षेत्र

(ख) समाज कल्याण विस्तार परियोजना सामुदायिक विकास

(क) समाज कल्याण विस्तार परियोजना सीमा क्षेत्र– सीमावर्ती क्षेत्र परियोजनाओं की स्थापना भारत पर विदेशी आक्रमण के समय की गयी थी। सीमावर्ती क्षेत्रों में विभिन्न कल्याणकारी गतिविधियों के संचालन की अत्यधिक आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए राजस्थान के विभिन्न सीमावर्ती जिलों में यह परियोजनाएँ आरम्भ की गई थी।

(ख) समाज कल्याण विस्तार परियोजनाएं सामुदायिक विकास – इनकी गतिविधियाँ बहुमुखी है। इन परियोजनाओं के माध्यम से महिलाओं एवं बच्चों के एकीकृत सेवाओं का प्रावधान किया जाता है। कल्याण विस्तार परियोजनाओं के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक स्कूल पूर्व शिक्षा, महिलाओं के लिए उद्योग शिक्षा, प्रसूति सेवाएँ तथा मनोरंजन सम्बन्धी सेवाएँ उपलब्ध कराई जाती है।

8.5.5 सामान्य अनुदान सहायता कार्यक्रम

(i) सामाजिक आर्थिक कार्यक्रम

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत विभिन्न स्वयंसेवी संगठनों को आय अर्जक गतिविधियों जैसे सहायता एककों में औद्योगिक पुर्जो का उत्पादन, हथकरघा, हस्तशिल्प, कृषि आधारित गतिविधियाँ, पशुपालन, रेशम उत्पादन, मछली उत्पादन तथा सब्जी और मछली बेचने का खोमचा लगाने स्वरोजगार कार्यों के लिए वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है।

सामाजिक आर्थिक कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य महिला संगठनों एवं विकलांगों को उत्पादन एकक की स्थापना में वित्तीय सहायता प्रदान करना है, जिससे महिलाओं में आत्मनिर्भरता उत्पन्न हो सके। अच्छी प्रतिष्ठित संस्थाएँ, जो विकलांगों हेतु कार्य कर रही है अनुदान हेतु पात्र है।

उत्पादन एकांश की स्थापना की सुविधायें एवं संस्थाओं को जेल, नारी निकेतन आदि के लिए उपलब्ध करायी जाती है। एक महिला संगठन के लिए बड़ी मात्रा में महिला सदस्यों का होना जरूरी है। कोई भी उत्पादन एकांश प्रस्ताव संतुष्टि हेतु एक महिला संगठन में कम से कम 30 महिला सदस्य होनी चाहिए।

(ii) कामकाजी महिलाओं के लिए छात्रावास

शहरों की युवा कामकाजी महिलाओं को अवांछनीय एवं समाज विरोधी तत्वों के शोषण से बचाने और सुरक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड ने कामकाजी महिलाओं के लिए छात्रावास कार्यक्रम के अन्तर्गत एक सहायता योजना का निर्माण किया है। निम्न आय वर्ग की कामकाजी महिलाओं को स्वस्थ वातावरण में उचित दरों पर आवास सुविधा उपलब्ध कराने के उद्देश्य से कामकाजी महिलाओं के लिए होस्टल चलाने वाले स्वैच्छिक संगठनों को इस कार्यक्रम के अन्तर्गत वित्तीय सहायता दी जाती है।

किसी उपयुक्त अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत एवं समाज कल्याण कार्यक्रम चला रही कोई भी गैर सरकारी संस्था इस कार्यक्रम के अन्तर्गत वित्तीय सहायता प्राप्त कर सकती है। किसी राज्य सरकार/ केन्द्र शासित प्रदेश अथवा किसी स्थानीय निकाय द्वारा स्थापित कोई भी संस्था या संगठन इसी प्रकार की कोई संस्था जो सरकार अथवा किसी स्थानीय से आशिक रूप से अथवा पूर्णतया वित्तीय सहायता प्राप्त कर रही हो वह साधारणत: केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड से सहायता प्राप्त करने की पात्र नहीं होती है। प्रतिवर्ष के आधार पर कामकाजी महिलाओं के लिए होस्टल चलाने हेतु अनुदान स्वीकृत किया जाता है।

(iii) महिला अल्पावास गृह कार्यक्रम

महिलाओं तथा बालिकाओं की समस्याओं को देखकर ही अल्पावासगृह कार्यक्रम की आवश्यकता महसूस हुई। इन समस्याओं का मुख्य कारण आज के जीवन का बदलता परिवेश, शहरीकरण तथा औद्योगिकीकरण तथा गांवों से शहरों की ओर पलायन है।

सामाजिक मान्यताओं में परिपक्व संस्था जैसे संयुक्त परिवार का बिखराव या विघटन भी एक कारण बन गया है, कि महिलाओं तथा बालिकाओं का सामंजस्य परिवार में नहीं हो पा रहा है। इन समस्याओं की उत्पत्ति में तथा पति–पत्नी के मध्य विवाद चाहे भावनात्मक रूप से उत्पन्न हुआ हो, समाज में परेशानी उत्पन्न करता है। ऐसी परिस्थितियों में आवश्यकता है ऐसे मार्गदर्शन की जो उनमें आत्मविश्वास उत्पन्न कर सके तथा ऐसी विषम परिस्थितियों का सामना करने में और अपने अन्दर हुनर विकास को विकसित कर समाज में अपने आप को पुन: स्थापित करने में सहायक हो। इन स्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए इन समस्याओं को दूर करने के लिए संस्थाओं के द्वारा महिलाओं को उचित सहायता एवं मार्गदर्शन दिया जाये।

(iv) व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में इस बात पर विशेष बल दिया गया है कि लड़कियां एवं महिलाओं के कार्य कौशल को बढ़ाया जाय ताकि उन्हें गांवों तथा स्थानीय क्षेत्रों में ही रोजगार अथवा कार्य के अवसर प्राप्त हो सके। केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड ने अपनी व्यावसायिक प्रशिक्षण योजना को नया रूप प्रदान किया है ताकि इस योजना को ग्रामीण आदिवासी, पिछड़े क्षेत्रों और शहरी गन्दी बस्तियों में रहने वाली गरीब महिलाओं के लिए अधिक उपयोगी बनाया जा सके।

इस कार्यक्रम को आशिक रूप से नोरोड से सहायता प्रदान की जा रही है। इसका उद्देश्य निर्धन महिलाओं के जीवन स्तर में सुधार करना है । इस स्कीम के अन्तर्गत महिलाओं को परम्परागत तथा गैर परम्परागत व्यवसायों में प्रशिक्षण प्रदान करने तथा उनके लिए इन क्षेत्रों में रोजगार सुनिश्चित करने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। इलेक्ट्रोनिक घड़ियाँ

बनाना, कम्प्यूटर प्रशिक्षण, सिले–सिलाए वस्त्र तैयार करना, सचिवालय पद्धति, कसीदाकारी आदि जैसे कुछ व्यवसाय इस स्कीम में शामिल है।

इस योजना के निम्नलिखित उद्देश्य है –

1. लाभकारी रोजगार/ कार्य के अवसरों का लाभ उठाने के योग्य बनाने के लिए महिलाओं को सुसंगत हुनर में दक्षता प्रदान करना।
2. महिलाओं को सबल बनाने एवं उनकी सामाजिक भागीदारी बढ़ाने में सहायता करना।

(v) शिशु पालनागृह कार्यक्रम

इस कार्यक्रम में कामकाजी महिलाओं और बीमार माताओं के बच्चों का लालन–पालन करने हेतु एकक की स्थापना की जाती है। यह कार्यक्रम उन सुस्थापित स्वयंसेवी संगठनों को स्वीकृत किया जाता है, जिन्हें ऐसे कल्याण कार्यक्रमों के संचालन का अनुभव है। प्रत्येक संस्था को क्षेत्र की आवश्यकता और संस्था की संचालन क्षमता के अनुसार एककों की स्वीकृति जारी की जाती है।

इस कार्यक्रम में कामकाजी महिलाओं और रूग्ण माताओं के शिशुओं की देखरेख के लिए एकक की स्थापना की जाती है। एक एकक में 25 बच्चे होते है और उन्हें सोने की सुविधाएँ, स्वास्थ्य रक्षा, पूरक पोषाहार, रोग प्रतिरोधक टीके की सुविधाएँ दी जाती है। इस योजना के अन्तर्गत 0–5 आयु वर्ग के बच्चे होते हैं।

(vi) ग्रामीण एवं निर्धन महिलाओं के लिए जागरूकता प्रसार परियोजना

महिला जागरूकता प्रसार शिविर का उद्देश्य ग्रामीण और गरीब महिलाओं को ऐसा मंच प्रदान करना है जिसमें वे इकट्ठी होकर आपसी अनुभवों और विचारों का आदान–प्रदान कर सकेगी। इस प्रकार उन्हें वास्तविकताओं को समझने का अवसर मिले और वे अपनी समस्याओं को हल करने तथा अपनी जरूरतों को पूरा करने के उपाय खोज सके। इस योजना में स्थानीय क्षेत्र की सामाजिक आर्थिक स्थितियों और महिलाओं के जीवन स्तर पर उनके प्रभाव संबंधी जानकारी और सम्बन्धित कानूनों को लेकर स्वस्थ और विज्ञान तक सभी विषयों पर तकनीकी जानकारी देने, महिलाओं के विकास तथा अन्याय के विरूद्ध संगठित करने की आवश्यकता और कार्ययोजना पर बल दिया गया है।

ग्रामीण और निर्धन महिलाओं की जरूरतों का पता लगाना, महिलाओं को संगठित करके उन्हें परिवार और समाज में निर्णायक भूमिका निभाने एवं शराबखोरों द्वारा महिलाओं और बच्चों पर अत्याचार जैसी सामाजिक बुराईयों से निपटने योग्य बनाना इस योजना के प्रमुख उद्देश्य है।

(vii) परिवार परामर्श केन्द्र

महिलाओं और बच्चों के विरूद्ध बढ़ते अत्याचारों की घटनाओं और परिवार में मतभेद व असमायोजन की समस्या हम सभी के लिए चिन्ता का प्रश्न है। इस समस्या का मूल कारण विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक और आर्थिक पहलू है। परिवार में विघटन को रोकने के लिए परिवार परामर्श केन्द्र की योजना संचालित की जाती है।

इस योजना का प्रमुख उद्देश्य संकट के समय हस्तक्षेप, दहेज मौतों से संबंधित मामलों की जांच तथा पारिवारिक मतभेद जैसे मामलों में परामर्श जैसी व्यावसायिक सेवायें प्रदान करना है। परिवार परामर्श केन्द्र के माध्यम से विवाह के टूटने संबंधी मामलों में समझौतों के प्रयास कराये जाते हैं एवं सामाजिक बुराईयों के प्रति लोगों को शिक्षित कर जनमत तैयार किया जाता है।

8.6 सारांश

अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति वर्ग के कल्याण हेतु भारत सरकार एवं राज्य सरकारों द्वारा अनेकों कार्यक्रम एवं परियोजनाओं का निरूपण किया गया। इन्हें लागू करने से संबंधित प्रशासनिक तंत्र की समस्याओं से अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं होते जितने की होने चाहिए। आवश्यकता इस बात की है कि प्रशासनिक अभिकरणों को सशक्त एवं प्रभावी बनाया जाए जिससे कि वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति हो सके।

8.7 शब्दावली

1. संवैधानिक संशोधन – समय की आवश्यकता के अनुसार निर्धारित प्रक्रिया के माध्यम से संप्रभुता प्राप्त सत्ता द्वारा संविधान में परिवर्तन, परिमार्जन संयुक्तीकरण का तात्पर्य ही संशोधन है।
2. समन्वय – संगठन में कार्यरत व्यक्तियों और उनकी गतिविधियों में अर्न्तसंबंध तथा अर्न्तगथन करने की प्रशासनिक प्राविधि का नाम समन्वय है।
3. चेरिटेबल कम्पनी – पंजीकृत संस्था जिसका पंजीकरण भारतीय चेरीटेबल कम्पनी के प्रावधानों के अन्तर्गत होता है और जिनका मुख्य कार्य चेरिटी करना है।
4. स्वयंसेवी संगठन – गैर सरकारी संगठन जो कि स्वयं सेविता के आधार पर निर्मित होते है और जो अपने कार्यों का संचालन सरकारी सहायता एवं स्वयं के संसाधनों द्वारा करते हैं।

8.8 अभ्यास प्रश्न

1. अनुसूचित जाति एवं जनजाति उत्थान से संबंधित संवैधानिक प्रावधान।
2. राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग के प्रमुख दायित्व बताइये।
3. राजस्थान सरकार के सामाजिक न्याय व अधिकारिता विभाग का संगठनात्मक स्वरूप स्पष्ट करें।
4. राजस्थान राज्य समाज कल्याण सलाहकार बोर्ड के उद्देश्य बताइये।

8.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ. शर्मा, रविन्द्र, राज्य प्रशासन, कॉलेज बुक हाऊस, जयपुर, 1998
2. डॉ. पाण्डेय, जयनारायण, भारत का संविधान, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद, 2002
3. कटारिया, सुरेन्द्र, सामाजिक प्रशासन, आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, जयपुर, 2002
4. वार्षिक प्रतिवेदन (2006–2007) राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग भारत सरकार, नई दिल्ली।

5. वार्षिक प्रतिवेदन (2006–2007) सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता विभाग, राजस्थान सरकार, जयपुर।
6. वार्षिक प्रतिवेदन (2006–2007) राजस्थान राज्य समाज कल्याण मण्डल, राजस्थान सरकार, जयपुर।

इकाई–9

सामाजिक न्याय एवं आर्थिक विकास के लिए नियोजन

इकाई की रूपरेखा

9.1 उद्देश्य

9.2 प्रस्तावना

9.3 नियोजन की परिवर्तित भूमिका

9.4 योजना आयोग

9.5 जिला आयोजना– सिद्धान्त एवं व्यवहार

9.6 राजस्थान के जिला आयोजन

9.7 सारांश

9.8 अभ्यास प्रश्न

9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

9.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान पायेंगे

- सामाजिक न्याय एवं आर्थिक विकास में नियोजन की भूमिका,
- योजना आयोग का गठन एवं कार्य प्रणाली,
- जिला आयोजन की व्यावहारिक कार्य प्रणाली,
- राजस्थान में जिला आयोजन रूप रेखा।

9.1 प्रस्तावना

वर्तमान युग नियोजन का युग है। विश्व के लगभग सभी राष्ट्र अपने आर्थिक विकास के लिए नियोजन को ही अपनाये हुए हैं। नियोजन के द्वारा ही किसी भी राष्ट्र का आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विकास सम्भव है।

वास्तव में नियोजन वर्तमान के साथ समन्वय, भविष्य की गतिविधियों को निर्देशित करने तथा मानव संसाधन तथा संरचना का सदुपयोग करने सहित निश्चित लक्ष्यों को प्राप्त करने की प्रक्रिया तथा सिद्धान्त है।

नियोजन एक विवेकपूर्ण प्रक्रिया है जो समस्त मानव व्यवहार में पायी जाती है। आज नियोजन ने लोकप्रियता प्राप्त कर ली है। आज एक अर्द्ध विकसित देश के लिए जहाँ सीमित संसाधनों द्वारा तथा निश्चित अवधि के भीतर ही काम करना होता है नियोजन का विशेष महत्व है।

नियोजन को बीसवीं सदी की देन माना जाता है। सर्वप्रथम सन् 1910 में नार्वे के प्रो. क्रिस्टियन शोन्हेडर ने नियोजन के महत्व को रेखांकित किया। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान ग्रेट ब्रिटेन तथा जर्मनी ने युद्धकालीन परिस्थितियों का सामना करने हेतु नियोजन को अपनाने के प्रयास किये।

नियोजन को लोकप्रिय तथा विश्वसनीय बनाने का कार्य सोवियत रूस ने किया।

सोवियत रूस ने सन् 1921 में इस दिशा में प्रयास शुरू किये तथा सर्वोच्च सोवियत नियोजन संगठन गोसप्लान के द्वारा सन् 1928 में प्रथम पंचवर्षीय योजना प्रारम्भ करके सामाजिक न्याय तथा आर्थिक विकास के क्षेत्र में नई रणनीति का सूत्रपात किया।

बीसवीं सदी के चौथे दशक में संयुक्त राज्य अमेरिका सहित अधिकांश विश्व आर्थिक मन्दी के दौर में था तब पूंजीवादी राष्ट्रों ने नियोजन में अपना विश्वास प्रकट किया।

नियोजन एक सतत् प्रक्रिया है। योजना आयोग के अनुसार – "नियोजन परिभाषित सामाजिक उद्देश्यों के रूप में अधिकाधिक लाभ के उद्देश्य से संसाधनों के गठन और उपयोग का एक तरीका है।

वास्तव में किसी भी राष्ट्र में उपलब्ध प्राकृतिक, आर्थिक, प्राविधिक, भौतिक, वित्तीय व मानवीय संसाधनों एवं आधारभूत संरचनाओं का किन्हीं विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए व्यवस्थित उपयोग ही नियोजन है।

कुछ दशकों पूर्व नियोजन विवादास्पद विषय था क्योंकि इसे साम्यवाद का पर्याय समझा जाता था। आज अधिकांश देशों में नियोजन सामाजिक न्याय एवं आर्थिक विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति का मुख्य आधार बन चुका है।

सामाजिक न्याय व आर्थिक विकास के लिए नियोजन में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण व उपयोग महत्वपूर्ण होता है।

भारतीय सन्दर्भ में भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने नियोजन के महत्व को स्वीकारते हुए सन् 1951 में देश की प्रथम पंचवर्षीय योजना को क्रियान्वित कर आर्थिक नियोजन का सूत्रपात किया।

वास्तव में नियोजन द्वारा ही हमारे देश का सामाजिक न्याय व आर्थिक स्वतन्त्रता तथा विकास की स्थापना सम्भव हो सकेगी।

9.3 नियोजन की परिवर्तित भूमिका

भारतवर्ष में नियोजन लक्ष्यों और सामाजिक उद्देश्यों का आधार हमारे संविधान में वर्णित राज्य की नीति निदेशक सिद्धान्त हैं। हमारी अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक व निजी क्षेत्रों को एक दूसरे का पूरक समझा जाता है। निजी क्षेत्र में संगठित उद्योगों के अलावा लघु उद्योग, कृषि, व्यापार, आवास निर्माण और अन्य क्षेत्रों की गतिविधियाँ आती हैं। राष्ट्रीय विकास के लिए व्यक्तिगत प्रयास व निजी पहल के साथ–साथ स्वैच्छिक सहयोग भी आवश्यक है।

हमारा देश लम्बी अवधि तक प्रतन्त्र देश रहा। ब्रिटिश शासकों ने अपने स्वार्थों के लिए देश का आर्थिक शोषण किया तथा योजनाबद्ध आर्थिक विकास के लिए कोई भी पहल नहीं की। इसके कारण हमारी राष्ट्रीय व प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि नहीं की जा सकी। भारतवर्ष इस समय गरीब ही बना रहा। बड़े उद्योगों की ओर ध्यान नहीं दिया गया। भारतीय अर्थव्यवस्था असन्तुलित ही रही।

नियोजन का वास्तविक उद्देश्य देश का सर्वांगीण विकास करना होता है। इसमें आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक लक्ष्य सम्मिलित हैं।

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतवर्ष के समक्ष दो विकल्प थे या तो पूंजीवादी देशों की भाँति देश के आर्थिक विकास का काम निजी क्षेत्र को सौंप दें या दूसरा यह कि रूस के उदाहरण को देखते हुए नियोजन की व्यवस्था सरकारी नियन्त्रण एवं नियमन के अन्तर्गत स्वयं राजकीय संगठनों के आधार पर करें। यदि पहले मार्ग को अपनाया होता तो विकास की गति तेज नहीं हो सकती थी क्योंकि निजी क्षेत्र की क्षमता व संसाधन सीमित थे तथा साथ ही यह क्षेत्र उन्हीं उपक्रमों को हाथ में लेता जिसमें अत्यधिक लाभ प्राप्त हो। यह क्षेत्र जिनमें कम लाभ होता है अथवा लाभ नहीं होता उसमें कभी रूचि नहीं लेता है।

वास्तव में सन्तुलित विकास के लिए यह आवश्यक है कि देश में सभी प्रकार के उद्योगों का विकास हो। मूलत: भारतवर्ष एक लोकतंत्रीय देश है। अत: आर्थिक क्षेत्र में केवल सीमित लोकतंत्रीय उपायों का ही सहारा लिया जा सकता है।

साम्यवादी देशों में उपभोग, उत्पादन व वितरण शासकों द्वारा ही निर्धारित होते हैं। जनता को आर्थिक नियोजन तैयार करने या क्रियान्वित करने के कार्य में सक्रिय सहयोग प्राप्त नहीं होता है।

इन परेशानियों को देखते हुए भारतवर्ष ने मध्यम मार्ग अपनाया। जिसमें सरकारी क्षेत्र तथा निजी क्षेत्र दोनों को समान महत्व दिया गया। जिसे मिश्रित अर्थव्यवस्था का नाम दिया गया।

पूंजीवादी तथा समाजवादी अर्थव्यवस्था दोनों को ही मान्यता प्रदान करते हुए नियोजन को शीघ्र विकास का एक प्रबल अस्त्र के रूप में महत्व प्रदान किया गया।

नियोजन वर्तमान समय की एक नवीन प्रवृति है। उन्नीसवीं सदी में पूंजीवाद, व्यक्तिवाद तथा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का वर्चस्व रहा। बहुसंख्यक देश स्वतन्त्र व्यापार व आर्थिक स्वतन्त्रता के पक्ष में रहे। पिछली अर्द्ध शताब्दी में रूसी क्रान्ति, आर्थिक मन्दी, दो महायुद्धों, तकनीकी विकास, नई उत्पन्न आर्थिक व सामाजिक समस्याएँ आदि के कारण विभिन्न देशों व अर्थशास्त्र विशेषज्ञों ने नियोजन के महत्व को समझा। वास्तव में वर्तमान युग नियोजन का युग है तथा विश्व के लगभग सभी देश अपने विकास के लिए नियोजन को अपनाये हुए हैं।

भारतवर्ष में कई कारणों से नियोजन की आवश्यकता तथा भूमिका स्पष्ट है –

1. निर्धनता के उन्मूलन हेतु
2. देश के विभाजन से उत्पन्न आर्थिक असन्तुलन को कम करने हेतु,
3. पूर्ण रोजगार की स्थिति हेतु,
4. धन व आय के समान वितरण के लिए,
5. राष्ट्रीय व प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के लिए,
6. प्राकृतिक संसाधनों के सर्वोत्तम उपयोग के लिए,
7. जीवन स्तर में सुधार हेतु
8. औद्योगिकरण के लिए
9. जनसंख्या नियन्त्रण के लिए,

10. प्रजातंत्र की सफलता के लिए,

11. आत्मनिर्भरता प्राप्ति के लिए तथा

12. देश को शक्तिशाली एवं विकसित बनाने के लिए।

वास्तव में हमारे देश के सम्पूर्ण विकास के लिए नियोजन ही एक मात्र आधार है।

एम. विश्वेश्वरैया ने सन् 1934 में अपनी पुस्तक "प्लाण्ड इकॉनामी फॉर इण्डिया" में एक ऐसी योजना का स्वरूप रखा था जिसका उद्देश्य दस वर्ष में राष्ट्रीय आय को दुगुना करना था।

कांग्रेस ने पं. जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय योजना समिति का गठन किया। इस समिति द्वारा प्रो. के.टी शाह को अवैतनिक मंत्री चुना। समिति ने 26 उप समितियाँ बनायीं। 25 उप समितियों ने अपनी रिपोर्ट दी। लेकिन तत्कालीन विदेशी सरकार व कांग्रेस के संघर्ष तथा द्वितीय विश्व युद्ध के कारण यह समिति अपना कार्य पूरा नहीं कर सकी।

सन् 1944 में भारत सरकार ने एक नियोजन एवं विकास विभाग बनाया। सन् 1946 में परामर्शदाता नियोजन बोर्ड का गठन किया गया। सन् 1946 में नियोगी समिति ने सिफारिश की थी कि आर्थिक नियोजन के कार्य की प्रकृति ही ऐसी है कि एक ऐसे शक्तिशाली व प्रत्यक्ष रूप से मंत्रिपरिषद के प्रति उत्तरदायी संगठन की केन्द्र में स्थापना की जाये जो भारतवर्ष के स्थायी आर्थिक विकास व नियोजन के लिए कार्य करे।

भारतवर्ष में आर्थिक नियोजन के 56 वर्ष पूरे हो चुके हैं, जिसमें दस पंचवर्षीय योजनाएं व सात वार्षिक योजनाएं पूरी की जा चुकी हैं।

जून, 1991 से विकास में आर्थिक उदारीकरण के कारण भारी परिवर्तन हुए। इस सन्दर्भ में अर्थव्यवस्था में सरकार की भूमिका में परिवर्तन आया तथा निजी क्षेत्र को आर्थिक निर्णय की प्रक्रिया में प्राथमिकता प्रदान की गई। भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था से जोड़ने का काम किया गया।

विदेशी व्यापार, विदेशी विनियोग तथा विदेशी तकनीक में वृद्धि करने पर जोर दिया जाने लगा। इसे भूमण्डलीकरण नाम दिया गया।

इस प्रकार जून, 1991 से भारतीय अर्थव्यवस्था बाजार मैत्रीपूर्ण अर्थव्यवस्था की ओर अग्रसर हो गई। अनावश्यक नियन्त्रण हटाए गए अथवा घटाए गए। निजीकरण, बाजारीकरण, उदारीकरण, वैश्वीकरण नये शब्द बने। इसके परिणामस्वरूप नियोजन का स्वरूप केन्द्रीकृत नियोजन से विकेन्द्रीकृत नियोजन की ओर अग्रसर हो गया। आज भारतवर्ष आर्थिक उदारीकरण की पृष्ठभूमि में नियोजन प्रक्रिया को अपना रहा है।

इस प्रक्रिया में सरकारी क्षेत्र से निजी क्षेत्र की ओर जोर दिया जा रहा है। सरकार ने बजाय बाजार पर आयात प्रतिस्थापन के स्थान पर निर्यात पर, कर की ऊँची के बजाय नीची दर पर व नियंत्रण के बजाय विनियन्त्रण पर जोर दिया जाने लगा है।

9.4 योजना आयोग

भारत में योजना आयोग के सम्बन्ध में कोई संवैधानिक प्रावधान नहीं है।

योजना आयोग की स्थापना केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल के उस संकल्प प्रस्ताव पर की गई थी, जो मन्त्रिमण्डल दारा 10 मार्च, 1950 को पारित किया गया था। प्रो. ए.एच. हेन्सन के अनुसार मन्त्रिमण्डल ने योजना आयोग को एक ऐसा अंग माना था जिसका कार्य केवल सलाह देना था।

मन्त्रिमण्डल के संकल्प प्रस्ताव संख्या पी. (सी) 50, भारत का राजपत्र 15 मार्च, 1950 में कहा गया था कि "वास्तविक संसाधनों को ध्यान में रखते हुए तथा सभी संगत आर्थिक पहलुओं का निष्पक्ष विश्लेषण करते हुए व्यापक योजना बनाने की आवश्यकता है और इस कार्य के एक ऐसे संगठन की आवश्यकता है जो दैनिक प्रशासनिक क्रियाकलापों से मुक्त हो; किन्तु इसका सरकार से उच्चतम स्तर पर सम्पर्क हो। "

योजना आयोग का मूल उद्देश्य सभी नागरिकों को जीविकोपार्जन के पर्याप्त साधन, सामूहिक हित में सम्पत्ति का बंटवारा व अर्थव्यवस्था का हितकारी विकेन्द्रीकरण के बारे में राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों पर आधारित थे।

(i) योजना आयोग के उद्देश्य

योजना आयोग की स्थापना निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए की गई थी –

1. देश के भौतिक संसाधनों व जन शक्ति का अनुमान लगाना व देश की आवश्यकता के अनुसार उन संसाधनों की वृद्धि की सम्भावनाओं की खोज करना,
2. देश में उपलब्ध संसाधनों के अधिकतम प्रभावशाली तथा सन्तुलित उपभोग के लिए योजनाएँ बनाना,
3. नियोजन के अन्तर्गत स्वीकृत कार्यक्रमों तथा परियोजनाओं के बारे में प्राथमिकताएँ तय करना,
4. आर्थिक विकास की गति को रोकने वाले कारकों का पता लगाना तथा योजनाओं की सफलता को सुनिश्चित करने वाली परिस्थितियों को निर्धारित करना,
5. योजनाओं के सफल क्रियान्वयन के लिए आवश्यक तंत्र की प्रकृति निश्चित करना,
6. समय–समय पर योजनाओं की प्रगति का मूल्यांकन करना तथा इस बारे में आवश्यक उपायों की सिफारिश करना,
7. आयोग के कार्यकलापों को आसान बनाने अथवा वर्तमान परिस्थिति व विकास कार्यक्रमों को ध्यान में रखते हुए आवश्यक सिफारिशें करना,
8. केन्द्र अथवा राज्य की समस्याओं का समाधान करने के लिए समुचित उपाय सुझाना,
9. समय–समय पर अधिसूचित विशेष क्षेत्र विकास कार्यक्रम,
10. भावी योजना,
11. प्रयुक्त जनशक्ति अनुसंधान संस्थान,
12. राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग का सेवा कार्य।

(ii) संगठन

योजना आयोग का गठन भारत सरकार के संकल्प पत्र दारा 15 मार्च 1950 को किया गया।

योजना आयोग राष्ट्रीय विकास परिषद् के मार्गदर्शन में कार्य करता है। परिषद के अध्यक्ष प्रधानमंत्री होते हैं। योजना आयोग का संविधान में उल्लेख नहीं है। इसका गठन परामर्शदात्री एवं विशेषज्ञ संस्था के रूप में सरकार के प्रलेख द्वारा हुआ। इसके स्वरूप व गठन में सरकारों द्वारा समय–समय पर परिवर्तन किये गये।

प्रथम योजना आयोग का अध्यक्ष प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू को बनाया गया।

पांच पूर्णकालिक सदस्य थे–एस.के. पाटिल, सी.डी. देशमुख, गुलजारी लाल नन्दा, टी.टी कृष्णामाचारी, जी.एल. मेहता। सी.डी. देशमुख व गुलजारी लाल नन्दा मंत्री होते हुए भी इसके सदस्य रहे।

समय–समय पर इसमें अन्य मंत्री एवं विद्वान मनोनीत किये जाते रहे तथा प्रधानमंत्री इसके पदेन अध्यक्ष रहे। सन् 1967 में प्रधानमंत्री तथा वित्तमंत्री के योजना आयोग के पदेन अध्यक्ष होने पर विवाद हुआ, साथ ही इसे गैर राजनीतिक संस्था बनाने पर जोर दिया गया।

आपत्ति के बावजूद भी प्रधानमंत्री इसके पदेन अध्यक्ष रहे। सन् 1971 में प्रधानमंत्री को योजना आयोग का पदेन अध्यक्ष व योजना मन्त्री को पदेन उपाध्यक्ष बनाया गया। योजना का अधिक कार्य योजना मन्त्रालय को सौंपा गया। जनता सरकार ने योजना आयोग में प्रधानमंत्री को पदेन अध्यक्ष, उपाध्यक्ष (मन्त्री होना जरूरी नहीं तथा तीन मन्त्रिमण्डल स्तरीय मन्त्री गृह, वित्त एवं रक्षा को अंशकालिक पदेन सदस्य तथा तीन पूर्णकालीन सदस्यों को रखा गया। इसमें सदस्यों एवं उपाध्यक्ष का निश्चित कार्यकाल नहीं रखा गया। सदस्यों के लिए कोई निश्चित योग्यता भी नहीं रखी गई।

व्यवहार में सरकार के बदलते ही योजना आयोग का भी पुनर्गठन होता है तथा इसमें सदस्यों की संख्या सरकार की इच्छा पर निर्भर है।

योजना आयोग के सदस्यों को वही वेतन, भत्ता एवं दर्जा दिया जाता है जो कि मन्त्रिमण्डल स्तरीय मन्त्रियों को उपलब्ध है। आयोग के सभी सदस्य एक निकाय के रूप में कार्य करते हैं परन्तु सुविधा के लिए प्रत्येक सदस्य को एक या एक से अधिक विषयों का प्रभारी बना दिया जाता है।

(iii) योजना आयोग के अध्यक्ष

प्रधानमंत्री आयोग के अध्यक्ष के रूप में इसके कार्य को देखते हैं तथा आयोग को नीतियों सम्बन्धी निर्देश देते हैं।

(iv) उपाध्यक्ष व पूर्णकालिक सदस्य

योजना आयोग के उपाध्यक्ष व पूर्णकालिक सदस्य विस्तृत योजना निर्माण के मामले में एक संयुक्त संस्था के रूप में कार्य करते हैं।

इनका कार्य योजना आयोग के विषय से सम्बन्धित प्रभागों के योजना दृष्टिकोण की तैयारी, पंचवर्षीय व वार्षिक योजनाओं के सम्बन्ध में परामर्श प्रदान करना है।

योजना कार्यक्रमों, स्कीमों, परियोजनाओं की निगरानी व मूल्यांकन से सम्बन्धित प्रभागों को भी इनका दक्ष मार्गदर्शन मिलता रहता है।

जून, 2004 में संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन सरकार ने योजना आयोग का पुनर्गठन किया।

डॉ. मनमोहन सिंह – प्रधानमंत्री, अध्यक्ष

डॉ. मोण्टेक सिंह अहलूवालिया को उपाध्यक्ष

7 सदस्य

1. डॉ. किरीट पारिख
2. डॉ. बी.एल चोपड़ा
3. डॉ. बालचन्द्र मुंगेकर
4. डॉ. अभिजीत सेन
5. डॉ. सैयदा हमीद
6. डॉ. बी.एन. युगान्धर
7. डॉ. अनवर डाल होडा

इसके अतिरिक्त योजना राज्य मन्त्री एम.बी. राजशेखरन भी आयोग में सम्मिलित हैं।

योजना आयोग में नीति निर्धारण, योजनाओं के उद्देश्य एवं रणनीति तय करने हेतु प्रधानमंत्री, उपाध्यक्ष, सभी सदस्यगण एक संस्था के रूप में कार्य करते हैं। जबकि आयोग का प्रशासनिक संगठन सचिवालय सदस्य सचिव के पास रहता है।

नई दिल्ली के योजना भवन में आयोग का प्रशासनिक सचिवालय कार्य करता है। योजना आयोग के आन्तरिक सम्भाग 34 क्षेत्रों में विभक्त हैं। जो विषयवार हैं। विषय शासकीय कार्यों तथा योजनाओं के अनुसार बने हुए हैं।

इन सम्भागों में विषय विशेषज्ञों को प्रधान सलाहकार, सलाहकार, अतिरिक्त सलाहकार व उप सलाहकार के रूप में नियुक्त किया जाता है। इनकी सहायता के लिए अनुसंधान अधिकारी, आर्थिक विश्लेषक, सांख्यिकी सहायक तथा परियोजना समन्वयक आदि कार्मिक कार्यरत रहते हैं।

सन् 2001–02 में 98 कार्यदल व 23 स्टीयरिंग कमेटियां योजना आयोग में कार्यरत थी। इन कार्यदलों व स्थायी नियन्त्रण समितियों द्वारा पंचवर्षीय योजना का प्रारूप तैयार किया जाता है।

योजना आयोग के सहयोगी अधीनस्थ संगठन के रूप में त्रिस्तरीय कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन कार्यरत हैं। इस संगठन में देश भर में क्षेत्रीय मूल्यांकन संगठन कार्यरत हैं। मुम्बई, कोलकाता, चण्डीगढ़, हैदराबाद, लखनऊ, चेन्नई व जयपुर में क्षेत्रीय कार्यालय हैं।

सन् 1956 में जयपुर में कार्यरत क्षेत्रीय मूल्यांकन संगठन राजस्थान व मध्यप्रदेश की योजनाओं के मूल्यांकन का कार्य करता है।

इसके अलावा गुवाहाटी, भुवनेश्वर, शिमला, बैंगलोर, भोपाल, पटना, त्रिवेन्द्रम् तथा अहमदाबाद में परियोजना मूल्यांकन कार्यालय कार्यरत हैं।

क्षेत्रीय मूल्यांकन संगठनों में उप सलाहकार नियन्त्रक अधिकारी होता है जो भारतीय आर्थिक सेवाओं से सम्बन्धित है। इसकी सहायता के लिए अनुसंधान अधिकारी व वरिष्ठ आर्थिक अन्वेषक पदस्थापित होते हैं।

आयोग का एक अंग राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केन्द्र है। इसकी शाखाएं सभी जिलों में कार्यरत हैं। कम्प्यूटर व उपग्रह संचार प्रणाली से समस्त क्षेत्रों की योजनाओं की प्रगति का सतत् मूल्यांकन किया जाता है। सांख्यिकी विभाग मैं राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन के अनेक फील्ड ऑपरेशन डिविजन देश भर में कार्यरत हैं जो मुख्यतया योजना आयोग को प्राथमिक आँकड़े एकत्र करके देते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में ऊर्जा समस्या हेतु योजना आयोग तथा दिल्ली सरकार राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के संयुक्त उद्यम के रूप में महात्मा गांधी एकीकृत ग्रामीण ऊर्जा एवं विकास संस्थान, माकोली, अलीपुर स्थापित किया गया है।

योजना तन्त्र में परामर्श एवं नियन्त्रण के लिए 'संसदीय परामर्श समिति है जिसमें विभिन्न दलों के सदस्य अपनी सहमति व्यक्त करते हैं।

दिनाँक 11 मई, 2000 को स्थापित राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग को प्रशासनिक सहायता योजना आयोग द्वारा प्रदान की जाती है। सौ सदस्यीय इस आयोग के अध्यक्ष प्रधानमन्त्री हैं। आयोग के उपाध्यक्ष ही इसके भी उपाध्यक्ष हैं। सभी राज्यों के मुख्यमन्त्री, राजनीतिक दलों, व्यापार एवं वाणिज्य संगठन, कृषि, श्रमिक, महिलाएं, स्वास्थ्य, शिक्षा, मीडिया, धार्मिक संगठन तथा गैर सरकारी संस्थाओं के प्रतिनिधि इस आयोग के सदस्य हैं।

(v) योजना आयोग – सम्भाग

योजना आयोग का सचिवालय आन्तरिक प्रशासनिक स्तर पर कई संभागों में विभाजित है। प्रत्येक सम्भाग में प्रमुख सलाहकार, सलाहकार, अतिरिक्त सलाहकार, संयुक्त सलाहकार तथा संयुक्त सचिव, विषय विशेषज्ञ तथा प्रशासनिक कार्मिक हैं।

योजना आयोग के सम्भागों के तीन वर्ग हैं –

1. सामान्य सम्भाग

यह सम्भाग सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था, संसाधन व आर्थिक नियोजन कार्यक्रमों को एकीकृत स्वरूप में निर्मित करने व विश्लेषण का कार्य करता है। ये हैं –

विकास नीति,

वित्तीय संसाधन

केन्द्रीय संसाधन

अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था,

श्रम, रोजगार व जनशक्ति, भावी योजना, योजना समन्वय, परियोजना मूल्यांकन व प्रबन्ध, सामाजिक– आर्थिक अनुसंधान, राज्य योजना, बहुस्तरीय योजना व सांख्यिकी तथा सर्वेक्षण सम्भाग।

2. विषय सम्भाग

इस सम्भाग में अपने विषय से सम्बन्धित तकनीकी योजनाएँ बनाने व मन्त्रालयों के द्वारा इन्हें क्रियान्वित कराते हैं। ये हैं –

कृषि, पिछड़ा वर्ग तथा जनजाति विकास, संचार व सूचना, शिक्षा, पर्यावरण व वन, स्वास्थ्य, पोषण व परिवार कल्याण, आवास व शहरी विकास, उद्योग व खनिज, विद्युत व ऊर्जा, ग्रामीण विकास, विज्ञान व प्राद्यौगिकी, समाज कल्याण व महिला कार्यक्रम, परिवहन, ग्रामीण व लघु उद्योग, जल संसाधन, पश्चिमी घाट सचिवालय।

3. प्रशासनिक व अन्य सेवाएं सम्भाग

ये सम्भाग आन्तरिक कार्मिक व्यवस्था, सतर्कता, सूचना व सन्दर्भ सामग्री से सम्बन्धित कार्य सम्पन्न करते हैं । ये हैं –

प्रशासनिक, हिन्दी अनुभाग, आन्तरिक कार्य अध्ययन इकाई, पुस्तकालय व प्रलेख केन्द्र एवं राष्ट्रीय सूचना केन्द्र की योजना आयोग इकाई।

योजना आयोग के अनुसंधान परामर्शदात्री समिति कार्यरत है जो आयोग के उपाध्यक्ष की अध्यक्षता में कार्यरत है।

इस समिति में 7 अन्य सदस्य व एक सदस्य सचिव पदस्थापित है। यह समिति योजनाओं के लिए अनुसंधान व विकास के साथ ही मूल्यांकन कार्यों का परीक्षण भी करती है।

भारतवर्ष में योजना आयोग की स्थापना केन्द्रीय स्तर पर सामाजिक व आर्थिक विकास के उद्देश्य से की गई थी। परन्तु 56 वर्षो का अनुभव यह बताता है कि योजना आयोग एक सुपर कैबिनेट के रूप में कार्यरत है। इन बिन्दुओं से यह स्पष्ट है –

योजना आयोग में वे ही निर्णय होते हैं जो प्रधानमन्त्री चाहते हैं।

योजना आयोग द्वारा निर्मित व प्रस्तुत योजनाओं का अन्तिम अनुमोदन राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा किया जाता है। परिषद् में योजना आयोग के सभी सदस्य व सभी राज्यों के मुख्यमन्त्री सम्मिलित हैं।

वास्तव में केन्द्र द्वारा राज्यों को दी जाने वाली योजनागत सहायता योजना आयोग ही निर्धारित करता है।

राज्यों के द्वारा निर्मित योजनाएँ उन निर्देशों पर आधारित होती हैं जो योजना आयोग द्वारा राज्यों को भेजे जाते हैं।

अत: योजना आयोग सुपर कैबिनेट के रूप में कार्यरत है।

9.5 जिला आयोजना – सिद्धान्त एवं व्यवहार

योजनाओं की सफल क्रियान्विति सुनिश्चित करने के लिए प्रत्येक जिले में नियोजन कार्यों का प्रभावी तथा सुदृढ़ तन्त्र अत्यावश्यक है। भारतीय प्रशासन में राज्य प्रशासन के साथ ही जिला प्रशासन भी लोकतान्त्रिक शासन की महत्वपूर्ण इकाई के रूप में स्थापित है।

जिला आयोजना का महत्व इस प्रकार है –

- जिला प्रशासन तथा जिला कलक्टर का महत्व भारतीयों में परम्परागत श्रेष्ठता लिये हुए है।
- जिला प्रशासन की पहुँच क्षेत्रीय स्तर तक है क्योंकि भौगोलिक दृष्टि से जिला न तो बहुत बड़ा होता है न ही बहुत छोटा होता है। वह सन्तुलित होता है।
- क्षेत्रीय तथा प्रान्तीय स्तर के मध्य समन्वय के लिए जिला स्तर पर राज्य सरकार के अधिकांश अधिकारी उपलब्ध होते हैं।

- जिला मुख्यालय पर आम व्यक्ति आसानी से आता जाता रहता है।
- जिला ऐतिहासिक निरन्तरता के कारण एक विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान तथा अपनेपन का अहसास कराता है।
- जिला एक संसदीय क्षेत्र भी होता है जो विकास की दृष्टि से कई दृष्टियों से उपयुक्त सिद्ध होता है।

पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना के साथ ही प्रत्येक जिले में जिला परिषद् या अन्य कोई संगठन जिला नियोजन के कार्य करने हेतु गठित हो चुका था किन्तु तन्त्र प्रभावी व सुदृढ़ नहीं था।

प्रशासनिक सुधार आयोग ने अपनी रिपोर्ट में कहा था कि जिला स्तर पर स्वयं की कोई नियोजन विशेषज्ञता उपलब्ध नहीं है। अत: इस हेतु एक जिला आयोजना समिति का गठन किया जाये जिसमें जिला परिषद नगरीय निकायों तथा जिला क्षेत्र में उपलब्ध व्यावसायिक विशेषज्ञों के प्रतिनिधियों के साथ–साथ उपयुक्त जिलाधिकारियों को भी सम्मिलित किया जाये। आयोग का सुझाव था कि जिला परिषद् के विपरीत जिला आयोग समिति का आकार छोटा रखा जाना चाहिये जिससे सभी सदस्य अपनी प्रभावी भूमिका निभा सकें। जिला आयोजना अधिकारी इस समिति का सचिव होना चाहिये तथा समिति की बैठक दो माह में कम से कम एक बार अवश्य हो।

प्रशासनिक सुधार आयोग की इस सिफारिश की क्रियान्विति में सन् 1969 में योजना आयोग ने सभी राज्यों को दिशा निर्देश दिये कि जिला आयोजना समिति की स्थापना तथा कार्य प्रणाली की प्रगति धीमी रही व बहुत से राज्यों में जिला कलक्टर कार्यालय तथा जिला परिषद ही यह कार्य करती रही। कुछ राज्यों में अलग से जिला आयोजना तन्त्र विकसित करने के प्रयास किये गये।

सन् 1977–78 में खण्ड स्तरीय आयोजना प्रणाली पर प्रो. एम.एल. दाँतवाला की अध्यक्षता में बने कार्य दल ने जिला आयोजना के क्षेत्र में कहा कि – "ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकांश राज्यों में जिला आयोजना तन्त्र उपलब्ध नहीं है। जहाँ कहीं जिला आयोजना तन्त्र स्थापित किया गया है वह विशेषज्ञों से युक्त नहीं है। इनमें कार्यरत कार्मिक केवल सचिवालयी कार्य सम्पादित करते हैं, जिला कलक्टर के अधीन जिला परिषद् के कार्य भी करते हैं किन्तु इन्हें योजना निरूपण, निगरानी, पुनरीक्षण तथा मूल्यांकन के कार्यों में कोई उल्लेखनीय तकनीकी सहायता नहीं करते हैं। कुछ राज्यों में जिला आयोजना कक्ष हैं, जिसमें जिला आयोजना अधिकारी, सांख्यिकी तथा अनुसंधान सहायक एवं लिपिक इत्यादि हैं जो केवल योजना क्रियान्वयन का कार्य देख रहे हैं।

दाँतवाला समिति ने सुझाव दिया कि जिला आयोजना तन्त्र को प्रभावी बनाने के लिए न्यूनतम कार्मिकों को अवश्य पद स्थापित किया जाये। मुख्य आयोजना अधिकारी को योजना कार्य में जिला कलक्टर के पश्चात् दूसरा स्थान दिया जाये। निम्नलिखित कार्मिक उनकी सहायता करें –

- अर्थशास्त्री (सांख्यिकी विशेषज्ञ)
- मानचित्र विशेषज्ञ (भूगोलवेत्ता)

- शस्य विज्ञानी (फसल पादप विशेषज्ञ)
- अभियन्ता
- औद्योगिक अधिकारी
- ऋण नियोजन अधिकारी

योजना आयोग ने प्रो. सी.एच. हनुमन्ताराव की अध्यक्षता में (सन् 1982–84) में एक कार्य दल गठित किया। कार्य दल को पंचायती राज तथा विकेन्द्रीकृत योजना के सन्दर्भ में अध्ययन करने को कहा गया। कार्य दल ने अपना प्रतिवेदन सन् 1984 में प्रस्तुत किया।

कार्यदल के अनुसार – "हमारे विचार में जिला योजना एक प्रकार की क्षेत्र आधारित उप राज्य योजना है और इसकी माँग स्थानीय क्षेत्रों के संसाधनों, समस्याओं तथा सम्भावनाओं के अधिक ब्यौरेवार विश्लेषण से राष्ट्रीय तथा राज्य योजना की कमी को पूरा करने की आवश्यकता होती है ताकि प्रत्येक जिले की विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुरूप खास रूप से तैयार किये गये निवेश कार्यक्रमों को विकसित व क्रियान्वित किया जा सके।

देश के विभिन्न राज्यों में जिला आयोजन तन्त्र की स्थिति इस प्रकार थी –

1. जिला योजना बोर्ड: गुजरात, मध्यप्रदेश, मेघालय, नागालैण्ड तथा पंजाब
2. जिला आयोजना समिति: राजस्थान, मणिपुर तथा सिक्किम
3. जिला परिषद्: कर्नाटक तथा पश्चिमी बंगाल
4. जिला विकास बोर्ड : आंध्र प्रदेश
5. जिला विकास समिति: असम, उड़ीसा, हिमाचल प्रदेश तथा जम्मू कश्मीर
6. जिला विकास परिषद्: केरल तथा तमिलनाडु
7. जिला योजना और विकास परिषद्: महाराष्ट्र तथा बिहार
8. जिला योजना एवं मॉनीटरिंग समिति : उत्तर प्रदेश

महाराष्ट्र, गुजरात, उत्तर प्रदेश तथा बिहार में इस निकाय का अध्यक्ष एक राज्य मन्त्री को बनाया गया था जबकि कुछ राज्यों में गैर सरकारी व्यक्ति अध्यक्ष बनाये गये थे। सिक्किम में विधान सभा के एक सदस्य को अध्यक्ष बनाया हुआ था। अधिकांश राज्यों में जिला कलक्टर को उपाध्यक्ष बनाया गया था। जिला आयोजना तन्त्र में 2–6 विशेषज्ञ सदस्य थे। अधिकांश सदस्य प्रतिनियुक्ति पर थे। जिला आयोजना तन्त्र की कार्यक्षमताएं स्तरीय नहीं थी।

हनुमन्ताराव कार्यदल का सुझाव था कि जिला स्तर पर एक प्रभावी एवं स्थायी आयोजना तन्त्र स्थापित किया जाना चाहिये जिसमें लगभग 50 सदस्य हों।

जिला परिषद् पंचायत समितियाँ, नगर निगमों या नगरपालिकाओं, जिले के विधायक, सांसद, श्रमिकों, उद्योगपतियों तथा बैंकों के प्रतिनिधि इस निकाय में सम्मिलित करने की अनुशंषा की गई। इस जिला आयोजना निकाय की छोटी क्रियान्वयन समिति बने जिसका जिला कलक्टर अध्यक्ष, मुख्य आयोजना अधिकारी सदस्य सचिव एवं विकास कार्यों से जुड़े विभागों के अधिकारी सदस्य मनोनीत हों। जिला आयोजना निकाय की तकनीकी सहायतार्थ एक पृथक् जिला आयोजना कक्ष भी स्थापित किया जा सकता है जिसकी अध्यक्षता मुख्य आयोजना अधिकारी करे तथा उसे विशेषज्ञ दलों का सहयोग प्राप्त हो।

कार्यदल ने इन सिफारिशों के अतिरिक्त जिला कलक्टर की भूमिका को और सशक्त बनाने पर भी बल दिया।

सन् 1985 में योजना आयोग के पूर्व सदस्य जी.वी.के. राव की अध्यक्षता में बनी, कार्ड (कमेटी टु रिव्यु द एक्जिस्टिंग एडमिनिस्ट्रेटिव अरेजमेण्ट्स फॉर रूरल डवलपमेण्ट एण्ड पॉवर्टी एलीवेशन प्रोग्राम) समिति ने अपना प्रतिवेदन दिया था। कुछ सिफारिशें ये हैं –

1. जिला स्तर पर विकासात्मक तथा नियामकीय कार्यों का पृथक्करण कर दिया जाये।
2. विकासात्मक कार्यों के निर्वहन के लिए पृथक से जिला विकास आयुक्त का पद सृजित हो तथा जिला कलक्टर केवल नियामकीय कार्य सम्पादित करे।
3. विकास आयुक्त, जिला कलक्टर से वरिष्ठ तथा अनुभवी व्यक्ति हो।
4. राष्ट्रीय विकास परिषद् की भाँति एक राज्य विकास परिषद् होनी चाहिए जो राज्य एवं जिला योजनाओं को एक सामान्य संरचना में ला सके।

इन सिफारिशों के पश्चात् कुछ सार्थक प्रयास हुए।

सन् 1988 में कार्मिक, लोक शिकायत तथा पैंशन मन्त्रालय से सम्बद्ध संसदीय सलाहकार समिति ने जिला आयोजना पर पी.के थुंगन उपसमिति बनायी थी जिसने जिला आयोजना तन्त्र को सुदृढ़ करने पर जोर दिया।

9.6 राजस्थान में जिला आयोजना

राजस्थान में अस्सी के दशक के प्रारम्भिक वर्षो में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत सामाजिक, आर्थिक विकास के परिदृश्य में जिले में योजनाएं संचालित करने के लिए स्थान तथा अन्य बिन्दुओं के निर्धारण के लिए जिला आयोजना समितियां गठित की गईं।

इन समितियों में सांसद, विधायक, जिला प्रमुख, प्रधान, खण्ड विकास अधिकारी तथा सरकारी एवं गैर सरकारी सदस्य सम्मिलित किये गये।

ये समितियाँ आयोजना का कार्य कम परन्तु भौतिक एवं वित्तीय लक्ष्य अधिक निर्धारित करती थी।

प्राथमिक विद्यालय एवं स्वास्थ्य केन्द्र खोलना, पेयजल उपलब्ध कराना, ग्रामीण सड़क निर्माण प्रस्ताव, ग्रामीण विद्युतीकरण एवं आवास गृह निर्माण हेतु स्थान निर्धारित करना आदि के लिए जिला आयोजना समिति चिन्तन करती थी।

इस समय में जिला ग्रामीण विकास अभिकरणों में जिला आयोजना अधिकारी का पद सृजित किया हुआ था परन्तु उसे विशिष्ट योजना संगठन के अन्तर्गत संचालित कार्यक्रमों का पर्यवेक्षण का कार्य ही दिया हुआ था। आर्थिक एवं सांख्यिकी निदेशालय के जिला स्तरीय कार्यालय में कार्यरत जिला सांख्यिकी अधिकारी का भी जिला आयोजना समिति से प्रत्यक्ष सम्बन्ध न था। यह अधिकारी जिला स्तरीय आँकड़े एकत्र कर मुख्यालय को भेजता था।

राज्य में जिला आयोजना समितियां अल्प प्रभावी रही। इस बीच हनुमन्ताराव कार्य दल ने सभी राज्यों के जिला आयोजना तन्त्र का अध्ययन किया व आवश्यक सुझाव योजना आयोग को दिये।

आयोजना विभाग राजस्थान सरकार द्वारा दिनाँक 3 अप्रैल, 1991 को एक आदेश के अनुसार जिला स्तर पर जिला आयोजना प्रकोष्ठ गठित करने का आदेश दिया।

जिला आयोजना प्रकोष्ठ का संगठन इस प्रकार था –

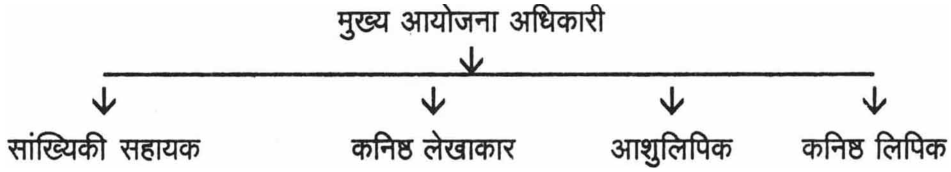

प्रकोष्ठ द्वारा जिला स्तर पर प्रत्येक विभाग से समन्वय स्थापित कर जिले की वार्षिक आयोजना व विभिन्न क्षेत्रों की योजनाओं के सम्बन्ध में निर्धारित लक्ष्यों व उनकी प्राप्ति का अध्ययन करता रहा लेकिन वास्तव में यह प्रकोष्ठ जिला आयोजना निर्माण में अपनी स्वतन्त्र व प्रभावी भूमिका नहीं निभा पाया। सन् 1992 में संविधान के 73वें तथा 74 वें संशोधन द्वारा पंचायती राज व नगरीय स्थानीय संस्थाओं को संवैधानिक स्तर प्रदान किया गया।

74वें संविधान संशोधन के अनुच्छेद 243 जेड.डी. के द्वारा यह प्रावधान किया गया कि जिला स्तर पर नगरीय तथा ग्रामीण स्थानीय स्वशासन संस्थाओं के माध्यम से एक जिला आयोजना समिति गठित होगी।

74वें संविधान संशोधन द्वारा राज्य विधानमण्डल को यह शक्ति दी गई कि वह इस सम्बन्ध में आवश्यक नियम निर्माण तथा कार्यवाही करे।

अनुच्छेद 243 जेड.डी. के अनुसार जिले की नगरीय व ग्रामीण विकास योजनाओं को समन्वित करते हुए निर्वाचित प्रतिनिधियों के द्वारा जिला आयोजना समितियों का गठन होगा। राजस्थान सरकार ने 10 जुलाई, 1996 को अधिसूचना जारी कर जिला आयोजना समितियों के गठन को स्वीकृति प्रदान की।

राजस्थान सरकार द्वारा जनवरी, 1997 में एक और अधिसूचना जारी कर जिला आयोजना समितियों के गठन के लिए निम्नलिखित उपबन्ध किये –

1. जिला आयोजना समितियों का गठन 'राजस्थान पंचायती राज अधिनियम, 1994 की धारा 121 के अन्तर्गत होगा।
2. प्रत्येक जिले में एक जिला आयोजना समिति होगी जिसमें कुल 25 सदस्य होंगे।
3. 20 सदस्य सम्बन्धित जिले की जिला परिषद् व नगरीय स्थानीय संस्थाओं में से चुने जायेंगे।
4. निर्वाचित प्रतिनिधियों का अनुपात जिले की नगरीय तथा ग्रामीण जनसंख्या के आधार पर होगा यानि किसी जिले की शहरी जनसंख्या अधिक होने पर नगरीय संस्थाओं से तथा ग्रामीण जनसंख्या अधिक होने पर जिला परिषद् से अधिक सदस्य लिये जा सकेंगे।
5. राज्य सरकार द्वारा 5 सदस्य मनोनीत होंगे जिनमें जिला कलक्टर, अतिरिक्त कलक्टर (विकास) तथा जिला परिषद् का मुख्य कार्यकारी अधिकारी स्थायी रूप से तथा दो अन्य सदस्य राज्य सरकार द्वारा मनोनीत होंगे।
6. मुख्य आयोजना अधिकारी इस समिति का सदस्य सचिव होगा।
7. जिला प्रमुख इस समिति के अध्यक्ष होंगे।

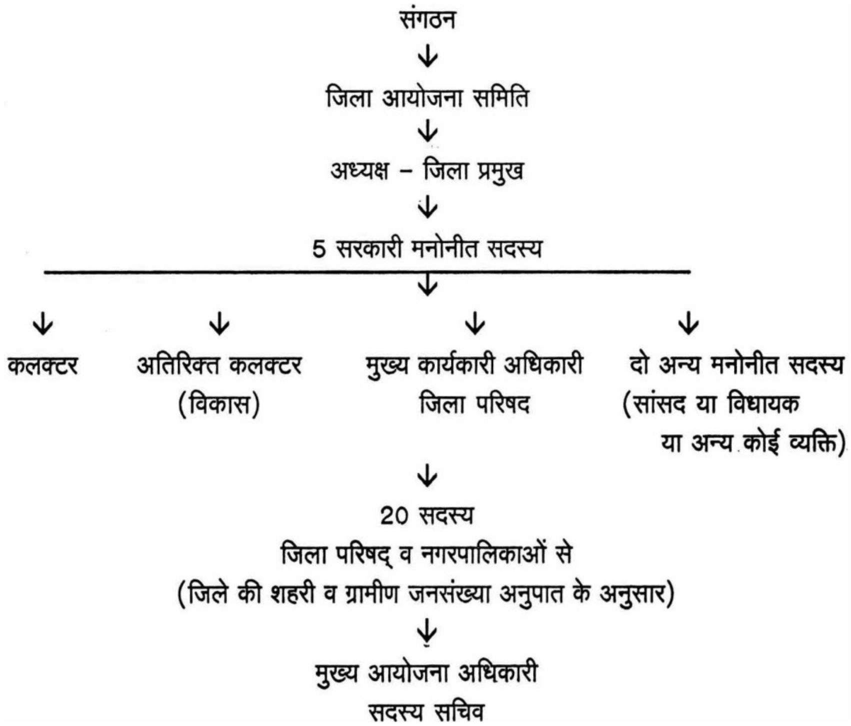

जिला आयोजना समिति के कार्य

1. जिले के भौगोलिक तथा प्राकृतिक संसाधनों का अनुमान लगाना तथा उनके दोहन की योजना बनाना।
2. आधारभूत आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए प्राथमिकताएं निर्धारित करना।
3. गत वर्ष की शेष राशि का उपयोग करते हुए आगामी वर्ष की प्राथमिकतानुसार योजना प्रस्तावित करना।
4. जिला स्तर पर विभिन्न संगठनों के मध्य समन्वय स्थापित करना।
5. जिले के समग्र विकास हेतु तकनीकी अधिकारियों से विचार विमर्श करना।
6. ग्राम पंचायतों, पंचायत समितियों तथा नगरपालिकाओं की वार्षिक योजना तैयार करने के लिए आवश्यक दिशा निर्देश प्रदान करना।
7. गत वर्ष की कुल योजना राशि का 125% राशि तक नई योजना तैयार करना।

राज्य में गठित जिला आयोजना समितियां सभी भूमिका निभा रही हैं जो हनुमन्ताराव कार्य दल ने अपेक्षित की थी। नई व्यवस्था के अन्तर्गत राज्य में फरवरी, 1997 में इन समितियों के सदस्य के निर्वाचन की प्रक्रिया सम्पन्न हुई तथा सन् 2000 में पंचायती राज संस्थाओं व नगरीय स्थानीय संस्थाओं के चुनाव के पश्चात् जिला आयोजना समितियों का पुनर्गठन हुआ।

इन आयोजना समितियों का गठन व कार्यों का वर्णन राजस्थान पंचायती राज नियम 350, 351 व 352 सन् 1996 में है। इसका प्रशासनिक विभाग ग्रामीण विकास तथा पंचायती राज विभाग है।

व्यवहार

जिला आयोजना व्यवहार में कई दशकों के प्रयासों के पश्चात् भी प्रभावी रूप से विकसित नहीं हो पाया है। योजना आयोग व विभिन्न अध्ययन दलों ने भी इस प्रकार के विचार समय–समय पर प्रकट किये हैं। सन् 1959 में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण द्वारा भारतवर्ष में पंचायती राज संस्थाएं स्थापित की गई थी किन्तु इन संस्थाओं का संवैधानिक आधार नहीं था।

नीति निर्देशक तत्वों के अनुच्छेद 40 में वर्णन है – राज्य पंचायतों की स्थापना तथा उनके विकास का प्रयास करेगा। तीन दशक तक पंचायती राज ज्यादा सफल नहीं रहा।

सन् 1992 में पारित तथा 1993 से प्रवर्तित संविधान के 73 वें संविधान संशोधन द्वारा पंचायती राज को तथा 74 वें संविधान संशोधन द्वारा नगरीय स्थानीय स्वशासन को संवैधानिक दर्जा प्राप्त हु आ।

इन संशोधनों द्वारा पंचायतों की संरचना, कार्य, चुनाव, आरक्षण व विषयसूची का स्पष्ट प्रावधान कर दिया गया। पूर्व में पंचायती राज के पास शक्तियों का अभाव था। इसी कारण पंचायत समितियां व जिला परिषदें निर्णायक कदम नहीं उठा पाती थीं। जिला आयोजना की संकल्पनाएं भी अधूरी ही रहीं।

9.7 सारांश

लोक प्रशासन में निर्णय की सत्ता ही सफल नियोजन कार आधार है।

जिला स्तर पर आज भी योजना निर्माण, क्रियान्वय, नियन्त्रण व मूल्यांकन के लिए प्रशिक्षित व तकनीकी रूप से कुशल कार्मिक वर्ग का आज भी अभाव महसूस होता है।

राजस्थान में जिला आयोजना समितियाँ विभाग के जिला स्तरीय भौतिक तथा वित्तीय लक्ष्यों का रिकॉर्ड भर रखती हैं। लक्ष्य विभिन्न विभागों के राज्य स्तरीय कार्यालय तय करते हैं।

आर्थिक नियोजन मूलतः केन्द्रित ही था। भारत का योजना आयोग ही महत्वपूर्ण है। राज्य स्तरीय आयोजना अभी तक पर्याप्त स्वतंत्र व सुविधायुक्त नहीं है। फिर जिला आयोजना तंत्र की भूमिका कितनी सी है।

आज भी जिला, खण्ड तथा ग्राम स्तरीय संस्थाएँ स्वयं के वित्तीय स्त्रोत पूर्णतया विकसित नहीं कर पायी हैं। परिणाम योजना व क्रियान्वयन पूर्ण रूप से हो पाया है।

एक ही जिले में अलग–अलग राजनीतिक दलों के जन प्रतिनिधि चुने जाते हैं। इनके बीच अलग–अलग स्वार्थों के चलते विकास कार्यों में बाधाएँ आती ही रहती हैं।

देश की जनता आज भी लोक प्रशासन के कार्यक्रमों से आत्मीय रूप से नहीं जुड़ पाई हैं।

जनसहभागिता के बिना लोकतंत्र तथा विकास में आज भी समन्वय स्थापित नहीं हो पाया है।

नौकरशाही की समस्याओं के चलते भारतीय लोक प्रशासन प्रतिबद्ध तथा संवेदनशील नहीं हो पाया है।

अब जिला आयोजन तन्त्र को संवैधानिक स्तर प्राप्त है। अतः सुधार की आशा की जा सकती है।

9.7 अभ्यास प्रश्न

1. आर्थिक विकास में नियोजन की भूमिका का विवेचन कीजिये

2. योजना आयोग के गठन एवं कार्यप्रणाली की समीक्षा कीजिये।
3. राजस्थान में जिला आयोजन पर एक समीक्षात्मक टिप्पणी लिखिये।

9.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- भाम्भरी, सी.पी. : पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन : थियरी एण्ड प्रेक्टिस - जयप्रकाशनाथ एण्ड क., मेरठ 1993
- माहेश्वरी, एस.आर. : थियरी एण्ड कॉन्सेपट्स इन पब्लिक एडमिनिस्ट्रशन, एलाइड पब्लिशर्स, दिल्ली
- सिंह, होश्यार : इण्डियन एडमिनिस्ट्रेशन, किताब महल, दिल्ली, 1998

ISBN - 13/978-81-8496-120-1